संत हृदय श्रीपोद्दारजी

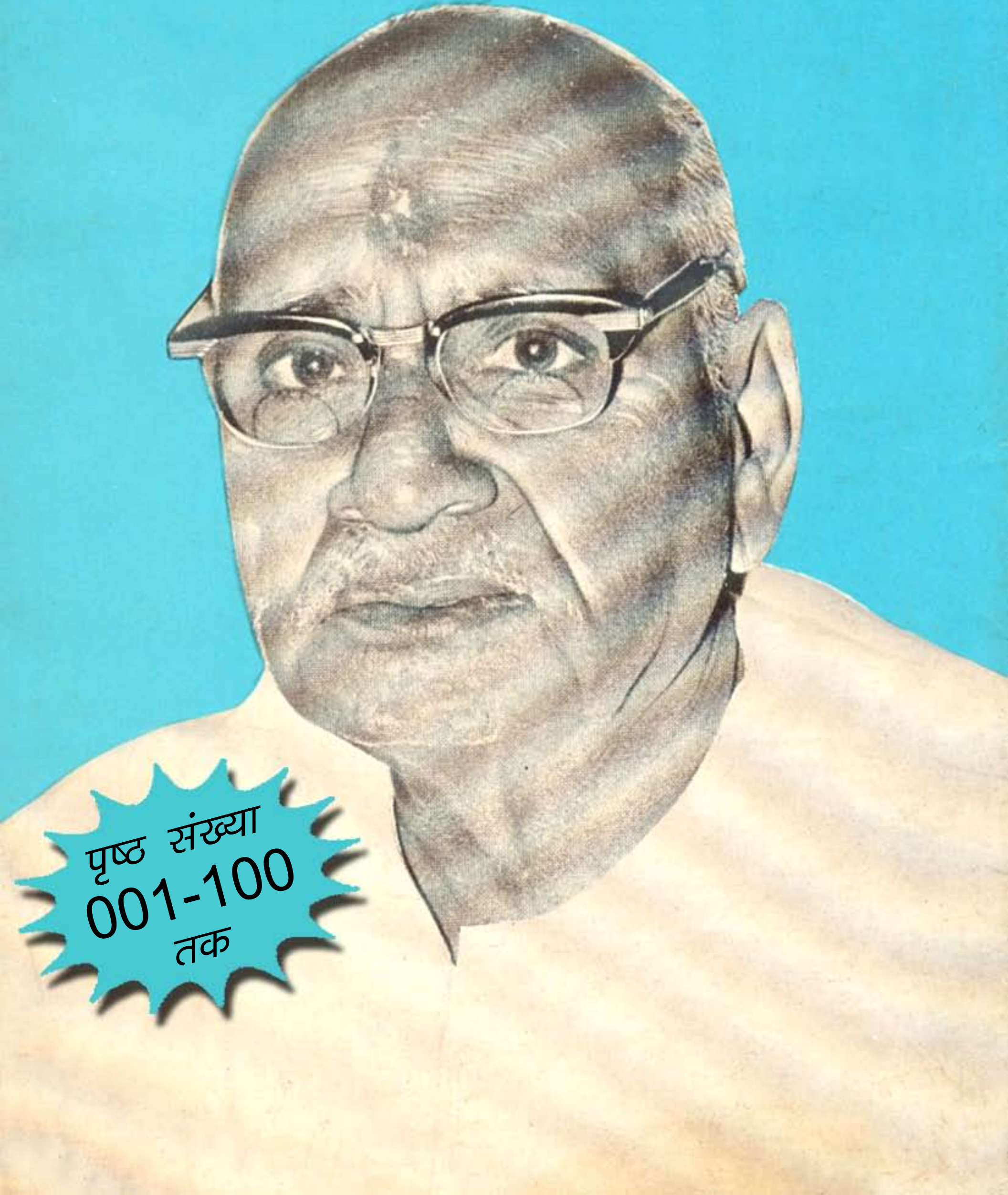

पृष्ठ संख्या 001-100 तक

संतहृदय
श्रीपोद्दारजी

द्वितीय भाग

: प्रकाशक :

हनुमान प्रसाद पोद्दार स्मारक समिति
पो. गीतावाटिका
जि. गोरखपुर - २७३००६

: प्रकाशन तिथि :

संवत २०४८ आश्विन कृ. १२ (५ अक्टूबर १९९१)

: मूल्य :

पच्चीस रुपये

: प्रथम संस्करण :

चार हजार

: मुद्रक :

न्यू जैक प्रिंटिग वर्क्स प्रा. लि.,
पाण्डुरंग बुधकर मार्ग,
बम्बई - ४०००१३

॥ श्रीहरिः ॥

वाटिकाके चाँद

यदि अपना परिचय देनेकी चाह तुम्हारे अन्तरमें नहीं हो तो कौन तुझे जान सकेगा? किसमें सामर्थ्य है, जो तुझे समझ सके? तुम्हारे स्वरूपको तभी दूसरा जान सकेगा, तुम्हारा स्वरूप तभी दूसरेकी पहुँचकी परिधिके अन्दर आ सकेगा, जब तुम स्वयं ही स्वयंका यत्किंचित् परिचय प्रदान करो। सब कुछ तुम्हारी रुचि-सापेक्ष है। चकोर चाँदको तभी देख पाता है, जब चाँद स्वयंको दिखा देना चाहे। चाँद अपनी केवल एक कला दिखाये अथवा दो कला दिखाये अथवा सम्पूर्ण कला दिखाये, किन्तु चकोर उतना ही देख पाता है, जितना चाँद दिखाना चाहता है और सोलहों कलासे उदित होकर भी यदि अपने ऊपर मेघका आवरण डाल ले तो क्या चकोर देख सकेगा?

हे भावविधु! यह सब कुछ तुम्हारी चाहपर निर्भर है। स्वयंको न दिखाओ, न जनाओ, थोड़ा जनाओ, अधिक जनाओ, पूर्णतः जनाओ अथवा पूर्णतः प्रकट होकर भी अपने ऊपर आवरण डाल लो, रह-रह करके छिपो, यह सब तुम्हारी इच्छापर निर्भर है। हे रसालय! यह सब कुछ तुम्हारी चाह और कृपाके आश्रित हैं। तुम्हारी चाह जब होगी, तभी तुम्हारे चकोर तुम्हें देख पायेंगे और जितने अंशमें दिखानेकी चाह होगी, उतने ही अंशका दर्शन सम्भव है।

हे रसार्द्र भावज्ञ! स्वरूप-दर्शन-पिपासु चकोरकी मनोकामनाको पूर्ण करनेकी चाह तुम्हारे अन्तरमें कभी उदित होगी क्या?

अरे! यह क्या हो गया? स्वरूपावरण कहाँ तिरोहित हो गया? संगुप्तकी अभिव्यक्ति तो एक आश्चर्य है।

आज सभी तेरा गीत गा रहे हैं।

तुमने स्वयंको कितना छिपाया, कितना चुराया, कितना दुराया, पर संगोपनीयता रह न सकी। आवृत्त अनावृत्त हो ही गया। तुम्हारी अनजानी बातोंको तुम्हारे अधरोंके हास्यने, तुम्हारे अनगाये रागोंको तुम्हारे नयनोंके लास्यने अनजाना-अनगाया नहीं रहने दिया। चाँदके अतुल सतत विलासने और विपुल रजत प्रकाशने चाँदको अनावृत्त कर ही दिया। मेघोंके आवरणोंमें चाँद छुपता रहा, लुकता रहा, पर कब तक? अब तो तुम्हारे राग, तुम्हारी बात चुपचाप फैल चुकी है। तभी तो सभी तेरा गीत गा रहे हैं।

आज सभी तेरा गीत गा रहे हैं।

पपीहेके कूजनने तेरी कहानी बेलाके फूलसे कही, पर कही किस प्रकार? कही डरते-डरते मनसे कि कोई सुन न ले, कही आधी रातके अँधेरेमें कि कोई देख न ले, कही उपवनके एकान्तमें कि कोई झाँक न ले, पर तेरी कहानीका प्रभाव अनोखा है, अद्भुत है। कहानीको सुनते ही बेलाका फूल सिहर उठा, निखर उठा। और देखो न! भाव-विभोर बेलासे अनजाने

ही तेरी गाथाकी गंध बिखर रही है। उस सुगंधको तनमें लपेटता जा रहा है पवन और अव-शिष्टांशको समेटती जा रही है दुर्वा-दलावली। पवन कानो-कान कुछ कह जाता है और सुन लेती हैं लताएँ। लताएँ झूम-झूमकर कुछ गुनगुना रही हैं और विटपोंकी डालियाँ झुक-झुककर कुछ सुन रही हैं।

आज प्रकृतिके प्रांगणमें तेरा गीत गुनगुनाया जा रहा है।

अरे यह क्या? आम्र-वृक्षोंकी पत्रावलियोंका समूह भी तेरी ही चर्चा कर रहा है। लताएँ फूलती जा रही हैं और तेरी चर्चा फैलती जा रही है। लताओंके सुमन निखरते जा रहे हैं और तेरा अनजाना सौरभ अनजाने बिखरता जा रहा है। प्रकृतिका प्रत्येक दल प्रत्येक पल तेरा ही गीत गा रहा है। प्रत्येक स्पन्दनमें तेरा ही गीत है। तेरा अनजाना गीत आज सभीके अधरोंने जान लिया है। तेरा अनगाया राग आज सभीके कण्ठोंमें गूँज रहा है।

आज सभी तेरा गीत गा रहे हैं।

सभी गा रहे हैं, परन्तु गीत कभी पूरा हो ही नहीं पाता है। भला वह कौन है, जो भली प्रकारसे अपने गीतोंको गा पायी हो अथवा गा पाया हो? कभी स्मृतियोंकी असीमता, कभी उमड़नकी अनन्तता, कभी भावोंकी प्रबलता, कभी विचारोंकी अधिकता, कभी वाणीकी विह्वलता- इस प्रकार कभी कोई अवरोध और कभी कोई विवशता पदे-पदे, क्षणे-क्षणे बाधा उपस्थित कर ही देती है। यह अवरोध और विवशता भी अपार है। तब विथकित हो उठता है गायनका सारा प्रयास। फिर असफल प्रयासके मूक स्वर बार-बार वन्दन करने लगते हैं तुम्हारे युगल चरण-कमलको।

गीत न पूरा हो पाता है।
भाव उमड़ते रह-रह इतने, अधरोंका स्वर थक जाता है॥
गान अधूरा रहता नित ही, विह्वल स्वर जब-जब गाता है।
रहा प्रयास सदा ही कुण्ठित, असफल अन्तर अकुलाता है॥
कैसे कहूँ हृदयकी बातें, सोच न चिन्तन कुछ पाता है।
करूँ चरण वन्दन आजीवन, बस, आकुल स्वरको भाता है॥

सचमुच, गीतोंके अंकुरोंको खुलने-खिलनेका अवसर मिल ही नहीं पाया। कण्ठ-कण्ठ द्वारा गीत गाये जानेका प्रयास भले असफल रहा हो, पर अनुरागी कण्ठकी राग-रागिनी रही है अंगूरी। अंगूरी राग-रागिनीमें अल्पालापित गीतांकुरोंके अस्फुट गुञ्जनकी कतिपय स्वर-लिपियाँ ही प्रस्तुत हैं इस पुस्तकके आगामी पृष्ठोंपर।

अर्चनाके ये गीत अधूरे ही रहे और सदा अधूरे ही रहेंगे। सम्पन्नता प्रदान करनेवाले सामर्थ्यका अभाव जो है। बस, सम्पन्नता प्रदान कर पायेगी तुम्हारी परमोदार स्वीकृति ही।

मेरी वाटिकाके चाँद! लो, इन अधूरे गीतोंको स्वीकार करो।

निवेदक
राधेश्याम बंका

अनुक्रमणिका

१	श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी		
		मेरे जीवन सर्वस्व	१
२	पं. श्रीतारादत्तजी मिश्र		
		अद्भुत विनयशीलता	२
३	श्रीविष्णुहरि डालमिया		
	१	ताऊजीका अनोखा वात्सल्य	२
	२	श्रीकृष्णप्राकट्यस्थलीका जीर्णोद्धार	४
४	श्रीसुदर्शन सिंहजी 'चक्र'		
	१	सच्चे अर्थमें महापुरुष	१२
	२	आदर्श गृहस्थ	१५
	३	उनकी सहनशीलता	१७
	४	मुझसे झगड़िये	१७
५	पं. श्रीरामनारायण दत्तजी शास्त्री		
		स्वजनकी प्रतिष्ठा	१८
६	श्रीचन्द्रदीपजी		
		उदारमना श्रीभाईजी	१८
७	श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव'		
		प्रेममूर्ति श्रीभाईजी	२२
८	श्रीदेवधरजी शर्मा		
	१	नास्तिकसे आस्तिक	२७
	२	अपकार और उपकार	२९
	३	उनकी क्षुब्ध वाणी	३०
	४	'बदमाशी' का खेल	३२
	५	पारिवारिकता पूर्ण ममता	३७
	६	प्रकाशनके प्रति उपरामता	३८
	७	भागवतांकका प्रकाशन	४०
	८	गुरुजनाभिलाषानुवर्तन	४४
	९	पिताजीको जीवन-दान	४६
	१०	सद्भावकी सृष्टि	४७
९	श्रीगिरिधारी बाबा		
	१	वह प्रथम दर्शन	४९
	२	साधनामें सँभाल	४९

	३	उन्होंने परौठे बनाये	५०
	४	पंडित श्रीनेहरूको कार	५१
	५	उनका उपदेश और उनका वरदहस्त	५२
	६	मैं उनका संदेश वाहक	५४
१०	**श्रीचन्द्रशेखरजी पाण्डेय**		
		उनकी मधुर छाप	५५
११	**पं. श्रीशिनाथजी दुबे**		
	१	सत्य	५६
	२	दया	५६
	३	परनिन्दा-असहिष्णुता	५६
	४	प्रेम-व्यवहार	५७
	५	गोवध-विरोधी आन्दोलनके सेनानी	५८
	६	सफल सम्पादन	५९
१२	**श्रीरामलालजी श्रीवास्तव**		
	१	सत्संगकी मर्यादा	६०
	२	आत्मश्रेय	६१
	३	अयाचित सहायता	६१
	४	प्लेटफार्मका टिकट	६२
	५	अनन्यता	६२
	६	पारस्परिक स्नेह	६३
	७	द्वन्द्वातीत	६४
	८	'जे पीड़ पराई जाणे रे'	६५
	९	संत-मिलन	६६
	१०	लोकमान्य तिलकका पश्चात्ताप	६७
	११	मूलतः स्वरूपतः हिन्दू	६७
	१२	उदारता	६८
	१३	श्रीजहूर बख्श	६८
	१४	जीवकी सेवा	६९
	१५	स्नेहोपहार	६९
	१६	सरकारी मोटर	७०
	१७	गीतातीर्थ	७१
	१८	गोमाता	७१
	१९	चरणामृत	७२
१३	**श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव**		
	१	गुजरातीमें प्रवचन	७३

२ *चिताके शवको मंत्र-दान* ७३
३ *स्वजनोंका हित-चिन्तन* ७४
१४ **श्रीदुर्गाप्रसादजी गुप्त**
१ *इलाहाबाद कोर्टमें सफलता* ७५
२ *निर्विघ्न वापसी यात्रा* ७६
३ *क्षमा-याचनाके वे क्षण* ७७
४ *मेरे भाईको जीवन दान* ८०
५ *खोई कलंगी मिल गयी* ८१
१५ **पं. श्रीसूरजमलजी शर्मा**
महत्प्रसाद ८२
१६ **श्रीओंकारमलजी सारस्वत**
सिद्धान्त-निष्ठा ८३
१७ **पं. श्रीनरसिंहप्रसादजी पारीक**
आर्थिक संकटका निवारण ८३
१८ **श्रीराधेश्यामजी खेमका**
भक्तवाञ्छा-कल्पतरु ८५
१९ **वैद्यराज पण्डित श्रीविद्याधरजी शुक्ल**
दयाके सागर ८६
२० **श्रीगोपाल सिंहजी विशारद**
श्रीराम जन्म-भूमि ८६
२१ **श्रीनारायणचन्द्रजी गोस्वामी**
अपरिचितके प्रति अपनापन ८८
२२ **श्रीकृष्णदत्तजी शर्मा**
खड्डा ग्राममें ८८
२३ **श्रीमदनलालजी जालान**
वैवाहिक प्रथाओंमें सुधार ८९
२४ **श्रीपुरुषोत्तमदासजी सिंहानिया**
मातृ-सेवा-परायण ९१
२५ **श्रीउमेशकुमारजी सिंहानिया**
१ *वृक्षको जल दें* ९२
२ *संतोचित सरस विनोद* ९३
३ *बनियासे महात्मा* ९४
४ *संन्यासी वेषको प्रणाम* ९४
५ *सिद्धान्तवादिता* ९५

२६	श्रीजगदम्बाप्रसादजी मिश्र		
		स्वजनोंका सन्तोष	९६
२७	श्रीपरमेश्वरप्रसादजी दीक्षित		
		नव वर्षारम्भ	९६
२८	पं. श्रीश्यामनारायणजी शास्त्री		
		अभिनन्दनीय व्यक्तित्व	९७
२९	श्रीपद्मकुमारजी थरड़		
	१	*मुस्कानकी अनोखी छवि*	९८
	२	*नगण्य बातको भी महत्त्व*	९८
३०	श्रीयुगलकिशोरजी खेतान		
		अनुमानातीत कार्य क्षमता	१००
३१	एक माताजी		
		मेरा हठ : उनका वात्सल्य	१०१
३२	श्रीमिश्रीलालजी तिवारी		
	१	*उज्जैनकी संघ शाखापर*	१०२
	२	*श्रीमद्भागवत-गौरव*	१०३
३३	बाबू श्रीरामसिंहजी		
		विषम परिस्थितिमें कर्मठता	१०४
३४	श्रीसर्वजीतजी शुक्ल		
	१	*पवित्र प्रेमके निर्मल निर्झर*	१०५
	२	*भगवत्तत्व निष्ठ व्यक्तित्व*	१०७
	३	*भगवन्नाम निष्ठ व्यक्तित्व*	११०
३५	श्रीनारायणप्रसादजी शर्मा		
		श्रद्धालु श्रीशुकदेवजी	१११
३६	श्रीदुर्गाशंकरजी अग्रवाल		
		कुछ आदर्श उदाहरण	११३
३७	श्रीविश्वम्भरनाथजी द्विवेदी		
		प्रणम्यका प्रणाम	११५
३८	श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास		
		नत-मस्तक हूँ	११६
३९	श्रीगोपीनाथजी तिवारी		
		सिर झुकाकर कहते हैं	११७
४०	श्रीशिवबालकजी त्रिपाठी		
	१	*श्रमिक नेताके उद्‌गार*	११८
	२	*समयकी पाबन्दी*	११८

४१ श्रीहरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी
कठिनाई हल हो गयी ११९
४२ डा. श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज
एक गृहस्थ संत १२०
४३ बहिन बी. बेगम मौदहा
फरिस्ता-सिफत इन्सान १२०
४४ श्रीसाँवरमलजी जोशी
प्रार्थना-निष्ठा १२१
४५ श्रीइन्द्रचन्दजी थरड
श्रीमाधवजीका परिचय १२३
४६ पं. श्रीहरिवक्षजी जोशी
मेरे आत्मीय बन्धु १२४
४७ डा. श्रीघनश्यामदासजी तोलानी
१ *सभा-मंचपर दर्शन* १२६
२ *स्वागत-समारोहसे दूर* १२७
३ *मेरे प्रश्नोंका उत्तर* १२८
४८ श्रीपरमानन्दजी कानोड़िया
१ *बालकोंके साथ बालक* १२९
२ *मित्र भावना* १३०
३ *परिवारका हित-चिन्तन* १३१
४ *पिताजीकी सँभाल* १३२
५ *मेरी पुत्रीका विवाह* १३३
६ *प्यारकी वर्षा* १३६
४९ श्रीदूलीचन्दजी दुजारी
१ *उन्हींका पाला-पोसा* १३७
२ *असहायको आश्रय* १३८
३ *अड़े सँवारे काम* १३९
४ *विश्वसनीय व्यक्तित्व* १४०
५ *स्नेहका सच्चा सम्मान* १४०
६ *राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबूको सही परामर्श* १४२
७ *दान-दाताकी भावना महत्त्वपूर्ण* १४३
५० श्रीब्रजकिशोरजी त्रिपाठी
हिन्दू नामके प्रति आस्था १४४
५१ श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी
१ *रचनाकी सहज प्रतिभा* १४६

२ वह विशिष्ट विदाई १४८
३ बिजलीकी घंटी १५०
४ आदेशका 'पालन' १५०

५२ श्रीहरिकृष्णजी दुजारी
१ समत्व भावना १५२
२ सहयोगकी भावना १५३

५३ श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल
१ आदेशका पालन १५६
२ उलझन दूर हो गयी १५८
३ दक्षिणी विद्वानोंसे बातचीत १६०
४ साधु-व्यवहार १६१
५ श्रीमुरलीधरजी कानोड़िया १६२
६ पापसे कैसे बचें? १६४
७ श्रीगुरुजी एवं श्रीबाबूजी १६५
८ वे गुप्त अनुष्ठान १६६
९ सेवाका आदर्श १६८
१० समझानेकी स्नेहसनी रीति १६९
११ अन्न-संकटका निवारण १६९
१२ उनका कार्यरत जीवन १७०

५४ श्रीरामगोपालजी पालड़ीवाल
१ पत्नीकी रोग विमुक्ति १७१
२ भयंकर संकटके वे क्षण १७३

५५ श्रीभीमसेनजी चोपड़ा
१ कार्यकर्ताके प्रति आदर १७७
२ सामाजिक कार्यको सम्मान १७९

५६ डा. महेन्द्रनारायणजी शर्मा
आचार निष्ठा १७९

५७ डा. श्रीलालदेवजी सिंह
चरण-वन्दन १८०

५८ श्रीरघुवरदयालजी गर्ग
होलीपर नगर-कीर्तन १८१

५९ श्रीमदनमोहनजी गोस्वामी
१ मेरी क्षुद्रता और उनका प्यार १८३
२ वह महान संतत्व १८४

६० वैद्य श्रीजानकीलालजी त्रिपाठी
पुष्पमालाका अर्पण १८५
६१ श्रीजगदीशप्रसादजी शर्मा
उनका अन्तिम प्रवचन १८६
६२ श्रीगुलाबचन्दजी बोथरा
१ प्रथम दर्शनमें अनुभव १८९
२ व्यावहारिक कुशलता १९२
३ घावकी मरहम-पट्टी १९३
४ स्नेहमय व्यवहार १९४
५ विक्षिप्तताकी दवा १९५
६ मेरी पत्नीको स्नेहाशीर्वाद १९६
६३ सौ. श्रीझमकूदेवी बोथरा
प्यार ही प्यार दिया १९८
६४ आ. श्रीअगमदुलारीजी श्रीवास्तव
ममता मूर्ति मेरे बाबूजी १९९
६५ सौ. श्रीसावित्रीबाई फोगला
१ सुख-दानकी भावना २०३
२ सँभालकी तत्परता २०३
६६ सौ. श्रीराधादेवी भालोटिया
गुणदर्शन एवं प्रशसन २०४
६७ सौ. श्रीपुष्पादेवी भरतिया
विलक्षण था उनका प्यार २०९
६८ श्रीदिलीपकुमारजी भरतिया
जीवनदानी नानाजी २१२
६९ श्रीचन्द्रकान्तजी फोगला
१ संतत्व शृंखला २१५
२ धूपका ताप और मनका पश्चात्ताप २१६
३ अभद्रके प्रति भद्र व्यवहार २१७
४ कथनी-करनीमें एकरूपता २१९
५ जाड़ेकी रातोंमें २२२
७० श्रीकैलाशचन्द्रजी सेकसरिया
सबके विश्वास-पात्र थे २२३
७१ आ. श्रीचन्दाबाई ढाँढनिया
१ प्रथम परिचय, प्रथम दर्शन, प्रथम पत्र २२४
२ भात भरनेका निमंत्रण २२६

३ हृदय-परिवर्तन २२९
४ प्रातःकालकी बातचीत २३६
७२ आ. श्रीनर्मदीबाई खेतान
१ बात छोटी, पर सीख बड़ी २३६
२ मधुर स्वभाव सहज व्यवहार २३७
७३ श्रीरविशंकरजी शुक्ल
क्षुब्ध नागको समझाना २३८
७४ एक बहिन
उन जैसा भाई मिला २४१
७५ डा. श्रीसुरेशचन्दजी सेठ
आग और गंगाकी धारा २४३
७६ आ. श्रीकौशल्याबाई बंका
वे सँभालते हैं २४६
७७ सौ. श्रीविजयलक्ष्मी पोद्दार
अस्पतालके द्वारपर २४९
७८ श्रीमोतीलालजी पारीक
१ कुष्ट रोगसे मुक्ति २५०
२ अक्षय कोठार २५०
३ आदमी नहीं, देवता हैं २५१
४ दोष मेरा था २५२
५ अपनी कोठी देना २५३
७९ श्रीओमप्रकाशजी सिंहानिया
स्वप्नमें सदुपदेश २५४
८० श्रीरामगोपालजी थरड
भोजनालयका अनुभव २५४

संत हृदय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

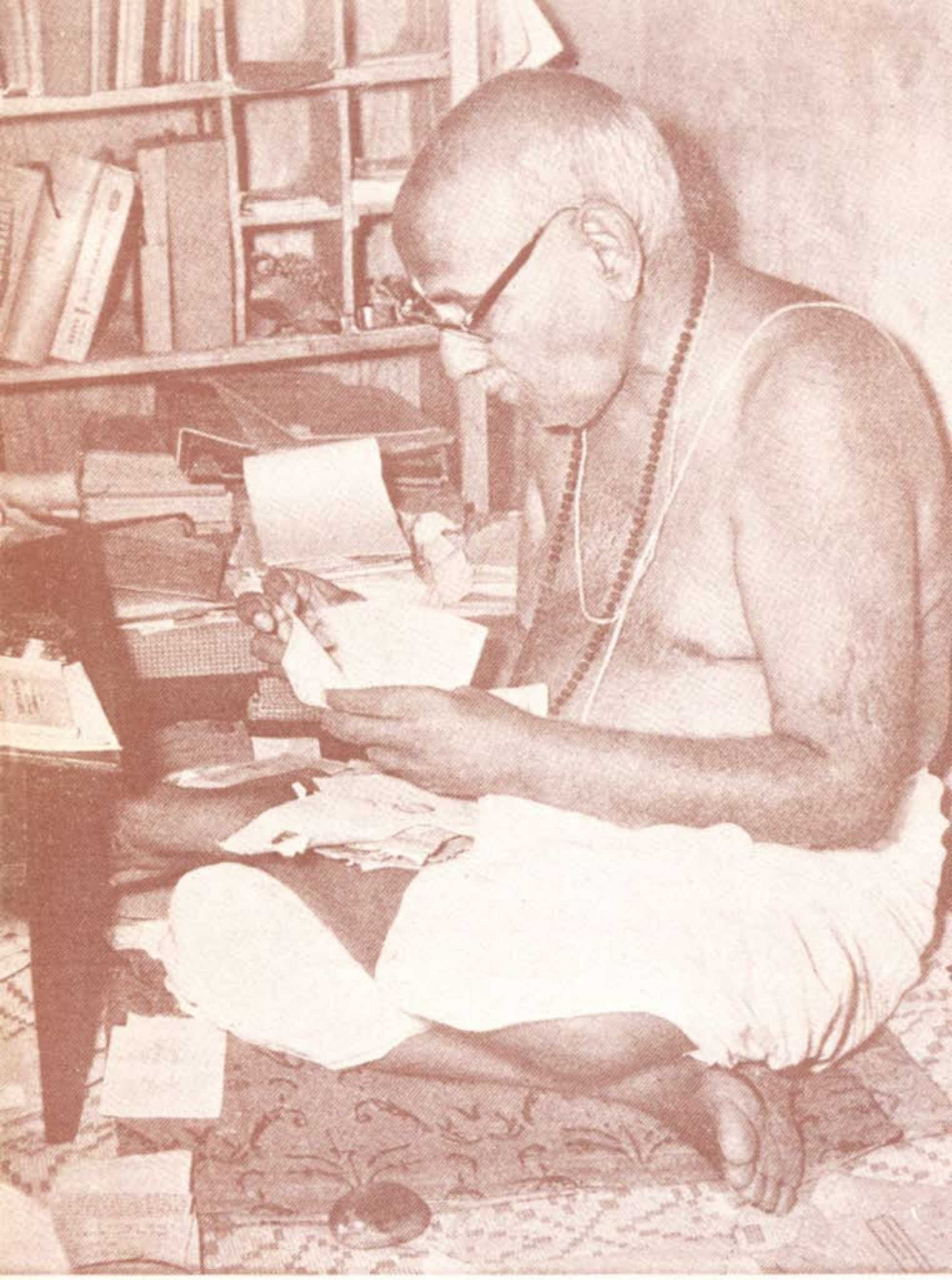

'वे स्वयंमें एक संस्था थे'

॥ श्रीहरिः ॥

संत हृदय *श्रीपोद्दारजी*

श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी (पूर्वसम्पादक 'कल्याण')

मेरे जीवन सर्वस्व

पहली बार मुझे श्रीभाईजीका दर्शन सन १९२८ के प्रारम्भमें बीकानेरमें हुआ था। वे नाम-प्रचारके उद्देश्यसे विभिन्न स्थानोंमें भ्रमण करते हुए दो दिनके लिये वहाँ पधारे थे। उनका सर्वप्रथम भाषण सुननेपर मेरे मनमें ऐसी छाप पड़ी कि वे जो कुछ कहते हैं, अनुभवके आधारपर कहते हैं, केवल पढ़ी-पढ़ायी अथवा सुनी-सुनायी बात नहीं कहते। जबतक वे बीकानेरमें रहे, व्याख्यानके बाद भी मैं घंटों उनके पास बैठता और उनके साथ भगवद्विषयक चर्चा होती रहती। उनके इस प्रथम समागमका मनपर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि स्वाभाविक ही उनके निकट सम्पर्कमें कुछ दिन रहनेकी प्रबल भावना जाग्रत हुई। यह लालसा क्रमशः बढ़ती गयी और सन् १९२९ के ग्रीष्ममें मुझे उनके साथ गोरखपुरमें लगभग डेढ़ महीने रहनेका दुर्लभ सुयोग प्राप्त हुआ। इस छोटी-सी अवधिमें उनके भगवत्सम्बन्धी प्रौढ़ विचारों एवं अनुभवोंको जानने तथा उनके भगवन्मय जीवनको अत्यन्त निकटसे देखनेका अवसर मुझे प्राप्त हुआ। उनके लोकोत्तर व्यक्तित्वका मनपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि दस-पन्द्रह दिनके बाद ही बुद्धिने यह निर्णय ले लिया कि सब कुछ छोड़कर इन्हींके चरणोंमें रहा जाय और शेष जीवन इन्हींकी छत्रछायामें बिताया जाय। यह निर्णय लेना मेरे लिये जितना सहज था, उसे कार्यान्वित करना उतना ही कठिन सिद्ध हुआ। मुझे बीकानेर छोड़नेमें चार वर्ष लग गये और जनवरी सन् १९३३ में ही मैं अपने इस मनोरथको पूर्ण कर पाया।

मेरा श्रीभाईजीके साथ यह चालीस वर्षके ऊपरका सम्पर्क मेरे जीवनकी एक अमूल्य निधि है, जो मुझे अपने अनेक जन्मार्जित सुकृतोंके फलरूपमें उन्हींकी अहैतुकी कृपासे अनायास प्राप्त हुई थी। इस अवधिमें उन्होंने जैसा अद्भुत स्नेह मुझे दिया और जिस प्रकार मेरा लाड़ रखा, उसे शब्दोंद्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनके इस ऋणसे मैं जन्म-जन्मान्तरमें भी उऋण नहीं हो सकता और न होना ही चाहता हूँ। भव-सरिताकी प्रबलधारामें बहते हुए मुझ पामरको उन्होंने अपनी सहज कृपासे उबार लिया और भगवत्कृपाका अधिकारी बना दिया। मेरी त्रुटियोंकी ओर उन्होंने कभी ध्यान नहीं दिया और मेरे द्वारा उन्हींकी प्रेरणासे हुए तनिक-से भी अनुकूल आचरणकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। वे मेरे बड़े भाई, सखा एवं स्वामी ही नहीं थे, मेरे पथप्रदर्शक, जीवन-सर्वस्व थे और हैं। ■

पं. श्रीतारादत्तजी मिश्र (पूज्य श्रीराधाबाबाके पूर्वाश्रमके सहोदर भाई)

अद्‌भुत विनयशीलता

परमपूज्य श्रीभाईजीके साथ मेरा क्या सम्बन्ध था, इसे मैं स्वयं ही ठीक-ठीक नहीं समझता। हाँ, इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि मुझ जैसा एक तुच्छ प्राणीं उन्हें जितना अपना मान सका, उससे अनन्तगुना अधिक उन्होंने मुझे अपनाया। मैं श्रीभाईजीको अपना बड़ा भाई मानता हूँ और संतके रूपमें अपना आराध्य। सन् १९७० की फरवरीमें मैं गोरखपुर श्रीभाईजीके दर्शनार्थ गया। उन दिनों उनका स्वास्थ्य ढीला था। जब मैं वहाँसे लौटने लगा, तब श्रीभाईजीने मेरा पैर छूना चाहा। मैंने कहा— भाईजी आप बड़े हैं तथा मैं आपको आराध्य मानता हूँ।

श्रीभाईजी न माने। उन्होंने कहा— आप पण्डित हैं, पूज्य हैं।

अन्तमें विवश होकर मुझे उनका प्रणाम स्वीकार करना पड़ा। ऐसी थी उनकी ब्रह्मण्यता, ऐसी थी उनकी विनयशीलता। ■

श्रीविष्णुहरिजी डालमिया

[१] ताऊजीका अनोखा वात्सलय

परम पूज्य ताऊजी (परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के वात्सल्य भरे हृदयकी जो एक परम मधुर छवि मेरे मानस-पटलपर अंकित है, उसे ही लिखनेका प्रयास कर रहा हूँ। सन् १९५७ के फरवरी मासकी बात है। मेरे पूज्य पिताजी (पूज्य श्रीजयदयालजी डालमिया) राजगंगपुर स्थित सीमेंट फैक्ट्रीमें किसी कार्यसे गये हुए थे। वहाँ उनके पैरपर ट्राली गिर पड़ी। ट्राली बोझिल और भारी थी। पैरमें बड़ी चोट आयी। चोट तो बहुत गहरी लगी थी, पर खूनकी नस कटी नहीं थी, इससे बहुत बचाव हो गया, अन्यथा जीवनपर ही आँच आ जाती। तुरन्त प्राथमिक उपचार किया गया और चिकित्साके लिये राजगंगपुरसे कलकत्ता ले जाया गया। कलकत्तेमें घावका आपरेशन करके पट्टी बाँध दी गयी।

इन दिनों परम पूज्य ताऊजी रतनगढ़में रह रहे थे। ताऊजीको ज्यों ही पिताजीके दुर्घटनाग्रस्त हो जानेका समाचार मिला, वे बहुत चिन्तित हो उठे। वे तो रतनगढ़से कलकत्ते आनेके लिये तैयार थे, परंतु हमलोगोंने ही उनको मना कर दिया। प्रायः प्रतिदिन ही पिताजीकी स्थितिका समाचार फोनसे उन्हें रतनगढ़ दे दिया जाता था।

मार्च मासमें पिताजीको कलकत्तेसे अपने घर दिल्ली ले आया गया। ताऊजी भी एक बार रतनगढ़से दिल्ली आये पिताजीको देखनेके लिये। डाक्टरोंका कहना था कि पैरके घावमें कोई खास खराबी तो नहीं है, परंतु घावके भरनेमें थोड़ा समय लग सकता है। डाक्टरोंसे ऐसी सान्त्वना मिलनेके बाद भी घावकी हालत ठीक नहीं लगती थी। दर्द और दोष घटनेके स्थानपर

बढ़ ही रहा था। सम्मान्य श्रीघनश्यामदासजी बिड़लाने तो बम्बई जाकर इलाज करानेका सुझाव दिया। पुनः घावका आपरेशन करना पड़ा और मवाद निकाल कर घावको साफ कर दिया गया।

आशा थी कि अब तो कष्ट दूर हो ही जायेगा, पर यह दूसरी बारका ऑपरेशन भी असफल रहा। दर्दकी हालत बता रही थी कि घावमें पुनः मवाद पड़ गया था। मवाद पड़नेका कारण डाक्टरोंकी समझमें नहीं आ रहा था। जैसा ऑपरेशन हुआ था और जो दवाएँ दी गयी थी, उसको देखते हुए ऐसा होना नही चाहिये था। हारकर डाक्टरोंने कहना आरम्भ कर दिया कि शायद पैरका पूरा पंजा काटना पड़ जाय।

यह सुनते ही परिवारके हम सभी लोग घबरा उठे। घावकी स्थितिको देखकर डाक्टरोंने जो कहना आरम्भ कर दिया था, उससे घरमें चिन्ता होने लग गयी। यह तो याद नहीं, परंतु परिवारके किसी व्यक्तिने सुझाव देते हुए पिताजीसे कहा— पैरको कटवानेसे पहले एक बार विदेश जाकर किसी कुशल डाक्टरको दिखवा लेना चाहिये।

इस बातको सुनकर पिताजीने कहा— यदि चिकित्साके लिये विदेश जाना होगा तो मैं तभी विदेश जा सकता हूँ, यदि श्रीभाईजी (अर्थात् पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) भी साथ-साथ चलें।

पिताजीकी बात सुनकर हमलोगोंका मन निराशासे भर गया। विदेश जानेकी शर्त बड़ी कठिन थी कि ताऊजी साथ-साथ चलें। प्रथम, ताऊजीपर बहुत अधिक कार्य-भार था 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादक होनेके नाते। उस उत्तरदायित्वके प्रति उनके द्वारा उपेक्षा अथवा उदासीनताकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। द्वितीय, बाबाका इन दिनों कठोर काष्ठ मौन व्रत चल रहा था और ताऊजीके साथ बाबा जायेंगे ही, अतः बाबाकी सेवा तथा भिक्षा आदिकी व्यवस्थाका प्रश्न था। काम-चलाऊ व्यवस्थाके लिये भी कई लोगोंको साथ ले जाना पड़ेगा। और क्या इस सहयोगियोंकी 'बरात' लेकर चलना ताऊजीको स्वीकार होगा? मनमें बड़ी दुविधा मची हुई थी, इसके बाद भी सारी परिस्थितिका निवेदन करते हुए मैंने ताऊजीको सारी बात बतलायी। मुझे अब यह स्मरण नहीं कि मैंने सब बातें टेलीफोन द्वारा बतलायी थी अथवा पत्र द्वारा।

उन सब बातोंको जानते ही ताऊजीने विदेश चलनेके लिये अपनी सहमति प्रदान कर दी। इससे ताऊजीके परिचितजनोंको तथा परिकरोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। विदेश-यात्रा करनेमें पद-पदपर परेशानी-ही-परेशानी थी और कई लोगोंको साथ ले जानेमें व्ययकी भी सीमा नहीं थी। कितनी ही परेशानी हो और कितना ही व्यय हो, वह सब नगण्य था ताऊजीके लिये पिताजीकी इच्छाको पूर्ण करने हेतु। पिताजीके प्रति वात्सल्यके इस अनोखे ज्वारको देखकर क्या छोटे क्या बड़े, सभी आश्चर्य करने लगे।

ताऊजीसे सहमतिका समाचार मिलते ही हमलोगोंके मनमें सान्त्वना और आशाका संचार हुआ यह देखकर कि अब विदेश-यात्राकी सम्भावना बन गयी है। ताऊजीने अपनी सहमति प्रदान करते हुए यह भी कहा कि विदेश जानेके पहले अन्तिम प्रयोगके रूपमें घावका एक बार और ऑपरेशन यहाँ करवा लेना चाहिये। यह सुझाव हमलोगोंको जँचा और पुनः, अर्थात् तीसरे ऑपरेशनकी तैयारी की जाने लगी।

रतनगढ़में ताऊजीने एक कार्य और किया। विदेश-यात्रा-सम्बन्धी अपनी सहमति प्रदान करनेके बाद तुरन्त उन्होंने एक श्रेष्ठ विप्रवरको बुलाकर पिताजीके स्वास्थ्यलाभके लिये एक अनुष्ठान आरम्भ करवा दिया। उस अनुष्ठानमें जपके लिये ताऊजीने अपनी निजी रुद्राक्षमाला दी थी। ताऊजीने जो संकल्प, जो मन्त्र, जो विधि और जो नियम बतलाये थे, उसके अनुसार वे विप्रवर देवाराधन करने लगे। देवाराधनको आरम्भ करनेके समय विप्रवरको जो शुभ शकुन हुए, उसको उन्होंने परम-परम मंगलमय माना एवं अनुष्ठानकी सफलताके प्रति उनकी आस्था बहुत बढ़ गयी।

वे विप्रवर जो अनुष्ठान कर रहे थे, उन्हें कोई दिव्यानुभव हुआ, जो शुभका सूचक था। उन्होंने अपने अनुभवकी जानकारी ताऊजीको दी, जिसे सुनकर ताऊजीने हल्की-सी मुस्कान बिखेर दी। इस रहस्यभरी मुस्कानका उन विप्रवरने उस समय यही अर्थ लगाया कि उन शुभ शकुनों तथा इस दिव्यानुभवके पीछे ताऊजीकी ही कोई भावना परोक्ष रूपसे क्रियाशील है। जब तीसरी बार ऑपरेशन हुआ तो घावके अन्दरसे कोयलेका एक बहुत छोटा-सा टुकड़ा निकला। इसी विजातीय वस्तुके अन्दर रह जानेके कारण घाव पक जाया करता था। उसके निकलते ही घाव क्रमशः अच्छी प्रकारसे भर गया और पिताजी स्वस्थ हो गये।

ताऊजीके उस अपार वात्सल्य, सफल देवाराधन, सतत हितचिन्तन और परोक्ष-प्रियताकी बात जब याद आती है तो हृदय भर-भर आता है।

[२] श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीका जीर्णोद्धार

शताब्दियोंसे चली आती हुई जनश्रुतियों, पुरातत्त्व-विभागद्वारा समय-समयपर की गयी खोजों, उत्खननसे मिलनेवाले अति प्राचीन अवशेषों तथा इतिहासज्ञोंके गहन अध्ययनपूर्ण अनुसन्धानोंसे यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि मथुराका आधुनिक केशव कटरा ही वह स्थान है, जहाँ मथुरापति कंसका कारागार था और जहाँ देवकीनन्दन-वसुदेवसुवन भगवान श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव हुआ था। इस स्थानपर सबसे पहला मन्दिर भगवान श्रीकृष्णके प्रपौत्र श्रीवज्रनाभने अपने कुलके अवतंस एवं आराध्यकी अर्चना हेतु श्रद्धापूरित हृदयसे बनवाया। यह निर्दिष्ट कर सकना कठिन है कि किस समय और किन कारणोंसे इस मन्दिरका अस्तित्व विलुप्त हो गया, किन्तु उपलब्ध तथ्योंके आधारपर ऐसा ज्ञात होता है कि फिर ईसा-पूर्व ८०-५७ की अवधिमें महाक्षत्रप सोडाषके राज्यकालमें श्रीवसु नामक एक व्यक्तिने श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलींपर एक मन्दिर, तोरणद्वार और वेदिकाका निर्माण करवाया था। कालान्तरमें यह मन्दिर भी काल-कवलित हो गया।

इसके उपरान्त तीसरा बड़ा मन्दिर सन् ४०० ई. के लगभग सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके शासन कालमें बना। इस विशाल मन्दिरके समीप बौद्ध एवं जैनियोंके विहार एवं मन्दिर बने हुए थे। इससे स्पष्ट है कि भगवान श्रीकृष्णका मन्दिर बौद्ध एवं जैन मतानुयायियोंके लिये भी आदरणीय एवं सम्माननीय था। उन दिनों वैष्णव मतके साथ-साथ हिन्दू धर्मके अंगभूत बौद्ध एवं जैन मत भी उत्कर्षको प्राप्त थे।

सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यद्वारा निर्मित इस भव्य मन्दिरको सन् १०१७ ई. में महमूद गजनवीने लूटा और तोड़ा। फिर सन् ११५० ई. में श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीपर पुनः एक नवीन

विशाल मन्दिरका निर्माण हुआ। तब मथुरापर महाराज विजयपाल देवका शासन था। यह विशाल मन्दिर पुनः विधर्मियोंद्वारा सोलहवी सदीमें सिकन्दर लोदीके शासनकालमें विनष्ट कर दिया गया। इस विध्वंशके लगभग १२५ वर्ष बाद मुगल बादशाह जँहागीरके शासनकालमें ओरछा नरेश राजा बीरसिंहजूदेव बुन्देलाने उस स्थानपर तैतींस लाख रुपयोंकी लागतसे बहुत विशाल मन्दिर बनवाया। भगवान श्रीकृष्णकी प्राकट्यस्थलीपर निर्मित इस विशाल मन्दिरकी कल्पनातीत भव्यता धर्म-मदान्ध औरंगजेबसे देखी नहीं गयी। अपने मजहबी जुनूनके वशीभूत होकर अन्य-धर्म-असहिष्णु औरंगजेबने सन् १६६९ ई. में ओरछा नरेश निर्मित उस मन्दिरको तुड़वाकर नष्ट कर दिया और उस मन्दिरकी बड़ी कुर्सीके एक भागपर मन्दिरके मसालेसे ही एक ईदगाह बनवा दी, जो अब तक खड़ी है। औरंगजेबद्वारा की गयी विध्वंस-लीलाके बादसे श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थली खण्डहरोंके रूपमें ही पड़ी रही। किसीने भी उसके उद्धार हेतु प्रयत्न नहीं किया।

सन् १९४३ ई.के आस-पासकी बात है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके संस्थापक एवं हिन्दुत्व-निष्ठाके मूर्तिमान स्वरूप महामना पण्डित श्रीमदनमोहनजी मालवीयने जब अत्यधिक उपेक्षित श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीके खण्डहरोंको देखा तो उनका तन-मन सिहर उठा। मस्जिदके आसपास घोसियोंकी बसावट थी। हिन्दुओंकी परमपवित्र परमपूज्य भूमिका ऐसा दुरुपयोग हो रहा था कि वहाँके वातावरणमें भीषण दुर्गन्ध व्याप्त थी और आहार-विहार-रत शूकर यहाँ-वहाँ डोल रहे थे। श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलींकी भूमिपर जहाँ-तहाँ गन्दगी दिखलायी दे रही थी। गिरे हुए परकोटेका मलवा चारों ओर फैला हुआ था। भूमि ऊँची-नीची तो थी ही, वहाँके गड्ढे बरसातमें पोखरे बन जाते थे। नित्य वन्दनीय भूमिकी नितान्त उपेक्षापूर्ण दुर्दशा देखकर पूज्य श्रीमालवीयजीका हिन्दू हृदय कराह उठा और उन्होंने वहीं श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीके पुनरुद्धारका संकल्प किया।

लगभग इसी समय धर्मप्राण श्रीजुगलकिशोरजी बिड़ला मथुरा पधारे और हिन्दू जातिकी धार्मिक-पौराणिक-ऐतिहासिक भूमि श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीकी दयनीय दशा देखकर उनका धर्म-प्रवण-हृदय अत्यधिक प्रपीड़ित हो उठा। मथुरासे लौटकर श्रीबिड़लाजीने श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीकी दुर्दशाके बारेमें पूज्य श्रीमालवीयजीको पत्र लिखा। श्रीबिड़लाजीका पत्र पहुँचे, इसके पहले ही पूज्य श्रीमालवीयजी बिड़लाजीको इस सम्बन्धमें पत्र लिख चुके थे।

दो महान विभूतियोंके हृदयमें श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीके पुनरुद्धारके पावन एवं दृढ़ संकल्पका उदय हुआ और एतदर्थ प्रयासका आरम्भ हो गया। ७ फरवरी १९४४ के दिन दानवीर श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाने राजा पटनीमलके तत्कालीन उत्तराधिकारियोंसे केशवदेव कटरा खरीद लिया। पुनरुद्धारके कार्यकी योजना बन ही रही थी कि पूज्य श्रीमालवीयजीका निधन हो गया और बड़े खेदके साथ लिखना पड़ रहा है कि उनके जीवनकालमें योजना पूर्ण नहीं हो सकी। पूज्य श्रीमालवीयजीकी अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिये श्रीबिड़लाजीने ऐडवोकेट श्रीद्वारकानाथजी भार्गवके परामर्शके अनुसार दि. २१ फरवरी १९५१ को 'श्रीकृष्ण जन्मभूमि ट्रस्ट' नामक एक न्यासकी स्थापना की, जिसका उद्देश्य है कि भगवान श्रीकृष्णकी पवित्र प्राकट्यस्थलीका सर्वांगीण विकास करके उसको ऐसा रूप प्रदान किया जाय जो भारतीय नीति, संस्कृति, धर्म और दर्शनका केन्द्र बन जाय, जिसके द्वारा देश-विदेशमें श्रीमद्भागवत

एवं श्रीमद्भगवद्गीताका संदेश प्रचारित होता रहे और जनताका आध्यात्मिक, सामाजिक एवं शारीरिक विकास हो।

श्रीकृष्ण जन्मभूमि ट्रस्टकी स्थापना सन् १९५१ में हुई थी, किन्तु सन् १९५३ तक कोई कार्य नहीं किया जा सका। मुसलमानोंकी ओरसे सन् १९४५ में किया गया अधिकार-प्राप्तिका एक मुकदमा इलाहाबाद हाईकोर्टमें निर्णयाधीन था। ७ फरवरी १९५३ को यह मुकदमा खारिज कर दिया गया। इतना ही नहीं, मुसलमानोंकी ओरसे अदालत दीवानी, फौजदारी, माल, कस्टोडियन एवं हाईकोर्ट- सभी न्यायालयोंमें एवं नगरपालिकामें मुकदमें चलाये जा रहे थे। श्रीकृष्ण जन्मभूमि ट्रस्टको अपने सतत्त्व एवं अधिकारकी पुष्टि एवं रक्षाके लिये बहुत व्यय एवं परिश्रम करना पड़ा। भगवानकी कृपासे सभी मुकदमोंके निर्णय श्रीकृष्ण जन्मभूमि ट्रस्टके पक्षमें हुए।

अब सबसे पहला कार्य था भूमिको स्वच्छ एवं समतल करनेका। १५ अक्टूबर १९५३ को विशाल श्रम-दान-यज्ञका शुभारम्भ हुआ। इस महान श्रमदान-यज्ञमें प्रथम आहुति दी पूज्य स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराजने। मथुरा नगरके युवकों एवं विद्यालयोंके छात्रोंके सहयोगकी जितनी सराहना की जाय, वह अल्प ही रहेगी। भूमिको स्वच्छ एवं समतल करनेका कार्य तत्परतापूर्वक बड़ी लम्बी अवधितक चलता रहा।

भूमिके कुछ भागके स्वच्छ और समतल हो जानेपर यहाँपर किसी मन्दिरके निर्माणकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी। भगवानके मंगलमय विधानसे सन् १९५६ ई. में 'कल्याण' के प्रवर्तक-सम्पादक संतप्रवर श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार छः सौ भक्तोंके साथ रेल द्वारा भारतके तीर्थोंके दर्शनके उपक्रममें मथुरा पहुँचे। अपने परिवारके साथ वे मथुरा स्थित श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीपर अपने श्रद्धासुमन अर्पण करनेके लिये गये। अपने जीवनाराध्य भगवान श्रीकृष्णकी उस पावनतम प्राकट्यस्थलीकी उपेक्षित दशाको देखकर उनके कोमल हृदयमें कितनी व्यथा हुई, इसकी कल्पना एक साधारण मानव कर ही नहीं सकता। सं. २०१२ वि. माघ कृ. १० सोमवार, ६ फरवरी १९५६ के दिन मथुराके 'लक्ष्मीदास भवन' में तीर्थयात्रियोंके सम्मानमें एक समारोहका आयोजन किया गया था। इस समारोहमें भाषण देते समय उनकी व्यथा उमड़ पड़ी थी। मथुराके नागरिकोंके समक्ष श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने कहा—

श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीकी दुर्दशा देखकर आँखोंमें आँसू आ गये। श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीपर बनी हुई यह मस्जिद तो राक्षसी अत्याचारका 'स्मारक' है, जो स्वतन्त्र भारतके लिये और भारतके अच्छे मुसलमानोंके लिये भी कलंक है। मुसलमानोंको चाहिये कि वे हिन्दुओंका यह परम पवित्र स्थान हिन्दुओंको सौंपकर अपना ऐतिहासिक कलंक धो डालें और हिन्दुओंसे सहानुभूति तथा सच्चा प्रेम प्राप्त करें। हमारी धर्मनिरपेक्ष सरकारका भी यह परम आवश्यक कर्तव्य है कि वह किसी एक धर्म-विशेषपर किये हुए घोरतम अत्याचारकी इस घृणित स्मृतिको मिटाकर यहाँके सब निवासियोंको धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करें। हिन्दुओंका तो यह परम पुनीत कर्तव्य और धर्म है ही कि वे अपने इस महान पवित्र, धार्मिक तथा ऐतिहासिक स्थानका सर्वांगीण उद्धार करके इसे पुनः ऐसा विशाल और सुन्दर बना दें कि जिससे शताब्दियोंतक यह स्थान भगवान श्रीकृष्णकी मधुर और गौरवमयी स्मृति दिलाकर विश्ववासियोंके मनोंको महान

आध्यात्मिक तथा विश्वकल्याणमयी प्रेरणा देता रहे। हिन्दुमात्रको यथासाध्य पूरे मनसे इसकी सहायता करनी चाहिये।

उस समय वहाँ मेरे पूज्य श्रीपिताजी (पूज्य श्रीजयदयालजी डालमिया) भी थे। श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके विशेष स्वजन एवं परम कृपापात्रके रूपमें पिताजीकी गणना की जा सकती है। श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीकी आँखोंमें अश्रुओंको देखकर समर्पित-जीवन पिताजी अत्यधिक भाव-विह्वल हो उठे और उन्होंने प्राकट्यस्थलीकी उत्तरी दीवालके मरम्मत करवानेके लिये तथा भगवान केशवदेवका मन्दिर बनवानेके लिये तत्काल घोषणा कर दी। मथुराके नागरिकोंने तथा व्रजमण्डलके सभी संतों-महन्तोंने, पण्डितों-विद्वानोंने भावभरे हृदयसे इसकी सराहना करते हुए कहा था कि श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीका आगमन एवं श्रीमंत श्रीडालमियाजीकी घोषणा आगामी महान कार्यकी शुभ-भूमिका एवं भावी महान उत्कर्षकी पूर्व-सूचिका है।

मन्दिर-निर्माणकी घोषणासे प्रसन्नता सभी को हुई, परंतु मेरा विश्वास है कि सर्वाधिक प्रसन्नता हुई पूज्य श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाको। पूज्य श्रीपोद्दारजीके उद्‌बोधक भाषण एवं पिताजीके पुनीत निश्चयका संवाद जब पूज्य श्रीबिड़लाजीको मिला, उनका मन अत्यधिक प्रफुल्लित हो उठा। पिताजीके प्रति पूज्य श्रीबिड़लाजीके हृदयमें बड़ी आत्मीयता थी तथा वे पिताजीके धर्मकार्यके प्रति उत्साह एवं अभिरुचिसे भी पूर्ण परिचित थे, अतएव पिताजीको उन्होंने बुलाया और कहा— जयदयाल! भगवान श्रीकृष्णकी प्राकट्यस्थलीके जीर्णोद्धार एवं उसके विकासका कार्य साधारण नहीं, महान ऐतिहासिक एवं अतिश्रेष्ठ धार्मिक कार्य है। इस संपूर्ण कार्यको तुम सँभाल लो। मेरी हार्दिक कामना है कि इस महान गौरवपूर्ण कार्यके सम्पन्न होनेका श्रेय तुमको प्राप्त हो। इस कार्यमें तुम्हें भगवानकी कृपा, संतोंका अनुग्रह और गुरुजनोंका शुभ आशीर्वाद मिलेगा।

पूज्य श्रीबिड़लाजीके उद्‌गारोंको सुनकर पिताजीका हृदय अत्यधिक उर्मिल हो उठा। पुलकित-हृदय पिताजीने उनकी प्रेरणाको अपने जीवनका मुख्य कार्य बना लिया। शीघ्र ही मन्दिर-निर्माणका कार्य आरम्भ हो गया। मन्दिर बन जानेके बाद गर्भ-गृहमें पधरानेके लिये भगवानके बाल-स्वरूपकी मूर्ति सम्माननीय श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाने प्रदान की। मन्दिरमें भगवद्‌विग्रहकी प्राण-प्रतिष्ठा सं. २०१४ वि. आषाढ़ शु. २ शनिवार, २९ जून १९५७ को रथ-यात्राके शुभ दिन हुई और इसका उद्‌घाटन भगवान श्रीकृष्णके प्राकट्य-दिवस श्रीकृष्णजन्माष्टमीके पुनीत अवसरपर सं. २०१५ वि. भाद्र कृ. ८ शनिवार, ६ सितम्बर १९५८ को श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने किया। इस श्रीकृष्णजन्माष्टमीके दिन श्रीकेशवदेव मन्दिरके उद्‌घाटन-महोत्सवके अवसरपर भाषण देते हुए श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने भगवान श्रीकृष्णकी भगवत्ता-महत्ता-पौराणिकता-ऐतिहासिकता-गुणगणनिलयता आदि अनेक पक्षोंपर प्रकाश डालते हुए उनके परमोज्ज्वल लोकोत्तर महादिव्य स्वरूपका जो प्रस्तुतीकरण किया, वह अपने ढंगका अनूठा था। जिन महापुरुषोंके संकल्प एवं सहयोगसे तथा जिन कार्यकर्ताओंकी कर्मठता एवं तत्परतासे श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीका जीर्णोद्धार हो सका, उनके प्रति आभार प्रकट हुए श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने कहा— हम कृतज्ञ हैं प्रातः स्मरणीय महामना श्रीमालवीयजीके तथा आदर्श चरित्र धर्म-हृदय श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाके, जिनके उत्साह, लगन, सदाग्रह, अध्यवसाय, प्रयत्न तथा उदारतासे यह श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थली पुनः श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीके

गौरवको प्राप्त कर सकी। आरम्भसे लेकर अबतकके इसके कार्यसंचालक, इसकी समितिके उत्साही तथा कर्मठ सदस्य भी समस्त देशवासियोंकी कृतज्ञताके पात्र है।

अपने इसी भाषणमें उन्होंने मुसलमान भाइयोंसे अनुरोध करते हुए कहा– *किसी एक पद्धतिसे होनेवाली पूजास्थलीको तथा किसी अवतार अथवा महापुरुषके जन्म या लीला-स्थलको बलात्कारसे हस्तगत करके उसपर अपना अधिकार जमाना पाप है और ऐसा अधिकार जबतक रहता है, तबतक वह कलंक, वह पाप, उस पापकी स्मृति तथा तज्जन्य राग-द्वेष बना रहता है। हमारे मुसलमान भाइयोंको चाहिये कि वे इन पाप-कलंकोंके जितने 'स्मारक' हैं, जैसे श्रीकाशीके पवित्र मन्दिर (श्रीविश्वनाथ मन्दिर), अयोध्यापुरीके पावन स्थल (श्रीराम प्राकट्यस्थली), सिद्धपुरके मन्दिर तथा अन्यान्य सभी पवित्र स्थान, उन सबको पुण्य दर्शन बना दें।*

भगवान श्रीकेशवदेवके मन्दिरका कार्य हो जानेके बाद संतों-भक्तोंका ध्यान श्रीकृष्ण-चबूतरेके जीर्णोद्धारकी ओर गया और सभी स्वजनोंने एतदर्थ श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीसे अनुरोध किया। उन्होंने इस अनुरोधको महदनुकम्पा ही माना। तत्पश्चात् उन्होंने श्रीकृष्णचबूतरेके जीर्णोद्धारके सम्बन्धमें मेरे पिताजीसे परामर्श किया। यह कार्य आवश्यक तो था ही। श्रद्धेय श्रीपोद्दारजी एवं पूज्य श्रीपिताजीकी प्रेरणासे परमादरणीय श्रीरामनाथजी गोयन्दकाने यह शुभ कार्य अपने हाथमें लिया। अपनी दिवंगत धर्म पत्नीकी स्मृतिमें उन्होंने श्रीकृष्णचबूतरेका जीर्णोद्धार करवाया। सन् १९६२ में यह कार्य सम्पन्न हुआ।

श्रीकृष्णचबूतरेके जीर्णोद्धारके समय एक विशेष मंगल प्रसंग सामने आया। नींवके लिये खुदाई करते-करते भूमिके नीचे वह विशाल कक्ष दिखलायी दिया, जो पहले श्रीओरछा-नरेश-निर्मित मन्दिरका गर्भ-गृह था। इस गर्भ-गृहको यथावश्यक मरम्मत कराकर ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रखा गया। गर्भ-गृहके उस प्राचीन सिंहासनपर ही देवकी-वसुदेव-सहित श्रीकृष्णजन्मकी झाँकियाँ चित्रित कर दी गयी हैं।

भगवान श्रीकृष्णका वाङ्मय स्वरूप श्रीमद्भागवत है और श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके नित्य सहचर पूज्य श्रीराधाबाबा (पूज्य स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज) के मनमें यह भाव स्फुरित हुआ कि व्रजमण्डलमें कहीं एक ऐसे मंदिरका निर्माण होना चाहिये, जिसकी दीवालोंपर सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतके श्लोक अंकित हों। श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने इस स्फुरणाका उल्लसित अन्तरसे अनुमोदन किया। इसका परिज्ञान पूज्य श्रीपिताजीको होते ही उन्होंने परम पूज्य श्रीबाबा एवं परम श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीकी भावनाको साकार रूप प्रदान करनेके लिये मन-ही-मन तुरन्त संकल्प कर लिया और वे कार्य-प्रवृत्त हो गये। यह भी निश्चित हो गया कि इस मन्दिरका नाम 'भागवत भवन' होगा।

जब यह योजना लोगोंके सामने आयी तो पारस्परिक विचार विनिमय, इसमें भी मुख्यतः पं. श्रीदेवधरजी शर्माके सुझावके उपरान्त पूज्य श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाकी प्रेरणासे यही निर्णय लिया गया कि भागवत भवनका निर्माण भगवान श्रीकृष्णकी प्राकट्यस्थलीपर ही होना चाहिये। निर्णयके अनुसार इस दिशामें तत्काल कार्य आरम्भ कर दिया गया और सं. २०२१ वि. माघ शुक्ल १०, बृहस्पतिवार ११ फरवरी १९६५ के शुभ दिवस संतप्रवर

श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके कर-कमलोंसे शिलान्यासका कार्य सम्पन्न हुआ।

शिलान्यास महोत्सवका एक विशिष्ट दृश्य यहाँ मुख्य रूपसे उल्लेखनीय है। यह महोत्सव २० दिनोंतक चलता रहा। इस अवधिमें रासलीला हुई, श्रीमद्भागवतकी कथा हुई, संतों-विद्वानोंके प्रवचन हुए, प्राकट्यस्थलीकी बड़ी सजावट हुई और रात्रिमें विद्युत्शृंगारकी जगमगाहट बड़ी दर्शनीय रही। यह सब हुआ, किन्तु इनके अतिरिक्त श्रीमद्भागवतके मूल संस्कृत श्लोकोंका जो सस्वर पाठ लगभग ३५० भागवती पण्डितों द्वारा सप्ताह पर्यन्त हुआ, वह दृश्य स्थानीय एवं आगन्तुक सभी भक्तोंके लिये विशेष आकर्षण एवं आदरका केन्द्र-बिन्दु बना हुआ था। श्रीमद्भागवतका यह सामूहिक सप्ताह-परायण श्रीकृष्णचबूतरेपर बने हुए एक अति विस्तृत-सज्जित पंडालके नीचे हो रहा था। भागवती पण्डितोंके सामूहिक सस्वर पाठसे सारा वायुमण्डल गूँज उठता था। मेरा अनुमान है कि इस प्राकट्यस्थलीपर भगवान श्रीकृष्णके यशोगानका ऐसा विशद आयोजन शायद ही कभी भूतकालमें हुआ हो। संध्याकालमें श्रीमद्भागवत पुराणकी आरतीके समयका दृश्य तो और भी भावोद्वेलक एवं प्रभावोत्पादक होता था। आरती-गायनके साथ-साथ जब श्रद्धेय श्रीपोद्दारजी श्रीमद्भागवतपुराणका नीराजन करते थे, उस दृश्यको देखनेके लिये सारा भक्त-समुदाय उमड़ पड़ता था। आरती हो चुकनेपर विप्रमण्डल वेद-मंत्रोंके तुमुल एवं ललित उच्चारणद्वारा जब देव-स्तवन करता और स्तवनोपरान्त श्रद्धेय श्रीपोद्दारजी जब पुष्पाञ्जलि अर्पित करते, उस समय कण्ठ-कण्ठसे जय-नाद फूट पड़ता था। पन्द्रह वर्ष पहले जो श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थली अति उपेक्षितावस्थामें दुर्गन्ध एवं मलिनताका आगार बनी हुई थी, आज वही स्थान अति सुसज्जितावस्थामें सौरभ और श्रेष्ठताका भण्डार बनकर जन-जनके द्वारा समादृत हो रही थी।

यहींपर प्रसंगानुरोधसे एक तथ्यका रहस्योद्घाटन समुचित रहेगा।

श्रीमद्भागवत-परायणके इतने विशद एवं विशाल आयोजनके पीछे एक विशेष हेतुका आभास स्पष्ट रूपसे मिल रहा है। श्रीमद्भागवतके ३५० सस्वर पाठके द्वारा श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीकी संशुद्धीकरणकी प्रक्रिया ही सम्पन्न की है। भगवान श्रीकृष्णकी प्राकट्यस्थली होनेके कारण त्रिकालमें भी इस भूमिके अपवित्र होनेकी सम्भावना है ही नहीं, किन्तु विधर्मियोंद्वारा समय-समयपर जो कुत्सित कृत्य हुए हैं, उससे इस पावन भूमिके वातावरणपर पाप-पंकिलताका आवरण तो यत्किंचित् रूपमें आ ही गया था, उस आवरणका निवारण आवश्यक था। भागवत-पाठके द्वारा इस उद्देश्यकी सिद्धि हुई है। श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके कार्य करनेकी शैली ऐसी थी कि न कहीं विज्ञापन, न तनिक प्रचार, न कुछ चर्चा और बड़ी सहज रीतिसे भूमि-संशुद्धिका महान कार्य स्वतः सिद्ध हो गया। सारा कार्य स्पष्ट रूपसे हुआ, फिर भी सब कुछ अस्पष्ट रहा। इस प्रच्छन्न हेतुका, इस सफल संयोजनका, इस महान सिद्धिका और इन ऋषि-सूत्रधारका बार-बार अभिनन्दन।

श्रीपोद्दारजीकी प्रेरणा-प्रोत्साहन-प्रयास-प्रवृत्तिसे श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीका जो वर्तमान रूप उभरकर जगतके सामने आया, उस उज्ज्वल रूपको देखकर पूज्य श्रीमालवीयजीकी दिवंगत आत्माको अवश्य ही परम प्रसन्नता हुई होगी। इस प्राकट्यस्थलीकी उन्नतिके रूपमें अपनी अभिलाषाको पूर्ण होते देखकर वे श्रीपोद्दारजीको न जाने कितना शुभाशीर्वाद दे रहे होंगे।

इतना ही नहीं, इस प्राकट्यस्थलीकी जीर्णावस्थासे उद्धार एवं उत्कर्षकी ओर बढ़ते चरणोंको देखकर श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाकी दिवंगत आत्माको भी न जाने कितना परितोष हो रहा होगा और वे भी परम पूज्य श्रीपोद्दारजीको न जाने कितना साधुवाद अदृश्य रूपमें दे रहे होंगे।

भागवत भवनके निर्माणका भव्य स्वप्न ऐसा श्रेष्ठ था कि इसमें युग-युगतक धर्म-भावके संपोषण एवं जन-जनमें भक्ति-भावके प्रसारण करनेकी कल्याणमयी समर्थ संभावना संनिहित थी। इसीलिये तो पूज्य श्रीबाबाके मानसमें उदित इस श्रेष्ठ स्वप्नका श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने उन्मुक्त स्वरमें अनुमोदन किया था। इस युगल विभूतिके धर्म-संपोषक एवं भक्ति-प्रसारक श्रेष्ठ स्वप्नको साकार करनेके लिये श्रद्धामूर्ति मेरे पिताजीने अपना तन-मन-धन-जीवन सारा लगा दिया। श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीपर जो-जो भी कार्य हुए, इन सबके सम्बन्धमें पूज्य पिताजी प्रत्येक निर्णय श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीसे परामर्श करके ही लिया करते थे। श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीकी कार्य-प्रक्रिया भी अद्भुत थी। वे ध्वंसात्मक नहीं, रचनात्मक प्रक्रियामें विश्वास रखते थे। प्रहार प्रति-प्रहारको जन्म देता है, अतः प्रहार नहीं, प्रगति करो। धैर्य खोकर प्रहार करनेसे अपनी शक्तिका क्षय होता है तथा पथमें बाधा आती है। धैर्य रखकर निष्ठापूर्वक प्रगति करनेसे अपनी शक्तिका सदुपयोग होता है तथा लक्ष्यकी सिद्धि होती है। प्रहार ध्वंसात्मक प्रक्रिया है, प्रगति रचनात्मक। श्रद्धेय श्रीपोद्दारजी बार-बार यही कहते थे कि निष्ठापूर्वक अपने पथपर प्रगति करो। यदि कोई रेखा छोटी करनी हो तो उस रेखाको मिटानेकी चेष्टा मत करो, अपितु उसके समानान्तर एक बड़ी रेखा खींच दो, स्वतः ही पहले वाली रेखा छोटी पड़ जायेगी। इस कार्य-प्रक्रियाका सुन्दर परिणाम आगे चलकर हिन्दू समाजको मिला। भागवत-भवनके बन जानेपर सबने देखा कि डेढ़ सौ फीटकी ऊँचाईपर मन्दिरके स्वर्ण-मण्डित-कलशकी दिव्याभा प्रत्येक दर्शनार्थीकी दृष्टिको स्वतः आकृष्ट कर लेती है। इस ऊँचाईके समक्ष ईदगाह ओछा लगता है। वास्तविकता यह है कि स्वर्णकलशकी दिव्याभाके माध्यमसे सत्य एवं श्रद्धाकी गरिमा ही उद्भासित हो उठी है। सत्य एवं श्रद्धाको तपना अवश्य पड़ता है, परंतु अन्तमें विजय सत्य एवं श्रद्धाकी ही होती है और अत्याचारको मस्तक झुकाना पड़ता है।

पूज्य पिताजीने श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके महान स्वप्नको सकार करनेके लिये जिस तत्परतासे जितना परिश्रम किया, वह सदा ही स्मरणीय रहेगा। ढलती आयुवाले पिताजीके श्रमको देखकर एक युवककी क्षमता भी लजा जाती थी। पके केश एवं साधारण वेश वाले पिताजीका स्वास्थ्य प्रायः शिथिल ही रहता था, इसके बाद भी उन कार्यरत पिताजीके साथ स्वस्थ व्यक्ति भी कदमसे कदम नहीं मिला पाते थे। सच्ची बात यह है कि महान उद्देश्यके लिये जीवनोत्सर्गकी भावना अमित क्षमता, अतुल योग्यता और असीम पात्रता प्रदान कर देती है। पिताजीने स्वयं खड़े होकर पूरा निर्माण कार्य करवाया। उस अनोखी तत्परता एवं अनवरत परिश्रमका ही परिणाम था कि भागवत भवनके निर्माणका महान आध्यात्मिक स्वप्न १७ वर्षोंमें मूर्तिमान हो उठा। भागवत भवनकी दीवालोंपर श्रीमद्भागवतके श्लोकोंको अंकित करनेके लिये बारहों स्कन्धोंके सभी श्लोकोंको पिताजीने ताम्र-पत्रोंपर उत्कीर्ण करवाया। ये ताम्र-पत्र भागवत भवनके परिक्रमा-पथमें लगाये जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त मेरी परम पूजनीया माताजीके नामसे एक विशाल अन्तराष्ट्रीय अतिथि-गृहका भी निर्माण हुआ है, जो आवासकी आधुनिक सुविधाओंसे युक्त है और जहाँ देश-विदेशके पर्यटक एवं तीर्थयात्रीगण ठहरा करते हैं।

इस विशाल ऐतिहासिक मन्दिर 'भागवत-भवन' की प्राण-प्रतिष्ठाका कार्य सं. २०३८ वि. फाल्गुन कृ. ४ शुक्रवार, १२ फरवरी १९८२ को सम्पन्न हुआ। मेरा अपना आन्तरिक विश्वास है कि प्राण-प्रतिष्ठा-महोत्सवमें श्रद्धेय श्रीपोद्दारजी अप्रत्यक्ष रूपसे विद्यमान थे, तभी तो सारा कार्य सानन्द-सोत्साह सम्पन्न हो गया। हाँ, एक बात और है। यदि वे इस अवसरपर प्रत्यक्ष रूपसे होते तो हम लोगोंको अतीत आनन्द होता। भागवत-भवन-निर्माणके कार्यकी पूर्णताको देखकर उन्हें जो प्रसन्नता होती, उनके उस प्रसन्न मुख मण्डलको देखकर हमलोगोंका आनन्द अनन्त गुणा विवर्धित हो जाता। भले वे आज हमारे सामने नहीं हैं, परंतु यही हमारे लिये परमाह्लाद-प्रदायक है कि उनका महान स्वप्न उनकी अनुपस्थितिमें अपूर्ण नहीं रह पाया।

प्राण-प्रतिष्ठाके कई मास पूर्वकी बात है। पूज्य पिताजीको रह-रह करके भागवत-भवनके शिलान्यासका वह १७ वर्षपूर्व वाला शुभ दिवस याद आ रहा था, जब भवनकी नींव डाली गयी थी। शिलान्यासका वह सारा दृश्य पिताजीकी आँखोंके सामने नाच रहा था। नींव रखनेके लिये अति विस्तृत एवं बहुत गहरा गड्ढ़ा खोदा गया था। उस गहरे गड्ढ़ेमें, जहाँसे नींव उठनी थी, वहाँ आसनपर महाशक्तिस्वरूपा पूज्या श्रीमाँ (श्रीपोद्दारजीकी धर्मपत्नी) बैठी हैं धर्मविभूति श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके पार्श्वमें और इस महान पोद्दारदम्पतिने वास्तु-देवताका पूजन करके अपने कर-कमलोंसे इस भवनकी नींव रखी। जिस भवनकी नींव उस समय रखी गयी थी, उसी स्थानपर निर्मित भागवत भवनमें अब भगवद्विग्रहोंकी प्राण-प्रतिष्ठा होनेवाली है। पूज्य पिताजीके हृदयमें अभिलाषा जाग उठी कि प्राण-प्रतिष्ठा पूज्या श्रीमाँके द्वारा हो। पूज्या श्रीमाँ आज हमारे मध्य विराजित हैं। जिस प्रकार शिलान्यासके समय सारा देवार्चनकार्य पूज्या श्रीमाँके द्वारा हुआ था, उसी प्रकार वे ही अब प्राण-प्रतिष्ठाके अवसरपर भी करें।

पूज्या श्रीमाँसे अनुरोध करनेके लिये एवं परम पूज्य श्रीबाबासे शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये पिताजी गीतावाटिका (गोरखपुर) गये। प्राण-प्रतिष्ठाके शुभ संवादको सुनकर पूज्या श्रीमाँको अतीव आह्लाद हुआ, परंतु वे मथुरा जा सकनेकी स्थितिमें नहीं थी। वृद्धावस्था एवं दुर्बलताके कारण विवशता थी। इस विवश परिस्थितिमें पूज्या श्रीमाँसे जो शुभ संदेश मिला तथा परम पूज्य श्रीबाबासे जो शुभाशीर्वाद प्राप्त हुआ, इसीमें पिताजीने अपना अहोभाग्य समझा। पूज्या श्रीमाँने शुभ संदेश दिया :—

जयदेव,

तुम्हारे भाईजीने जिस 'भागवत-भवन' की नींव डाली थी, उस कार्यको आज सम्पन्न होते देखकर मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। तुमने जिस लगन और निष्ठासे इस कार्यको सम्पन्न किया है, उसे देखकर मेरा मन अत्यन्त प्रफुल्लित है।

- रामदेई पोद्दार

परम पूज्य श्रीबाबाने शुभाशीर्वाद दिया—

यह 'भागवत-भवन' कालके प्रवाहमें असंख्य प्राणियोंके परम मंगलका द्वार उद्घाटित करेगा, यह मेरा संशयहीन अचल विश्वास है।

श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीपर निर्मित श्रीकेशवदेवमन्दिर, श्रीकृष्ण-चबूतरा, श्रीभागवत-भवन प्रतीक हैं, जो श्रद्धाभावनाकी संजीवनी शक्तिके परिचायक हैं। वह संजीवनी शक्ति कालातीत

है। अन्य मतावलम्बियोंकी धार्मिक असहिष्णुताने इस पावन भूमिपर खड़े श्रद्धाके प्रतीकोंको कई बार अपना ग्रास बनाया, किन्तु इतिहासके पृष्ठ साक्षी हैं कि श्रद्धा-भावकी वह सनातन शक्ति समय-समयपर स्वतः ही अभिव्यक्त हो उठी। निष्ठावानके हृदयकी सच्ची श्रद्धाके समक्ष परिस्थितिकी प्रतिकूलता परास्त हो जाती है। जब-जब और जहाँ-जहाँ ऐसी श्रद्धा व्यक्त हुई है, सदैव ही श्रद्धाभिभूत जन-मानसने भावभरे मनसे उन श्रद्धा-प्रतीकोंकी वन्दना की है। वर्तमान युगमें जिन तीन प्रधान महापुरुषोंके सत्य संकल्प एवं प्रबल प्रयाससे हिन्दू हृदयकी श्रद्धा-भावना अभिव्यक्त होकर श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीपर मूर्तिमान हो उठी, उनकी प्रतिमाएँ भागवत-भवनमें मुख्य-स्थानपर प्रस्थापित की गयी हैं। ये प्रतिमाएँ प्रस्थापित हुई है पूज्य पिताजीकी कोमल भावनाओंके अनुसार ही। महच्चरणाराधनमें जीवनकी वास्तविक सार्थकता माननेवाले पिताजीके द्वारा प्रतिमा-प्रस्थापनका यह मंगल कार्य उनके स्वभावके अनुरूप ही हुआ है। जिनकी ये प्रतिमाएँ हैं, वे तीन महापुरुष हैं:—

(१) महामना पं. श्रीमदनमोहनजी मालवीय (२) उदार हृदय श्रीजुगलकिशोरजी बिड़ला और (३) धर्म-विभूति श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार।

इस त्रययुगपुरुषोंके श्रीचरणोंमें बार-बार वन्दन। ■

श्रीसुदर्शन सिंहजी 'चक्र'

[१] सच्चे अर्थमें महापुरुष

'कल्याण'के प्रधान सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार लोगोंमें 'भाईजी' नामसे प्रसिद्ध थे और सचमुच वे सभीके भाई— स्नेहशील भाई थे। मुझे तो निजी अग्रजका-सा स्नेह उन्होंने दे रखा था।

श्रीभाईजीके साथ मेरा सम्पर्क बहुत पुराना है और वर्षों मैं उनके पास रहा हूँ। इस सम्पर्कमें मैंने उन्हें जो देखा और जाना है, उस विषयमें कुछ कहनेसे पूर्व मुझे एक-दो बातें दूसरी कहनी हैं। मैंने संतों-महापुरुषोंकी बहुत-सी जीवनियाँ देखी-पढ़ी हैं, किन्तु श्रीचैतन्य-चरितावलीको छोड़कर शेषसे मुझे प्रायः निराशा ही मिली है। महापुरुषोंकी जीवनियोंके लेखकोंने प्रायः महापुरुषकी महापुरुषताको गौण कर दिया है और महत्त्व जिन चमत्कारोंको दिया है, वे महापुरुषके जीवनमें भी महत्त्वहीन होते हैं और साधक के लिये भी व्यर्थ हैं।

बचपनसे ही मुझे सिद्धियों-चमत्कारोंके होने-घटनेमें विश्वास रहा है, किन्तु उनसे वितृष्णा रही है। अनेक प्रख्यात सिद्ध मिले भी, किन्तु सिद्धियोंके प्रति कुतूहल ही नहीं जागा।

महापुरुषता क्या है? यह है क्लेशकी आत्यन्तिक निवृत्ति। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश— ये पाँच क्लेश हैं। इनमेंसे अविद्या निवृत्त हुई या नहीं, यह स्वसंवेद्य है। इसे कोई दूसरा जान नहीं सकता। अभिनिवेश अर्थात् शरीरको ही सब कुछ मानना, यह साधारण साधकमें भी नहीं होता। अतः दूसरेके लिये अस्मिता अर्थात् सम्मान-सुयश-पदप्रतिष्ठाकी वासना और राग-द्वेष देखना ही सम्भव है और ये जिसमें न दीखें, वही 'महापुरुष' है।

महापुरुषके जीवनमें यह देखा जाना चाहिये कि वह राग-द्वेषसे कितना ऊपर है, कितना सहिष्णु है, कितना निरपेक्ष है। सर्वत्र भगवद्भाव उसमें कितना है। साथ ही उसके संगसे, उसकी प्रेरणासे लोगोंमें कितने सद्गुण, कितना भगवद्भाव आया और कितने दुर्गुण छूटे। चमत्कार ही देने हों तो वे किसी महापुरुषकी जीवनीके परिशिष्ट मात्र हो सकते है।

सहस्रों लोग श्रीभाईजीद्वारा लाभान्वित हुए हैं और उनके सम्पर्कमें रहे हैं। सबको वे अपने लगे हैं। उनके सम्बन्धमें बहुत अधिक गहराईमें जाकर कुछ कहनेकी स्थिति मेरी नहीं है।

मुझ-जैसे व्यक्तिको भी अपना लेना, सह लेना और उसे निर्बाध स्नेह देते रहना, यह मुझे श्रीभाईजीकी महापुरुषताका सबसे बड़ा प्रमाण लगता है, क्योंकि स्वभावसे ही मैं रुक्ष, उद्धत और जो मनमें आये– उचित या अनुचित सो कर बैठनेवाला था। ऐसा निःशंक, निरंकुश, उद्धत व्यक्ति साथ रहे तो उसे निभा लेना क्या सहज है, पर श्रीभाईजीने मुझे निभाया है। कुछ उदाहरण देख लें–

एक सज्जन मुझसे बहुत रुष्ट हो गये। उनका रोष उचित था। श्रीभाईजीको उन्होंने पत्र लिखे, वे लिखते गये। जो भी लिख सकते थे, लिखा। उन्हें क्या पता कि वे पत्र लिखकर कुएँमें डाल रहे हैं। कोई और न सूचित करता कि उन्होंने श्रीभाईजीको पत्र लिखे हैं तो मुझे पता भी नही लगता। श्रीभाईजीके पास किसीकी शिकायत गयी तो वह कुएँमें नहीं, अगाध समुद्रमें डूब गयी। उसकी छाया भी उपर झलकनेवाली नहीं थी।

अब मैं दूसरा प्रसंग बता रहा हूँ। श्रीभाईजीकी ओरसे उनके नाम आये पत्रोंके उत्तर मैं जब भी गोरखपुर रहा, प्रायः देता रहा था। एक बार उनके कमरेमें गया तो देखा कि मेरा लिखा कोई उत्तर बिना भेजे रखा है, पुराना हो गया है। तब पता लगा कि किसीका लिखा कोई उत्तर या दूसरा कोई काम श्रीभाईजीको ठीक नहीं लगता था तो वे स्वयं लिखते थे, किन्तु जिससे त्रुटि हुई है, उसे कुछ बतलाते नही थे। उनका कहना था– इससे उन्हें दुःख होगा।

बहुत पहलेकी बात है। घरमें लौकीका शाक बना। श्रीभाईजीको पहले भोजन करानेको बैठाया गया। उन्होंने अचानक कहा– शाक बहुत अच्छा बना है। मैं शाक ही खाऊँगा। सब मुझे दे दो।

लौकीका जितना शाक बना था, सब वे खा गये। भाभीजी (श्रीभाईजीकी धर्मपत्नी) जब उनकी थालीमें भोजन करने बैठी तो देखा जहाँ लौकीका शाक पड़ा था, वहाँ पड़ा भात कड़वा हो गया था। तब कही पता लगा कि शाक कड़वी लौकीका बन गया था। पूछनेपर श्रीभाईजीने भाभीजीसे कहा– मैं तो चाहता था कि महाराजिनको दुःख न हो किंतु तुमने बतलाकर मेरा उद्देश्य ही नष्ट कर दिया।

उन दिनों गीतावाटिकामें बिजली नहीं थी। मैं दूर कुटियामें सो गया था। अचानक सावित्री (श्रीभाईजीकी सुपुत्री) ने आकर जगाया– बाबूजी मानते नहीं, वे अभीतक जागकर काम कर रहे हैं। आप उन्हें मना कीजिये।

मैंने घड़ी देखी तो रात्रिके ग्यारह बजे थे। उठकर कोठीमें छतपर गया तो देखता हूँ कि श्रीभाईजी कार्बाइडका बदबूदार लैंप जलाये कागजोंको उलटने-पलटने और लिखनेमें लगे हैं। मैंने बिना कुछ कहे लैंप बुझा दिया तो वे चौंके। मुझे देखकर बोले– आप क्यों उठ आये ? दो

पृष्ठ ही और लिखने है। सबेरे अवश्य प्रेसको देने हैं।

मैंने तनिक दृढ़ स्वरमें कहा– अब दो अक्षर भी नहीं। आप उठिये और सो जाइये। मैं सबेरे लिख दूँगा।

कागजोंको समेटते हुए बोले– अच्छा, मैं सोता हूँ। आप जाकर सोइये।

अपने सहकारियों, सेवकों, परिकरों आदि सबके बदले वे स्वयं काम करते थे– करते रहे। किसीको किसी प्रकार भी संकोच या दुःख न हो इसके लिये उनका मन रात-दिन सावधान रहा।

सन् १९५५ की बात है। मैं कैलाश-मानसरोवरकी यात्रा करके लौटा था। थकावटके स्थानपर मनमें उत्साह था। चाहता था कि लगे हाथ मुक्तिनाथ-दामोदरकुण्डकी भी यात्रा हो जाय तो उत्तराखण्डके प्रायः सब तीर्थोकी मेरी यात्रा पूरी हो जाय। मैंने श्रीभाईजीसे मुक्तिनाथ जानेकी अनुमति माँगी और वह मिल गयी।

सितम्बरके दूसरे सप्ताहसे अक्टूबरतक यात्रा होनी चाहिये थी। यही सबसे उपयुक्त मौसम था। सब तैयारी हो ही चुकी थी। सोचा कि गोरखपुरसे ऐसी बस पकड़ेंगे कि उसी दिन हवाई जहाज मिल जाय भैरहवामें और रात्रि व्यतीत करके दूसरे दिन पैदल यात्रा प्रारम्भ कर दें।

सामान बाँध लिया गया। बस-अड्डेके लिये रिक्शा बुला लिया गया। अब मैं श्रीभाईजीको प्रणाम करने उनके कमरेमें गया। श्रीभाईजी गीतावाटिकाके सम्पादन-कार्यालयवाले अपने कमरेमें चटाईपर बैठे थे। कागज देख रहे थे। मैंने जाकर प्रणाम किया। वे बोले– आप जा रहे हैं ?

अचानक श्रीभाईजीने मुख लटका लिया। उनका स्वर भारी और उदास हो गया। वे बोले– जाइये। 'कल्याण'के विशेषांक (सत्कथांक) के लिये अभी चित्र निश्चित नहीं हुए, चित्रकारोंको निर्देश नही दिये गये। मैं खटूँगा- करूँगा ही किसी प्रकार।

सर्वथा अकल्पित बात थी। मैंने बहुत पहले इस यात्राके सम्बन्धमें उनसे पूछ लिया था। उन्होंने प्रसन्न होकर अनुमति दी थी। आवश्यक प्रमाण-पत्र मँगानेमें सहायता की थी। चित्रोंका चुनाव, उनके सम्बन्धमें चित्रकारोंको निर्देश श्रीभाईजी ही सदा करते थे। मैंने बहुत अल्प सहायता ही इसमें कभी-कभी की थी।

सबसे विशेष बात यही थी कि श्रीभाईजीको इस प्रकार बोलते हुए सुननेका यह मेरे लिये पहला अवसर था। आगे भी कभी मैंने उनको इस स्वरमें बोलते हुए नही सुना। मेरे लिये उनका यह स्वर असह्य था। अतः मैंने कह दिया– आप ऐसे क्यों बोलते है ? मना करना है तो सीधे मना कर दीजिये।

इतना सुनते ही उल्लास-भरे स्वरमें पूरे जोरसे श्रीभाईजीने उस समयके सम्पादन-विभागके व्यवस्थापक दूलीचन्दजी दुजारीको पुकारकर कहा– भाया, रिक्शा लौटा दे। सुदर्शनजी नहीं जा रहे हैं।

अब मेरे कहनेको कुछ रह ही नहीं गया था। मैं चुपचाप उठ आया। रिक्शा लौट गया। बिस्तर खोल दिया गया। मनमें कुछ दुःख भी हुआ ही।

दूसरे दिन मैं अपने नित्य कर्मसे निवृत्त हुआ ही था कि श्रीभाईजी मेरे कमरेके द्वारपर आ

खड़े हुए और बोले— सुदर्शनजी ! बड़ी दुर्घटना हो गयी।

मैंने पूछा— क्या हुआ ?

उन्होंने बताया— अभी जिलाधीशका फोन आया था। उन्होंने पूछा था कि आपके यहाँसे जो मुक्तिनाथ जानेवाले थे, वे कल गये या नहीं। मैंने कह दिया कि नहीं गये। उन्होंने बतलाया कि कल जानेवाला हवाई जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो गया। उसके सब यात्री मर गये।

पीछे समाचारपत्रोंमें छपा कि आँधी-तूफान और भयानक ओला-वृष्टिसे हवाई जहाज तो नष्ट हुआ ही, वह मोटर-मार्गकी सड़क भी कई मीलतक टूट गयी। पन्द्रह-बीस दिनसे पहले मार्गके खुलनेकी सम्भावना नहीं रही थी। मुझे उसी हवाई जहाजसे जाना था और श्रीभाईजीने मेरी वह यात्रा, वह महायात्रा भी रोकी थी।

जिन लोगोंने उनको सामने गालियाँ दी, फटकारा, उलटा-सीधा कहा ही नहीं, लिखकर, नोटिसें छपवाकर बँटवायी, उन सबका भी वे सदा अत्यन्त आदरसे स्वागत करते रहे। उनकी धनसे, मनसे, सेवा करते रहे।

सबमें भगवान, सब रूपोंमें भगवान, यही उनका मुख्य उपदेश, मुख्य प्रेरणा, मुख्य जीवनव्रत था।

स्वयं भगवन्मय, जगतको भगवन्मय देखनेवाले और कर्ममात्रको भगवत्सेवा समझकर करनेवाले ऐसे महापुरुषका मुझे स्नेह-सम्पर्क मिला, यह मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य था।

[२] आदर्श गृहस्थ

अच्छे संयमी, सद्गुणी विवेकशील लोग भी कह देते हैं— बच्चोंको तथा अपने आश्रितोंको सँभालने, सुधारने, शिक्षित करनेका दायित्व तो हमपर है ही। यह तो कर्तव्य है।

यह कर्तव्य है या मोह ? आपके ही बच्चे क्यों सुधरें या शिक्षित हों ? आपके आसपास जो अनाथ, असहाय बच्चे हैं, वे आपके नहीं हैं क्या ? लेकिन अपनोंकी ममता, यह मोह छोड़ देना बहुत कठिन है। अपनी मान्यता, अपनी समझके अनुसार चलनेका आग्रह अपने आश्रितोंपर लादनेमें कौन कितना सावधान रह पाता है।

श्रीभाईजीके माता-पिता जब जीवित रहे होंगे, उस समय उनसे मेरा परिचय नही था। मेरा परिचय जब हुआ, तब श्रीभाईजीकी एकमात्र सन्तान उनकी पुत्री थी और उस सुपुत्रीके दो पुत्र और दो कन्याएँ थी। ये सब श्रीभाईजीके साथ ही रहते थे। दूसरे भी अनेक लोग श्रीभाईजीके साथ ही रहते थे। ये लोग भी श्रीभाईजीके परिवारके अभिन्न अंग हो गये थे। अब सब उस परिवारके अंग है। ये सब लोग कैसे रहें, क्या करें, इसपर श्रीभाईजीने कोई अंकुश कभी नहीं रखा। कभी देखा भी नहीं कि कौन क्या करता है। इसके लिये उन्हें अनेकोंने दोष दिया कि वे अपने आश्रितोंको ठीक चलानेकी ओर ध्यान ही नहीं देते।

किसीकी-अपने दौहित्रों तककी कोई बात श्रीभाईजीको ठीक नहीं लगती तो एकाध बार केवल सम्मति देनेके ढंगसे अपनी बात कह देते थे। उसपर ध्यान दिया गया तो ठीक, न भी दिया जाय तो कोई आग्रह नहीं।

घर, परिवारके लोग जो करनेको कहते थे, जो माँग करते थे, उसे उनकी इच्छानुसार पूरा

करनेका वे प्रयत्न करते थे। इसका एक उदाहरण स्मरण आता है।

बाई सावित्री (श्रीभाईजीकी पुत्री) को कर्णमूलग्रन्थि शोथ (मम्स) हो गया। ज्वर था, पीड़ा थी। घरके लोगोंने डाक्टर बुलवानेको कहा। श्रीभाईजीने डाक्टर बुलवा दिया। चिकित्सा चलने लगी।

यह संक्रामक रोग है। गीतावाटिकाका चौकीदार भवानीसिंह भी इस रोगसे पाँच-सात दिन बाद ग्रस्त हुआ। उसका भाई जीवबोधन सिंह दवाके लिये श्रीमाधवशरणजीके पास आया। माधवशरणजीने होम्योपैथिक दवाकी तीन पुड़िया बनायी, किन्तु हिचक गये। वे बोले— घरसे पुस्तक देखकर दवा दूँगा।

यह कहकर वे घर चले गये। जीवबोधन सिंहने मुझसे कहा— भैयाको बहुत कष्ट है। आप उन्हें देख लें।

मैंने जाकर देखा कि भवानीसिंहको तेज ज्वर है। कर्णमूल ग्रन्थिमें शोथ एवं पीड़ाके कारण वह कुछ पेय भी नहीं ले सकता था। श्रीमाधवशरणजीने मेरे सामने ही दवाकी पुड़ियाँ बनायी थी। मुझे लगा कि उनका पहिला निदान ही ठीक था। मैंने वहीं पुड़ियाँ जीवबोधन सिंहको दे दी और कहा— आधे-आधे घंटेपर रोगीको दे दो।

प्रातःकाल जब मैं अपने नित्यकर्मसे निवृत्त हो चुका, श्रीभाईजी मेरे कमरेके द्वारपर आकर बड़े उत्साहसे बोले— आप चमत्कार कर सकते हैं, यह आज पता लगा। भवानी सिंह रात्रिमें ही स्वस्थ हो गया। वह स्नान करके दूध लाने चला गया है।

मैंने कहा— इस रोगकी औषधि तो आप भी जानते हैं।

श्रीभाईजी होम्योपैथिक चिकित्साके अच्छे जानकार थे। उन्होंने दवाका नाम लेकर पूछा— आपने यही दी थी।

मैंने स्वीकार करके पूछा— सावित्री सप्ताह भरसे कष्ट पा रही है। उसे आपने दवा क्यों नहीं दी? ऐसे तो उसे अभी और आठ-दस दिन स्वस्थ होनेमें लगेंगे।

श्रीभाईजीका उत्तर मुझे कभी भूला नहीं। उन्होंने कहा— औषधि मैं दे सकता था या आपसे कहता तो आप दे देते, किन्तु तब सबका सन्तोष नही होता। स्वस्थ तो वह हो जाती, पर सब यही समझते कि मैंने पैसे बचानेके लिये डाक्टर नही बुलवाया। रोगको तो प्रारब्ध पूरा करके जाना है। कुछ दिन और थोड़ा कष्ट हो लेगा तो कोई विशेष बात नहीं, किन्तु उसको, उसकी माँको और दूसरोंको भी अब संतोष तो है कि चिकित्सा ठीक चल रही है।

सावित्रीको ठीक होनेमें लगभग बीस दिन लगे, किन्तु श्रीभाईजीने न स्वयं दवा दी और न मुझे देनेको कहा।

गीतावाटिकाके समीप रहनेवाले तथा गोरखपुर नगरके मारवाड़ी परिवारोंके लोग अपनी घरेलू समस्याएँ लेकर आते थे, उनके परस्पर-विवादको सुनना तथा उनको समझाकर, सन्तुष्ट करके विदा करना सरल काम नहीं था। यह पञ्चायत प्रायः जुटी रहती थी और कई-कई घंटे लगते थे इसमें। श्रीभाईजीके निकट रहनेवाले लोग जानते है कि श्रीभाईजी ऐसे लोगोंके आनेपर एस्प्रो अथवा सोरोडीनकी गोलियाँ खा-खाकर यह काम करते रहे कई वर्षोंतक, क्यों कि वे

लगातार कई वर्षोंसे अस्वस्थ थे। उनके स्वास्थ्यकी स्थिति यह थी कि उन्होंने 'हिन्दू संस्कृति अंक' के सम्पादनके समय सन् १९४९ ई. में मुझसे कहा था– नेत्रोंके पलक खोलनेमें भी कष्ट होता है। चुपचाप पड़े रहनेको जी करता है।

अपने शरीरके प्रति भी कितने निर्मम थे वे, यह इसीसे समझा जा सकता है कि पीड़ा-शामक गोलियाँ लेकर वे लोगोंका विवाद ही नहीं सुलझाते रहे, तीर्थयात्रा ट्रेनमें सबके आग्रहके कारण साथ गये। 'कल्याण' का सम्पादन करते रहे। साथ-साथ सहायताके, गोरक्षाके जो कार्य ले रखे थे, उनको भी करते रहे।

गृहस्थका प्रधान कर्म है अतिथि-सत्कार। इस सम्बन्धमें मैं कुछ नहीं कहूँगा। जिनको भी श्रीभाईजीके समीप जानेका कभी अवसर मिला है, वे उनके आतिथ्यकी तत्परतासे अवगत हैं।

'गृहेष्वतिथिवद् वसन्', आदर्श गृहस्थ वह जो घरमें अतिथिके समान तटस्थ रहे। इस प्रकार रहने वाले गृहस्थ मुझे केवल श्रीभाईजी ही मिले थे।

[३] उनकी सहनशीलता

गीतावाटिकामें मैं जिस कोठरीमें रहता था। मेरे कार्यालय चले जानेपर श्रीभाईजीके प्रियजन उस कोठरीमें फोटोग्राफीका कुछ काम सीखते। पुरानी पुस्तकोंकी फोटो-प्रति बनाते। उनसे अपेक्षा थी कि मेरे कोठरीमें आनेसे पूर्व वे काम समाप्त करके, सब सामान तख्तेके नीचे रख करके चले जाया करें। बड़ी सावधानीसे वे इस अपेक्षाका निर्वाह करते थे।

एक दिन उनमेंसे किसीसे थोड़ी भूल हुई। इन्लार्जर वे तख्तेके नीचे थोड़ा कम खिसका गये। मैं रात्रिमें सोकर उठा तो मुझे ठोकर लगी। चोट तो नहीं लगी, किन्तु झल्लाकर मैंने इन्लार्जर उठाकर बाहर फेंक दिया। उसके शीशे टूट गये, कैमरा दूर जा गिरा। मैं तो समयपर कार्यालय चला गया, किन्तु उन लोगोंने बाहर पड़े शीशेके टुकड़े चुनकर उठाये। मेरी कोठरीसे सब सामान उठा ले गये।

बात श्रीभाईजी तक न जाय, यह सम्भव नहीं, किन्तु कुछ हुआ भी, इनकी चर्चा मेरे कानतक कभी नहीं आयी।

एक बार ही नहीं, तीन या चार बार मेरे औद्धत्यसे, मेरी उच्छृंखलतासे, मेरे असंयमसे वहाँके लोगोंको बहुत क्षोभ हुआ। उनका क्षोभ उचित था। श्रीभाईजीके पास जानेके अतिरिक्त उनके पास उपाय नहीं था, किन्तु परिणाम ? वे श्रीभाईजीके पास गये और कुछ कहा, यह बात भी मुझे पता नहीं लगती, यदि कोई दूसरा मुझे वह न बतलाता।

[४] मुझसे झगड़िये

मेरी कहानियोंके कुछ संग्रह गीताप्रेसने छापे। 'कल्याण' में उनकी सूचना देखकर मैंने खूब कड़ा पत्र श्रीभाईजीको लिखा। मेरे पास उनका उत्तर आया। बीमार चलते हुए स्वयं उन्होंने ही उत्तर दिया था– आपकी कहानियोंको मैंने सहज भावसे वैसे ही छपनेके लिये भेज दिया, जैसे अपनी कोई रचना भेजता हूँ। आपसे पूछना भी चाहिये, यह स्मरण नहीं आया। अब झगड़ना हो तो मुझसे झगड़िये। ■

पं. श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री

स्वजनकी प्रतिष्ठा

गीताप्रेससे प्रकाशित है 'देवर्षि नारद' और इस पुस्तकके लेखक हैं श्रीइन्द्रनारायणजी द्विवेदी। श्रीद्विवेदीजीके पास धनाभाव था और एक बार ये तीन सौ रुपया नहीं चुका सके। पानेवालेने न्यायालयमें मुकदमा दायर कर दिया। मुकदमेंमें श्रीद्विवेदीजी हार गये। बात तो सच्ची थी ही। इलाहाबादमें शनिवारको फैसला सुना दिया गया कि यदि आगामी सोमवारतक तीन सौ रुपया नहीं जमा किया गया तो श्रीद्विवेदीजीको साधारण जेल हो जायेगी।

श्रीभाईजीको मुकदमेका विवरण शनिवारकी शामको गोरखपुरमें मालूम हुआ। मालूम होते ही श्रीभाईजी विह्वल हो गये कि क्या तीन सौ रुपयोंके लिये श्रीद्विवेदीजी जेल चले जायेंगे और उनकी इज्जत नहीं रहेगी। रातभर उनको नींद नहीं आयी। गीतावाटिकामें सबेरे सत्संग होता था। गीताप्रेसके श्रीशुक्लाजी सत्संगमें आये। वे कचहरीके कामके जानकार थे। आते ही श्रीशुक्लाजीको तीन सौ रुपया देकर विदा करते हुए श्रीभाईजीने कहा— ट्रेनके पहुँचनेका समय और कोर्टका समय कुछ इस प्रकार है कि आप इलाहाबाद उस समय पहुँचेंगे जब कि कोर्टका समय हो चुकेगा। गाड़ीसे उतरते ही आप सबसे पहले कोर्ट चले जाइयेगा और पता लगा लीजियेगा कि श्रीइन्द्रनारायणजी द्विवेदीका केस किस कोर्टमें है। ज्यों ही उनके नामकी आवाज लगे, त्यों ही उनके रुपये आप जमा कर दीजियेगा। ऐसा न हो कि रुपयोंके न पहुँचनेसे उनकी इज्जतमें बट्टा लग जाय।

श्रीशुक्लाजी तत्काल चले गये और हुआ भी ऐसा ही जैसा श्रीभाईजीने कहा था। इधर श्रीद्विवेदीजीके नामकी आवाज लगी और उधर श्रीशुक्लाजी कोर्टके द्वारपर पहुँचे। श्रीशुक्लाजीने तीन सौ रुपये जमा कर दिये। अपने जनकी प्रतिष्ठाका प्रश्न श्रीभाईजीका अपना प्रश्न होता था। ■

श्रीचन्द्रदीपजी

उदारमना श्रीभाईजी

श्रीभाईजीके निकट-सम्पर्कमें दो-ढाई वर्ष रहनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं सम्भवतः सन् १९३४ के मई-जून मासमें उनके पास गया था। सबसे पहले मुझे उनके व्यक्तिगत पत्रोंका उत्तर देनेका कार्य सौंपा गया। उनके कार्यका यह विभाग बड़ा महत्त्वपूर्ण विभाग था। उनके पत्रोंको देखनेसे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता था कि उनके व्यक्तित्वका कितना अधिक प्रभाव जन-मानसपर था और किस तरह भारतके अनेक प्रान्तोंके लोग जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें उनसे पथ-प्रदर्शनकी अपेक्षा रखते थे। उस कार्यकी गम्भीरता, पवित्रता और उत्तरदायित्वका ख्याल करके ही सम्भवतः वे चाहे जिससे उस कार्यमें मदद नहीं लेते थे और पत्र इतने आते थे कि उनका उत्तर देना अकेले उनके लिये सम्भव नहीं होता था।

इस कार्यको करते हुए मुझे उनके अगाध ज्ञानका थोड़ा-सा परिचय मिला। वे हिन्दी भाषाके अतिरिक्त बँगला, गुजराती और मराठीपर पूरा अधिकार रखते थे। संस्कृतका भी वे बहुत अच्छा ज्ञान रखते थे। अँग्रेजी वे इतनी अच्छी समझते थे कि कभी-कभी 'कल्याण-कल्पतरु'के लिये अनूदित लेखोंमें संशोधनके ऐसे सुझाव देते थे कि अँग्रेजीके अच्छे विद्वान् भी चकित रह जाते थे। हिन्दी, बँगला, गुजराती और मराठीमें धार्मिक-आध्यात्मिक पुस्तकें कौन-कौन-सी हैं, कहाँ-कहाँसे प्रकाशित हैं, किस-किसकी लिखी हैं, उनका कितना मूल्य है और उनमें किस विषयका प्रतिपादन है, यह मानो उनकी जबानपर बराबर रहता था। पूरी गीताको अच्छी तरह कण्ठस्थ कर लेना तो गीताप्रेसके सत्संगियोंके लिये एक आम बात थी, पर इसके अलावा श्रीभाईजीको सभी भाषाओंके कितने विशेष-विशेष उद्धरण याद थे, इसे देखकर चकित हुए बिना नहीं रहा जा सकता था। आज भी इसका परिचय हमें उनके प्रकाशित लेखों और भाषणोंसे मिल सकता है। यह सब देखकर मुझे ऐसी धारणा हो गयी थी कि अपने विषयका जितना अगाध और विस्तृत ज्ञान श्रीभाईजीको था, उतना शायद ही किसी दूसरे हिन्दी-सम्पादकको होता हो, जब कि तथाकथित स्कूली शिक्षा किसी भाषामें भी श्रीभाईजीको प्राप्त नहीं थी।

उनके पास रहनेपर उनके चरित्रकी एक और विशेषताकी ओर मेरा ध्यान सहज ही खिंच गया। देखा, उनकी बातोंमें अधिकारका प्राकट्य नहीं होता था। वे अपने सहकर्मियोंको प्यार करते थे और सदा उनके साथ प्यारसे ही व्यवहार करते थे। केवल कार्यालयके कामकाजके सम्बन्धमें ही नहीं, कार्यकर्ताओंकी व्यक्तिगत सुख-सुविधापर भी उनका सदा ध्यान रहता था। कब कौन कितना काम करता है, यह वे कभी नहीं देखते थे। वे अपने कार्यकर्ताओंकी ईमानदारीपर विश्वास करते थे और इस कारण उनके साथ रहनेवाले लोग काम भी कम नहीं करते थे। साधारणतया हमलोगोंका कार्य खा-पी लेनेके बाद दस बजे आरम्भ होता था। उन दिनों टेबल-कुर्सीकी बहार उनके बगीचेमें नहीं थी, चटाइयोंपर बैठकर, अधिक-से अधिक साधारण काठकी बनी छोटी-सी डेस्ककी सहायता लेकर काम किया जाता था। हमलोग अपनी-अपनी चटाई बिछाकर कार्य करने बैठ जाते। खाने-पीनेकी गर्मी और आबहवाकी गर्मीके कारण आँखें झपकने लगती और प्रायः हम सभी लोग थोड़ी देरके लिये अपनी-अपनी चटाईपर चित हो जाते। श्रीभाईजी छतके ऊपरके एक कमरेमें काम किया करते थे। कभी-कभी जरूरत होनेपर नीचे आते थे। जब भी वे उस समय नीचे आते तो दूरसे ही हमलोगोंको सोया देखकर वापस चले जाते। कभी अत्यन्त आवश्यक होता तो चुपकेसे अपना काम करके चले जाते और यदि कोई जग जाता और उठ बैठता तो बड़े ही प्रेमसे उसे पूरा विश्राम ले लेनेके लिये कहते और शीघ्र ही वहाँसे चले जाते। उन्होंने कभी किसी बातके सिलसिलेमें यह प्रकट नहीं किया कि उसके कारण कार्यमें किसी प्रकारकी असुविधा हुई या देर हो गयी। वे हमारे जगनेपर ही प्रायः नीचे आते और किसीसे कोई काम कराना होता तो उसे कराते।

सन् १९३६ में अगस्तके दर्शन-दिवसपर मैं पांडिचेरी जानेकी तैयारी करने लगा। उन दिनों गोरखपुर जिलेमें बड़ी भयंकर बाढ़ आयी हुई थी और श्रीभाईजी सहायताकार्यमें व्यस्त थे। रात-दिन उसी कार्यमें उनका सारा समय चला जाता था। उनसे मिलना-जुलना भी सम्भव नहीं होता था। एक दिन मैंने समय पाकर उनसे इतना ही कह दिया— इस बार पन्द्रह अगस्तके

दर्शन-दिवसपर मैं पांडिचेरी जाना चाहता हूँ।

फिर श्रीभाईजीसे मिलनेका मौका ही नहीं मिला। जिस दिन मैं रवाना होने जा रहा था, उसी दिन सबेरे वे मेरे रहनेके स्थानपर आ गये। उन्हें हठात् अपने यहाँ आया देख मैं चकित हो गया और थोड़ी शर्म भी लगी कि मैं ही क्यों नहीं जाकर मिल आया। मेरे बरामदेमें ही वे खड़े हो गये और मेरे कंधेपर हाथ रखकर बड़े प्रेमसे कहने लगे— आपने आश्रम जानेकी इच्छा प्रकट की थी, पर फिर कभी मिले ही नहीं, मुझे बाढ़के कार्यके कारण अवकाश नहीं मिला कि आपको बुलाकर पूछूँ। आज सुना कि आप रवाना हो रहे हैं। तो आपने अपने खर्चका क्या प्रबन्ध किया?

मेरा उत्तर सुनकर उन्होंने कहा— नहीं-नहीं, इसकी कोई जरूरत नहीं। खर्चकी कोई बात आपको नहीं सोचनी है। मैं स्टेशन भिजवा रहा हूँ। आप वापस कब आ रहे हैं?

मैंने कहा— इच्छा है कि इस बार वहीं रह जाऊँ, पर अभी मुझे केवल दर्शनकी ही आज्ञा मिली है। वहाँ रहनेकी आज्ञा वहाँ जानेपर माँगूँगा।

उन्होंने कहा— ठीक है। यदि आज्ञा मिल जाय, तब तो कोई प्रश्न ही नहीं, यदि न मिले तो तुरन्त मुझे खबर दे दीजियेगा। आवश्यक खर्च भिजवा दिया जायगा। अभी या कभी भी, जब आश्रमसे बाहर आना हो तो आपको और कहीं जानेकी जरूरत नहीं। आपके लिये यहाँ बराबर ही जगह खाली रहेगी।

इस बातपर टिप्पणीकी कोई आवश्यकता नहीं। बस, इतना यहाँ और जोड़ दूँ कि गीताप्रेसमें रहते समय मैं शायद तीन बार आश्रम आया और हर बार उन्होंने वह खर्च अपना खर्च समझा। मुझे न माँगना पड़ा और न उसकी चिन्ता करनी पड़ी। इसका मूल्य और महत्त्व उस समय बहुत अधिक बढ़ जाता है, जब कि कोई अन्य सम्प्रदाय और अन्य साधना-मार्गसे सम्बन्ध रखता हो। यह बात उनकी धार्मिक और हार्दिक उदारताकी ओर स्पष्ट ही संकेत करती है। वहाँ रहते हुए भी मैंने स्पष्ट देखा कि हिन्दू-धर्मके प्रायः सभी सम्प्रदायों और साधना मार्गोंके विद्वानों और साधकोंकी वे खुले दिलसे सेवा किया करते थे।

केवल विद्वानों तथा साधकोंके लिये ही नहीं, वरं सभी दुःखी एवं अभावग्रस्त व्यक्तियोंके प्रति उनमें अगाध करुणा थी और सबके कष्टोंमें वे हाथ बँटानेकी कोशिश करते थे। ऐसे लोग प्रायः ही गीताप्रेसके बगीचेमें आया करते थे और दो-एक दिन मेहमान रहकर तथा यथासम्भव सहायता लेकर चले जाया करते थे। एकाध तो ऐसे भी देखे गये, जो अपने सभी कष्टों और अभावोंके समय बराबर आया करते थे और हर बार एक-सा ही दयापूर्ण व्यवहार पाया करते थे। इस दयामें भी श्रीभाईजीकी एक विशेषता थी। यह तो हम जानते ही हैं कि सारी दुनियाकी सम्पत्ति उनके ही हाथोंमें नहीं थी और इसलिये वे चाहे जिसको मुँह-माँगा दान नहीं दे सकते थे, पर इस देनेमें उनका भाव बड़ा विशाल और अनोखा रहता था। वे अपनी शक्तिको अपने ध्यानमें नहीं रखते थे, बल्कि माँगनेवालेकी आवश्यकताको अपने ध्यानमें विशेषरूपसे रखते थे। किसीके लिये कुछ करते रहनेसे वे कभी ऊबते नहीं थे। यह उन्हें ख्याल ही नहीं होता था कि मैंने बहुत कर दिया, अब करना बेकार है या अनुचित है। कई उदाहरण हमने उनसे बातचीतके सिलसिलेमें सुने हैं और देखे भी हैं, जिनमें दूसरा कोई भी व्यक्ति ऊबे बिना न रहता, पर वे

हँसते हुए और पूरी सहानुभूतिके साथ माँगें पूरी करते रहते। एक उदाहरण शायद पर्याप्त होगा, जो महात्माओंके विषयमें चर्चा करते हुए स्वयं उन्होंने बताया था। एक महात्मा बम्बईमें उनके पास आया करते और कुछ दिन उनके यहाँ ठहरा करते थे। उन महात्माका मन शायद बड़ा अस्थिर था या विचित्र ढंगका था। वे सुबह कहते कि आज हलुआ खानेकी बड़ी इच्छा है, हलुवा बनवाओ। फरमाइश अंदर घरमें चली जाती, हलुवा बनकर तैयार भी हो जाता। पर उधर खानेके समयसे थोड़ी देर पहले महात्माजी बोल उठते कि भाई हनुमान! हलुवा नहीं, खीर बनवा दो तो अच्छा।

एक मुस्कानके साथ तुरन्त हुक्म जारी होता कि महात्माजीके लिये खीर तैयार की जाय। घरमें खलबली मच जाती, पर अन्तमें खीरकी तैयारी भी हो जाती, परंतु महात्माजीका मन तो अपना ठहरा नहीं, चौकेमें किसी दिन कुछ खा लेते तो किसी दिन कुछ और किसी दिन तो बिना कुछ खाये ही न जाने कहाँ काफूर हो जाते। यह अनुभव दो-चार बार नहीं, शायद अनगिनत बार, महीनों होता रहा। गीताप्रेसमें भी हमलोगोंके सामने कई ऐसे उदाहरण आये, जिनमें किसी भी दूसरेके धैर्यकी बुरी तरह परीक्षा हो जाती, पर श्रीभाईजी सदा प्रसन्न मुद्रामें 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' ही बने रहते, उन्हें कोई शिकायत नहीं रहती।

एक उदाहरण हमने श्रीभाईजीके बगीचेमें और देखा, जो केवल थोड़े-से पैसों एवं परिश्रमको ही चुनौती देनेवाला नहीं था, बल्कि मानवीय स्वभाव और चरित्रके बहुत-से तत्त्वोंको एक साथ चुनौती देनेवाला तथा प्रचण्ड झञ्झाकी तरह झकझोर देनेवाला था। उन दिनों वहाँ महाराष्ट्र प्रान्तके एक संन्यासी रहते थे। सुना था कि वे हिमालयमें कहीं तपस्या करते थे, पर गीता-रामायणके प्रचारके कार्यमें सहयोग देनेके लिये वहाँ आ गये हैं। दैव-विधानसे उनका मस्तिष्क विकृत हो गया और वे अवाञ्छनीय चेष्टाएँ करने लगे। पीछे वे लोगोंको मारने-पीटने लगे, पर श्रीभाईजी सब सहन करते थे। एक दिन वे श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' पर, जो उस समय वहाँ कार्य करते थे, टूट पड़े। हमलोगोंने अपनी जान खतरेमें डालकर उन्हें बचाया, अन्यथा न जाने माधवजीपर क्या बीतती। शोर-गुल शान्त नहीं हुआ था कि किसीने दौड़कर श्रीभाईजीको इसकी सूचना दे दी। श्रीभाईजी तत्काल वहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने संन्यासीका हाथ पकड़कर उन्हें अपने पास बिठा लिया। उनके आते ही संन्यासी बहुत कुछ शान्त हो गये। ऐसा लगा कि श्रीभाईजीके प्रति उनके मनमें बड़ा आदर-भाव था। वे उस विक्षिप्तावस्थामें भी एक अपराधीकी भाँति सिर झुकाकर श्रीभाईजीके सामने बैठ गये। श्रीभाईजीका संयम, सहन-शीलता, प्रेमपूर्ण उलाहनेका ढंग, यह सब कुछ बड़ा अनोखा था। उन्होंने संन्यासीको समझाकर कश्मीर चले जानेके लिये राजी कर लिया और सम्भवतः उसी दिन किसी समय उन्हें रवाना कर दिया गया। जबतक मैं वहाँ था, तबतक उन्हें नियमित डेढ़ सौ रुपया महीना (वह जमाना आजकी अपेक्षा बहुत सस्ता था) खर्च भेजा जाता था। श्रीभाईजी बराबर उन्हें पत्र लिखा करते थे और उनका समाचार मँगाते रहते थे। एक संघर्षशील आत्माके प्रति श्रीभाईजीका यह स्नेह और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार देखकर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ।

श्रीभाईजी सदा पूर्ण जागरूक थे कि धार्मिक-आध्यात्मिक जगतमें कहाँ क्या हो रहा है, उसका क्या प्रभाव जन-समाजपर पड़ सकता है और इस विषयमें उनका अपना क्या कर्तव्य है। 'कल्याण'के माध्यमसे वे अपने विचार बराबर व्यक्त करते रहे। जो श्रीभाईजी युवावस्थामें

क्रान्तिकारी आन्दोलनके साथ थे, वे पीछे एक प्रबल आध्यात्मिक आन्दोलनके सूत्रधार बन गये। हिन्दूधर्म एवं हिन्दू संस्कृतिमें उनकी आस्था अटूट और गम्भीर थी। ■

श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव'

प्रेममूर्ति श्रीभाईजी

जुलाई, १९३२ 'सनातनधर्म' (काशी) से छुटकर 'कल्याण' गोरखपुरमें आ गया था। काशीमें रहा व्यक्ति गोरखपुरमें कैसे टिके और नौकरी तो नौकरी ही है, चाहे वह स्वर्गमें हो। सोचा कि काशीका 'चना चबेना गंग जल' ही अच्छा था, कहाँ आ गया गोरखपुरके 'नरक' में।

गीताप्रेस उन दिनों गोरखपुरके सबसे गंदे और तंग मुहल्लेके दमघोंटू वातावरणमें था। श्रीपोद्दारजीने मेरी विवशता देखी और कंधेपर प्यारसे हाथ रखते हुए कहा– घबराइये नहीं, यह तो 'लोकालय' है। आप हमारे साथ शहरसे दूर गोरखनाथजीके मन्दिरके आगे बगीचेमें रहेंगे। वहाँ सारा वातावरण आपको अनुकूल मिलेगा।

कैसा है यह व्यक्ति, जो मनकी व्यथाको समझ जाता है और इतना प्यार दे सकता है, मुझ जैसे सर्वथा एक अपरिचित अदने आदमीको ! मनमें इस प्रश्नके साथ श्रीपोद्दारजीके मानवीय रसके प्रति एक सहज आस्थापूर्ण श्रद्धा जगी। यही था प्रथम साक्षात्कारका प्रथम संस्कार।

मझोला कद, भरा-पूरा शरीर, उन्नत प्रशस्त ललाट, गेहुँआ रंग, ललाटपर गोपीचन्दनकी एक बिंदी शोभा दे रही थी। प्रसन्नवदन, श्वेत-शुभ्र खादीकी धोती और खादीका ही कुर्ता, पैरोंमें 'फलाहारी' जूते, भावभीनी आँखें, सिरसे पैरतक जैसे हृदय-ही-हृदय हो। लगा कि यह व्यक्ति लाखोंमें एक है। ऐसा मधुमय-प्रेममय व्यक्ति मिलता कहाँ है ? मालवीयजी महाराजके 'पवित्रं मंगलं परं' सांनिध्यसे छूटा हुआ व्यक्ति आ गया श्रीपोद्दारजीके प्यारभरे सांनिध्यमें।

श्रीपोद्दारजी जीवनके आरम्भमें सशस्त्र क्रान्तिकारियोंके गिरोहके नेताके रूपमें लगभग दो वर्ष बंगाल सरकारके कोपभाजन होकर शिमलापालमें नजरबंद रहे और उसके बाद बंगालसे सदाके लिये निष्कासित होकर रतनगढ़ (बीकानेर) तथा बम्बई पहुँचे और वहीं श्रीमन्त सेठ जमनालाल बजाजके सहयोगमें व्यापार करने लगे, परंतु प्रभुकी पुकारपर सब कुछ रामके हवाले कर 'कल्याण'का सम्पादन करने लगे। प्रथम वर्ष 'कल्याण' बम्बईसे ही छपता और निकलता रहा। दूसरे वर्षसे उसका प्रकाशन गोरखपुरसे होने लगा। प्रभुकी पुकार और संत सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका प्यार, 'कल्याण'के मूलमें प्रेरणाके यही स्रोत थे। संत सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका और श्रीघनश्यामदासजी जालान गीताप्रेसके मस्तिष्क थे, परंतु उनके हृदय थे भाईजी श्रीपोद्दारजी, सचमुच माँका हृदय, पुरुषशरीरमें वात्सल्यमयी माँका हृदय !

'कल्याण'का दिन-दूना, रात-चौगुना बढ़ता हुआ यश उसके सम्पादकको कभी प्रभावित नहीं कर सका। 'कल्याण' डेढ़ लाखसे अधिक छपता है, परंतु श्रीभाईजी आरम्भमें जैसे अनासक्त, सेवापरायण, उदारमना थे, अन्तिम क्षणतक भी वैसे ही रहे। उन्होंने कभी अपने

नामका पैड नहीं छपने दिया, अपने निवासपर नामकी तख्ती नहीं लगने दी और उनकी सेवाएँ इतनी गुप्त थीं कि बायाँ हाथ भी नहीं जान सका कि दाहिने हाथने क्या और कितना दिया, परिवारके व्यक्तियोंको तो पता ही क्या हो सकता था!

गहराईसे विचार करनेपर यह अनुभव होता था कि श्रीभाईजी 'वासुदेवः सर्वमिति' को संसिद्ध कर चुके थे। उनका विपुल साहित्य (क्या लेख, क्या कविता, क्या पत्र और क्या टिप्पणियाँ), उनका श्वास-प्रश्वास, उनके साथ रहनेवाले व्यक्तियोंका आचरण, उनके आस-पासका समस्त वातावरण— यह सब इस सत्यका साक्षी था। जिस अनुभूतिको श्रीअरविन्दने उत्तरपाड़ामें अभिव्यक्त किया था, वही अनुभूति श्रीभाईजीको सहज रूपमें उपलब्ध थी। किसी साधनाविशेषकी अपेक्षा भगवत्कृपा ही इसमें मुख्य कारण थी, ऐसा ही मानना चाहिये। कितना आश्चर्य होता था, परंतु कितना सुखद लगता था यह देखकर कि सब-के-सब श्रीपोद्दारजीको 'भाईजी' कहते थे। गाँधीजी, मालवीयजी, लाला लाजपतराय, टण्डनजी, जमनालालजी, सम्पूर्णानन्दजी, कृष्णकान्त मालवीय, रफी अहमद किदवई, युगलकिशोर बिड़ला, सेठ गोविन्ददास, लालबहादुर शास्त्री, जैनेन्द्रकुमार, मैथिलीशरण गुप्त, शिवप्रसाद गुप्त, वासुदेवशरण अग्रवाल, बच्चनजी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, कितने नाम गिनायें, सबके वे 'भाईजी' ही थे।

जब मैं 'कल्याण'में पहुँचा, तब उसका सम्पादकीय विभाग गोरखनाथके सुप्रसिद्ध मन्दिरके पश्चिमकी ओर एक छोटेसे उद्यानमें था। मकान कहनेको नाममात्र था, चारों ओर दूर-दूरतक आम, अमरूद, नाशपाती और नारंगीके बगीचे थे। एक विशालकाय आम्रवृक्षके नीचे चटाई डालकर हमलोग काम करते थे। प्रातःकाल चार बजेसे रातके ग्यारह-बारह बजेतक कथा, कीर्तन, सत्संग, प्रवचनका प्रोग्राम चलता रहता था। कार्यालयका कोई बँधा हुआ समय न था, फिर भी औसतन सात-आठ घंटे सम्पादकीय कार्यमें हमलोग संलग्न रहते थे। मेरे जिम्मे अँग्रेजी पत्रोंका उत्तर लिखवाना, कल्याणके लिये एक लेख लिखना, 'कल्पतरु'के लिये एक अनुवाद करना और पुस्तकोंका अन्तिम प्रूफ देखना था। यह कार्य सर्वथा मेरे मन लायक था। सारा वातावरण इतना प्राकृतिक, उन्मुक्त, सहज और भक्तिरससे ओत-प्रोत था कि मालूम होता था कि मैं इसीकी तलाशमें इतने दिन भटक रहा था। श्रीभाईजीका शील-स्वभाव सहज ही किसीको भी आकृष्ट कर लेता था। वाणी इतनी मधुर, स्वभाव इतना स्नेहिल और व्यवहार इतना साधु था कि लगता था— यह व्यक्ति इस पृथ्वीका नहीं है, किसी देवलोकसे उतरकर विश्वको प्रेमका पाठ पढ़ानेके लिये, राग-द्वेषकी महावह्निमें जलती हुई मानवतापर अमृतकी वर्षा करनेके लिये ही मनुष्यका शरीर धारण किये हुए है। सम्पादकीय विभागमें हम जितने आदमी थे, उतने प्रान्तोंके थे। बिहार, बंगाल, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, मद्रास और राजस्थानका एक अपूर्व संगम 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें देखनेको मिलता था। बगीचेमें ही एक किनारे चौका था, जिसमें हम सभी भोजन करते थे और उसमें अपनी-अपनी रुचि तथा आवश्यकताके अनुसार किसीको छाछ तो किसीको लाल मिर्च, किसीको केवल भात तो किसीको रोटी दी जाती थी। इस प्रकार हमलोग मिल-जुलकर 'सार्वदेशिक भोजनालय'में एक साथ भोजन करते थे और रातको बगीचेमें अपनी-अपनी चटाई बिछाकर सो जाते थे। यहाँ बड़ा ही निराला और पवित्र वातावरण था और ऐसा प्रतीत होता था कि इसके दिव्य सौन्दर्यके सामने स्वर्ग भी तुच्छ है।

छः बजे प्रातः काल हमलोग स्नान-ध्यानसे निवृत्त होकर सामूहिक कीर्तनके लिये एकत्र हो जाते थे। झाँझ, मृदंग, ढोलक, करताल, खोलके साथ करीब एक घंटेतक खूब धुआँधार कीर्तन होता था। कीर्तनके बाद गोस्वामी पं. श्रीचिम्मनलालजी शास्त्री 'विनय-पत्रिका'से या सूर या मीराका कोई मधुर पद समाधिस्थ होकर सुनाते थे। उनके सुनाने का ढंग इतना मोहक और मन-प्राणको मुग्ध करनेवाला होता था कि हम सभी एक प्रकारसे भाव-समाधिमें डूब जाते थे। इसके पश्चात् श्रीभाईजीका प्रवचन होता था। इस प्रवचनमें प्रायः भक्तिरसकी वर्षा होती थी।

'कल्याण'का वातावरण सर्वथा निराला और सबसे भिन्न था। यह इस अर्थमें कि वहाँ सम्पादकीय ठाट-बाट कुछ था ही नहीं और दफ्तर-जैसी कुछ चीज भी नहीं थीं। आमके पेड़के नीचे चटाइयाँ डालकर हमलोग काम करते और आवश्यकता पड़नेपर विचारविमर्श कर लेते थे। कहीं किसीको कोई आदेश भी देना हुआ तो उसी भाषांमें वह दिया जाता था, जिसमें आदेशकी गन्ध न हो।

श्रीभाईजी मण्डलके प्रमुख थे। इनके अतिरिक्त पं. लक्ष्मणनारायण गर्दे, पं. चिम्मनलाल गोस्वामी, पं. नन्ददुलारे बाजपेई, पं. राजबली पाण्डेय, पं. शान्तनुबिहारी द्विवेदी (अब स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती), श्रीमुनिलाल (अब स्वामी सनातनदेव), पं. रामनारायणदत्त शास्त्री आदि विद्वानोंका सहज सत्संग प्राप्त हुआ और इनके संगमें आत्म-विकासके लिये पूरा अवकाश मिलने लगा। 'कल्याण'के लिये प्रतिमास एक लेख मुझे लिखना पड़ता था। वह लेख प्रायः किसी भक्तकी गाथा होती या किसी मध्यकालीन संतका जीवन-चरित्र और उनकी साधनाका विवेचन होता। पत्रोंके उत्तर लिखनेका भी कुछ काम मैं करता था। अंग्रेजी या हिन्दी पत्रोंके उत्तर लिखनेमें 'कल्याण'की एक खास शैली थी, जिससे अवगत होनेमें कुछ समय लगा। ये पत्र प्रायः किसी-न-किसी धार्मिक पहलू, आध्यात्मिक प्रश्न या साधना-सम्बन्धी शंकाओंके समाधानमें लिखे जाते थे। प्रश्न भी बड़े विचित्र और बेतुके हुआ करते थे। कभी-कभी उन्हें पढ़कर हँसी आती थी, परंतु 'कल्याण'की शैली यह थी कि चाहे जो भी पत्र हो और जैसी भी उनकी शंकाएँ हों, उनका पूरा-पूरा समाधान तथा निवारण समुचित ढंगसे होना चाहिये और किसी भी अवस्थामें अविनयका प्रदर्शन नहीं होना चाहिये। ऐसे पत्रोंके उत्तर लिखनेमें श्रीभाईजीको कमाल हासिल था।

श्रीभाईजीका हरिनाममें अखण्ड विश्वास था और वह प्रायः हर मानसिक चिन्ता, अभावकी पीड़ा, दैन्य-दुःख, ऋण-कष्ट, चारित्रिक स्खलन आदि सभीसे छुटकारा पानेके लिये नाम-जपकी अचूक विधिकी व्यवस्था दिया करते थे।

'कल्याण'की रीति-नीति और विचारोंको पूरा-पूरा हृदयंगम करनेमें लगभग छः मास लग गये। फिर भी यह नहीं कह सकता कि वहाँकी सारी बातें मेरे लिये अनुकूल ही थीं या पसंद थीं। आचार-विचार टकराये, परंतु अन्ततोगत्वा मैंने यह अनुभव किया कि इन सारी बातोंमें 'कल्याण'का आग्रह निश्चय ही स्वस्थ और सुखप्रद था, स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी और साधनाकी दृष्टिसे भी।

सम्पादकीय विभागमें हम जितने व्यक्ति थे, उतने प्रान्तोंके थे और उतने ही विभिन्न रंग-ढंगके। पूज्य श्रीगर्देजी महाराज हमलोगोंमें सबसे श्रेष्ठ, अनुभवी और चुडान्त विद्वान् थे,

परंतु उनकी चुहल और जिंदादिली मुर्देको भी हँसा देती। वे शरीरसे वृद्ध, परंतु हृदयसे चिर-तरुण थे।

'कल्याण'के सम्पादकीय मण्डलके लिये कुछ आधारभूत सिद्धान्त भी थे। उन नियमोंमें दोनों समयकी संध्या, गीताका स्वाध्याय और पाठ, रामचरितमानसका पाठ, भगवन्नाम-स्मरण, सर्वत्र भगवद्भाव, अक्रोध और सत्यभाषण, अल्पभाषण, मौन और कुछ शरीरिक व्यायाम थे। इन नियमोंमें दो बड़े ही महत्त्वके थे। एक तो सर्वत्र भगवद्भाव और दूसरा प्रति आधे घंटेपर भगवानका स्मरण और स्मरण आनेपर उसे देरतक कायम रखनेकी वृत्ति। संध्याकालीन सामूहिक प्रार्थनाके बाद श्रीभाईजीकी उपस्थितिमें हमलोग नित्य-नियमोंके सम्बन्धमें परस्पर विचार-विमर्श करते और यह देखते कि कहाँ त्रुटि हो गयी है, उसे कैसे सुधारा जा सकता है। खान-पानमें संयम था। तेल-मिर्च, खटाईका व्यवहार नहींके बराबर था। सबसे बड़ी बात यह थी कि ये नियम कभी बन्धन नहीं बने। उन्हें स्वेच्छया और सहर्ष हमलोग स्वतः पालन करते थे और डायरी रखते थे।

'कल्याण'में आनेपर देशके और कभी-कभी विदेशके भी प्रसिद्ध साधु-महात्माओं, संन्यासियों, वैरागियों, तपस्वियों और आध्यात्मिक जिज्ञासुओंके दर्शन घर बैठे होने लगे। उन दिनों 'कल्याण'का उतना प्रचार नहीं हो पाया था, कुछ ही हजारोंकी संख्यामें वह छपता था, परंतु लोगोंमें 'कल्याण' और 'कल्याण'-सम्पादकके प्रति उमड़ती हुई श्रद्धाके दृश्य कई बार देखनेको मिलते थे। कुछ श्रद्धालु तो ऐसे आते थे, जो प्रेसकी मशीनोंकी आरती उतारते थे और उनपर चन्दन-फूल आदि चढ़ाते थे। इसे श्रद्धाका अतिरेक कहें या भावुकता, ऐसे-ऐसे दृश्य प्रायः रोज देखनेको मिलते, जिनपर हँसी आये बिना न रहे। रंग-बिरंगे साधुओं, संन्यासियों, वैरागियोंका काफिला जब कभी उतर आता, तब हमलोगोंके लिये मनोरञ्जनका साधन जुट जाता। अधिकांश अपनी जैसी-तैसी हस्तलिखित प्रतियोंको लेकर गीताप्रेसमें छपवाने लिये दौड़े आते थे। मुझे स्मरण है, अयोध्याके एक संन्यासी महोदय स्वरचित 'विचित्र-रामायण'की हस्तलिखित प्रतियाँ आठ-नौ बड़ी-बड़ी जिल्दोंमें लेकर आये थे। हमलोगोंमेंसे किसीके पास इतना समय और धैर्य नहीं था कि उनकी 'विचित्र-रामायण'को आद्योपान्त पढ़ें या उसे सुना जाय, परंतु श्रीभाईजीने आदिसे अन्ततक उनकी पूरी रामायण सुनी और सुनकर प्रसन्नता प्रकट की, भले ही उसे गीताप्रेससे छापा न जा सका। ऐसे ही, समय-समयपर बड़े ही अटपटे व्यक्ति आ जाया करते थे। कभी-कभी लोग यह समझते थे कि यहाँ आकर जोर-जोरसे कीर्तन करने और भावावेशमें मूर्च्छित हो जानेसे 'कल्याण'में विशेष आदरपात्र मनुष्य समझा जायगा और इसलिये भी बहुत-से लोग भावावेशमें मूर्छाका स्वाँग रचा करते थे। ये सारी बातें हमलोग समझते थे, परंतु श्रीभाईजीके उदार व्यक्तित्वमें सबके लिये उचित स्थान था, किसी वस्तुको वे विरूप नहीं होने देते थे। समय-समयपर भारतीय संस्कृति और साधनाकी तलाशमें कुछ विदेशी महिलाएँ भी आ जाया करती थी। उनकी सार-सँभाल और देख-रेखका भार मेरे ऊपर था। कुल मिलाकर 'कल्याण'का जीवन 'विविध-विषय-विभूषित' होनेके कारण काफी रंगीन और दिलचस्प था।

'कल्याण'में बिताये हुए ग्यारह वर्ष जीवनके सर्वोत्तम ग्यारह वर्ष थे और उसमें समाजसेवा, भ्रमण और संत-महात्माओंके सत्संगका अपूर्व लाभ मिला। 'कल्याण'में आनेपर अनेक

साधु-महात्माओं और संतोंके अत्यन्त निकट सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य मिला था। इन महात्माओंमें स्वामी शिवानन्दजी, श्रीभोले बाबा, श्रीउड़िया बाबा, श्रीहरि बाबा, श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, श्रीस्वामी एकरसानन्दजी, माँ आनन्दमयी, स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी और स्वामी शरणानन्दजी मुख्य रूपसे सामने आते हैं।

इसके साथ-साथ गोरखपुरमें प्रतिवर्ष भयंकर बाढ़का आक्रमण हुआ करता था, जिसमें गोरखपुर-देवरिया जिलेका बहुत बड़ा भू-भाग जलमग्न हो जाता था और हजारों गाँव राप्ती और सरयूकी प्रखर धारामें आ जाते थे। ऐसे अवसरोंपर गीताप्रेस-सेवादलकी ओरसे बड़े व्यापक स्तरपर 'रिलीफ' कार्य होता था, जिसका दायित्व मुझे सँभालना पड़ता था और ऐसे अवसरोंपर महीनों नाव लेकर पानीमें रहना पड़ता था और जलमग्न गाँवोंमें घूम-घूमकर अन्न, वस्त्र, तेल, दियासलाई, दवा, साबूदाना आदिका वितरण करना पड़ता था। यह कार्य मुझे प्रिय था और ऐसा लगता था कि भक्तिके सम्बन्धमें जो कुछ भी उपदेश हमने सुना है, वह सब इस सेवाके द्वारा सार्थक हुआ है।

'कल्याण'में रहते हुए पतनके कई अवसर आये, जब मैं नरकमें पूरी तरह उतर चुका था, परंतु श्रीभाईजीने अपनी दोनों भुजाएँ बढ़ाकर वैसे ही उठा लिया, जैसे माँ अपने बच्चेको उठाती है और आश्चर्य यह है कि सब कुछ जानकर भी श्रीभाईजीके मनमें क्षण-भरके लिये भी मेरे प्रति घृणा और उपेक्षाका भाव नहीं आया। कमजोर व्यक्तियोंके प्रति उनमें विशेष स्नेह और ममता थी। क्षमामें तो वे पृथ्वीके समान थे और गम्भीरतामें समुद्रकी तरह। ऐसे व्यक्तिके साथ लगभग ग्यारह वर्ष रात-दिन रहनेका सौभाग्य किसी पूर्वजन्मके पुण्योदयसे ही हुआ होगा।

अपने सम्पादकीय जीवनकी सबसे बड़ी उपलब्धि मैं पूज्य श्रीभाईजीके सुमधुर सांनिध्यमें उनके पूर्वजोंके निवास-स्थान रतनगढ़ (राजस्थान) का प्रवास मानता हूँ। रतनगढ़-प्रवासने मुझे कितना आनन्द दिया है, वहाँके उस जीवनकी झाँकी मैंने विस्तृत रूपसे एक लेखमें दी थी, पर यहाँ उसे देना समीचीन न होगा।

रतनगढ़का श्रीभाईजीका घर बड़ा मनोरम एवं आकर्षक था। एक ओर अखण्ड हरिकीर्तन होता रहता था और दूसरी ओर सत्संगका स्थान था, जहाँ कई साधु-महात्मा, योगी-यति, उपदेशक और कथावाचक आते और अपने उपदेशोंसे नर-नारियोंको कृतार्थ करते थे। झाँझ, मृदंग, करताल आदिके साथ भगवन्नामका घोष होता रहता था और उससे वहाँके वातावरणमें एक अपूर्व पावन, दिव्य स्निग्धता आ गयी थी।

श्रीभाईजीने हरिनामका रस, लीलाका रस बरसाना शुरू किया और हजारों नहीं, लाखों व्यक्तियोंको प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूपमें इस भावराज्यमें प्रवेश कराया। यह कहा जा सकता है कि श्रीभाईजीके कारण ही गीताप्रेसके साहित्यका इतना विकास हुआ और वह सभी क्षेत्रोंमें श्रद्धा और सम्मान पा सका तथा उसका इतना व्यापक प्रचार-प्रसार एवं प्रभाव हो सका।

'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें मैं ग्यारह साल रहा। १९४२ का आन्दोलन न आया होता तो शायद 'कल्याण' से मैं पृथक् न हुआ होता, परंतु पृथक् होकर भी पृथक् कहाँ हो पाया हूँ? 'कल्याण'का मेरे प्रति और मेरा 'कल्याण'के प्रति इतना घनिष्ठ और मधुर सम्बन्ध है कि आज भी मैं 'कल्याण-परिवार' का ही एक अन्यतम सदस्य हूँ। श्रीभाईजीके सम्पर्कमें जो एक

बार भी आ गया, वह जनम-जनमका उनका 'अपना', एकदम अपना हो गया।

श्रीभाईजी थे तो यद्यपि विशुद्ध सनातनी वैष्णव, तथापि सभी धर्मों एवं सम्प्रदायोंके प्रति उनके हृदयमें अपार आदर एवं श्रद्धा थी। राजनीतिसे सर्वथा मुक्त थे, इसलिये उनके मित्रोंमें सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट, काँग्रेसी, सभी तरहके व्यक्ति थे। कुछ अपनेको नास्तिक कहनेवाले भी थे। उनका कहना था कि नास्तिक कोई होता ही नहीं, वह 'तलाश'में होता है, इतनी ही बात होती है।

साधनाका आरम्भ श्रीभाईजीने भगवान विष्णुके ध्यानसे आरम्भ किया, परंतु बादमें धीरे-धीरे वे श्रीराधाकृष्णके लीलारसमें उतरते गये, उतरते-उतरते उसीमें प्रायः खो गये। 'कल्याण'में 'मधुर' शीर्षक गद्य-पद्यात्मक लेख एवं राधाष्टमी-उत्सव-समारोह इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। वैसे भी श्रीभाईजीका राम-नाममें अखण्ड विश्वास था, अपरिमेय आस्था थी। नामानुरागसे रूपानुराग और लीलानुराग होता है और लीलानुरागसे ही लीलाप्रवेश होता है। ऐसा श्रीभाईजी मानते थे कि *'प्रेमसाधना ही मुक्तिका प्राण है और प्रेमराज्यमें सर्वस्व-समर्पण ही एकमात्र साधना है।'*

ऐसे थे परम वैष्णव प्रेममूर्ति श्रीभाईजी। जिनके परमपावन परममंगलमय चरणयुगलके सांनिध्यका अलभ्य लाभ लगभग चालीस वर्षोंतक अखण्ड भावसे बना रहा, जिनकी पवित्र गोदमें बैठकर भक्तिका ककहरा सीखनेका सौभाग्य मिला, जो मुझ जैसे भूलभरे धूलभरे शिशुको सदा अपनी अहैतुकी प्रीतिमें नहलाते और बहलाते रहे, जिन्होंने सहसा एक देवोत्थानी एकादशीकी मंगलमयी वेलामें ऋषिकेशकी गंगामें मेरा हाथ भगवानके हाथोंमें देकर *'मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि'*का महामन्त्र सुनाया, जो मेरे लिये जीवन, प्राण और सर्वस्व थे, हैं और रहेंगे, जिनका पार्थिव शरीर भले ही हमसे ओझल-सा हो गया प्रतीत होता है, परंतु जो सदा-सर्वथा हमारे साथ हैं, सर्वत्र और सदैव हमारी सार-सँभाल रखते हैं, जो सचमुच मानवरूपमें साक्षात् श्रीहरि थे, अपने उन्हीं परमाराध्य, पूज्यचरण पुण्यश्लोक श्रीभाईजीके चरणोंमें सभक्ति और प्रीतिपूर्वक कोटि-कोटि प्रणति निवेदित करता हूँ।

'नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः' ■

श्रीदेवधरजी शर्मा

[१] नास्तिकसे आस्तिक

सन् ३३ या ३४ में मैं सर्वप्रथम श्रीभाईजीके सम्पर्कमें आया। इसके पहले मैं काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसीमें कार्य करता था। मैं गोरखपुर (अब देवरिया) जिलेके माधवपुर गाँवका रहने वाला हूँ और घरकी परिस्थितिके कारण मेरे लिये यह आवश्यक हो गया कि मैं गोरखपुर नगरमें ही कहीं काम करूँ।

हिन्दी साहित्यके इतिहास-निबन्ध-समालोचना आदिके विद्वान लेखक एवं विख्यात साहित्यकार आचार्य श्रीरामचन्द्रजी शुक्लसे मेरा निकट परिचय था। मैंने अपनी समस्या उनके सामने रखी। शायद आचार्य श्रीशुक्लजीका श्रीभाईजीसे निकट परिचय नहीं था, परंतु दोनों ही

अपने-अपने क्षेत्रके गण्यमान मूर्धन्य व्यक्ति थे, अतः सहज विश्वासके आधारपर आचार्य श्रीशुक्लजीने मेरे कार्यके लिये श्रीभाईजीको निजी तौरपर एक पत्र लिखा। वह निजी पत्र लेकर मैं वाराणसीसे गोरखपुर आया।

तब पूज्य श्रीभाईजी गोरखनाथ मन्दिरके पासवाली बगीचीमें रहा करते थे। वे काठकी चौकीपर पूर्णतः साधारण वेशमें बैठे हुए थे। प्रशान्त मुखमण्डलके मध्य दोनों आँखोंमें एक विचित्र तेज था। अधरोंके मन्द मुस्कानकी छवि बड़ी मोहक थी। श्यामल शरीरपर श्वेत वेश, प्रशान्त वदनके तेजस्वी नेत्र, युगल अधरोंकी मन्द मुस्कान, वह छवि मुझे कभी भूलती ही नहीं। मैंने जाकर साधारण रीतिसे वन्दन किया और उनको पत्र दिया। पत्र पढ़कर उन्होंने मेरा विस्तृत परिचय पूछा। विविध जानकारी प्राप्त करके उन्होंने कहा— अभी तुरन्त तो कोई काम सामने नहीं है, पर ज्यों ही कोई ढंग दिखलायी देगा, मैं आपको बुला लूँगा। आप अपना पता लिखकर दे दीजिये।

अपना पता देकर मैं अपने गाँव चला आया। गाँव आकर भी श्रीभाईजीका सौम्य स्वरूप तथा बगीचीका शान्त वातावरण मुझे सदा याद आता रहा और मैं चाहता था कि श्रीभाईजीके पास काम मिल जाय तो बड़ा उत्तम हो। एक मासके भीतर ही श्रीभाईजीका पत्र मुझे गाँवपर मिला। उन्होंने लिखा था कि श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी श्रीरामचरितमानसका सम्पादन कर रहे हैं। उनके कार्यमें सहयोग देनेके लिये आप आ जाइये।

पत्र मिलते ही मैं श्रीभाईजीके व्यक्तित्वके बारेमें सोचने लगा— श्रीभाईजीने आचार्य श्रीशुक्लजीके पत्रको पूर्ण महत्त्व दिया, जिसका मैं पहले अनुमान नहीं कर पाया था। काम होनेपर बुला लिया जायेगा, ऐसा टरकानेवाला उत्तर तो हर साधारण व्यक्ति अपना पिण्ड छुड़ानेके लिये दिया करता है, पर श्रीभाईजीके वे शब्द तो साधारण शब्द नहीं थे, अपितु अर्थ भरे शब्द थे और उन शब्दोंमें अर्थ भर दिया उस पत्रने। आचार्य श्रीशुक्लजीसे निकट परिचयके अभावमें भी समाजके गण्यमान व्यक्ति होनेके नाते श्रीभाईजीने उनके पत्रको सम्मान दिया था। श्रीभाईजीके प्रथम दर्शनसे तो मैं प्रभावित हुआ ही था, इस गुणने उस प्रभावको गहरा बना दिया।

पत्र मिलते ही मैं गाँवसे श्रीभाईजीके पास आया और पूज्य श्रीगोस्वामीजीके कार्यमें सहयोग देने लग गया। सहयोगके अतिरिक्त पत्रोंके उत्तर देनेका कार्य भी मुझे सौंपा गया, उत्तर उन पत्रोंके, जो सम्पादकीय विभागके नाम आते थे। पत्रोंके उत्तर श्रीभाईजी संकेत रूपमें बता या लिख दिया करते थे और उसीको पल्लवित करके उत्तर देना होता था। क्रमशः दिन बीतने लगे और पारस्परिक परिचय बढ़ने लगा।

अब मैं अपने स्वभावके बारेमें कुछ कहना चाहूँगा। वाराणसीमें मैं अपने जिन मित्रोंके संगमें रहता था, उनका रंग मुझपर चढ़ा। उनके संगके फलस्वरूप मुझे लगभग नास्तिक ही कहना चाहिये। मनमें कोई भक्ति-भाव नहीं था, भगवन्नाममें कोई निष्ठा नहीं थी और भगवानकी भगवत्ताके प्रति स्थिर आस्था नहीं थी। वाराणसीमें रहते समय मैं भगवदर्चना-वन्दनाकी भी आलोचना कर दिया करता था। ऐसा कुतर्की नास्तिकका-सा स्वभाव लिये हुए मैं श्रीभाईजीके पास कार्य करने आया था और कार्य करते हुए मैं उनके साथ रह रहा था।

थोड़े दिनों बाद ही सम्पादकीय विभाग गोरखनाथ मन्दिरके पासवाली बगीचीसे वर्तमान गीतावाटिकामें चला आया। यहाँ प्रतिदिन प्रातःकाल श्रीभाईजीका सत्संग हुआ करता था। मैं सत्संगमें बैठता था, पर उस सत्संगके प्रति मनमें कोई आदर-भाव नहीं था। सत्संग आरम्भ होनेके पहले हरिनाम-कीर्तन हुआ करता था। यह भी मेरे मनको भाता नहीं था। कीर्तनमें बैठकर मैं लोगोंका मुँह देखता रहता था। एक दिन मैं बड़े संकोचमें पड़ गया। सत्संग आरम्भ होनेके पहले श्रीभाईजीने मुझे कीर्तन करानेके लिये कहा। इसे सुनते ही मेरी भावनाओंमें उथल-पुथल शुरू हो गयी। मैंने आनाकानी की। मुझे बड़ा भार-सा लगा। मैं चाहता था कि कीर्तन मुझे नहीं कराना पड़े। मेरी टालमटोलको देखकर श्रीभाईजीने मेरी ओर झाँझ सरकायी और स्नेह भरी भाषामें घुड़कते हुए कहा— देवधरजी ! क्या बात है ? कीर्तन कराइये।

मैं कीर्तन करानेसे बचना चाहता था, पर बच नहीं पाया। मैं भला बचता कैसे ? मेरे सुसंस्करणका शुभारम्भ जो होनेवाला था। श्रीभाईजीने शायद सोच लिया था कि देवधर शर्माके अन्तरमें भगवन्नामके प्रति रुचिको आज जाग्रत कर देना है। जो व्यक्ति लगभग नास्तिकके समान हो, उनके मनमें भगवन्नामके प्रति आदर या रुचि या रसके लिये स्थान कहाँ, पर वस्तुतः न विश्वास करने योग्य बात घटित हो गयी। मुझे उस दिन कीर्तनमें बड़ा आनन्द आया। मनमें भगवन्नामका महत्त्व अंकुरित हुआ। यह मुझ नास्तिकपर भक्त-हृदय श्रीभाईजीकी अनोखी अनुग्रह-वर्षा थी। मेरा मन भगवन्नाम-कीर्तनके दिव्यानन्दकी लहरोंपर लहरा रहा था और सत्संगमें बैठे हुए अन्य बन्धुओंको भी आनन्द आया। अब तो सत्संगके पूर्व मैं प्रायः कीर्तन करने लगा।

श्रीभाईजीके सांनिध्यमें मेरे जीवनका सुसंस्करण तथा निर्माण अलक्षित रूपसे होने लगा। उनके छलकते प्यारने, उनके संतोचित सद्व्यवहारने, उनकी भातृत्वपूर्ण आत्मीयताने और उनके साधु जीवनने मुझ नास्तिकको मात्र आस्तिक ही नहीं बनाया, अपितु मनमें एक भावना जगा दी, इससे भी अधिक बड़ी बात यह कि मेरे चिन्तनमें ऐसी धारणा प्रतिष्ठित कर दी कि उसी मानवका जीवन श्रेष्ठ, सुन्दर और सफल है, जिसके हृदयमें ईश्वरानुरक्ति हो और जिसके आचरणमें दैवी सम्पत्ति हो। श्रीभाईजीका सांनिध्य मेरे लिये मात्र साहचर्य नहीं था, अपितु था एक दिव्य भावलोक, जिसकी मैं कभी कल्पना कर नहीं सकता था और जो बड़े भाग्यसे मिला था।

[२] अपकार और उपकार

प्रसंग एक वर्षीय अखण्ड हरिनाम संकीर्तनके बादका है। गीतावाटिकाके भोजनालयमें जो रसोइया काम करता था, उसे गीताप्रेस बुलाया गया। वहाँके भोजनालयमें उसकी अधिक जरूरत थी, पर वह गीतावाटिका छोड़कर जाना नहीं चाहता था। जब गीताप्रेसकी ओरसे कुछ जोरदार शब्दोंमें उसे गीताप्रेस आनेके लिये कहा गया तो उसका मन क्षुब्ध हो उठा। गीताप्रेसकी आवश्यकताको देखकर श्रीभाईजीने भी उसे जानेके लिये कह दिया। जब श्रीभाईजीने भी कह दिया तो अब उसको गीताप्रेस जाना ही था, पर उसके मनमें क्षोभका तूफान उठ खड़ा हुआ। क्षोभके आधिक्यमें उसने एक काम बड़ा खराब कर दिया। जाते-जाते भोजनालयकी खाद्यसामग्रीमें उसने जमालगोटा मिला दिया।

हमलोगोंको भला क्या पता कि वह भोजनालयमें क्या गड़बड़ कर गया है। उस दिन जिसने भी भोजन किया, उसे टट्टी लगने लगी। सबसे बुरी हालत श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' की थी। वे शायद पचास-साठ बार शौचालय गये होंगे। हल्ला मच गया कि गीतावाटिकामें सभीको हैजा हो गया है।

उस समय श्रीभाईजी गीताप्रेस गये हुए थे। उनको वहीं हैजेके फैलनेका समाचार मिला। वे सारे काम छोड़कर तत्काल गीतावाटिका आये और साथमें डाक्टरको भी लेते आये। क्रमशः स्थिति नियन्त्रणमें आ गयी। धीरे-धीरे बात भी खुल गयी कि उस रसोइयेने भोजनमें जमालगोटा मिला दिया था।

बात खुलते ही हर व्यक्ति उस रसोइयेपर नाराज हो उठा। कोई उसको पीटनेके लिये कहता और कोई पुलिसके हवाले कर देनेके लिये कहता। हमलोगोंकी फुँफकार श्रीभाईजीके कानतक पहुँच गयी। उसी समय श्रीभाईजी हमलोगोंके मध्य आये और कहने लगे– आपलोग अपने मनसे प्रतिहिंसाके भाव निकाल दें। गलती उस रसोइयाकी नहीं, मेरी है। मैंने ही तो उसको यहाँसे गीताप्रेस जानेके लिये कहा था। यदि उसके प्रति कोई भी प्रतिकार करना चाहते हैं तो आपलोग मेरे प्रति करें।

श्रीभाईजीने उसकी ओट ले ली। श्रीभाईजी द्वारा ओट ले लिये जानेसे उसका बचाव तो हो गया, पर सभीका मन उसके प्रति बड़ा खिन्न था। पूज्या माँको हमलोगोंकी खिन्नताका अनुमान तो था, पर जब इसकी गहराईका आभास मिला तो उन्होंने उस रसोइयाको अपने पास बुलाया और अपने पाससे कुछ द्रव्य और कुछ वस्त्र देकर उसको गीतावाटिकासे विदा कर दिया। माँको आशंका थी कि हमलोगोंके मनकी खिन्नता कभी क्रियामें उतरकर उस रसोइयाको कहीं कोई हानि न पहुँचा दे। कोई अनचाही घटना घटे, उसके पहले ही उसको हटा देना उत्तम रहेगा, ऐसा सोचकर माँने उसको विदा कर दिया। अपकार करनेवालेका किस प्रकार पहले बचाव और फिर हित-सम्पादन किया गया, यह तो मेरे आँखोंके सामनेकी बात है।

[३] उनकी क्षुब्ध वाणी

बाँध बननेके पहले गोरखपुरका क्षेत्र प्रायः बरसातके दिनोंमें बाढ़से आक्रान्त हो जाया करता था और तब गाँव-के-गाँव तबाह हो जाया करते थे। बाढ़-पीड़ित लोगोंको गीताप्रेसकी ओरसे अन्न-वस्त्र-औषधिकी सहायता दी जाया करती थी। गीताप्रेसके सहायता-कार्यकी व्यवस्था, तत्परता एवं सेवाभावनासे केन्द्रीय एवं प्रादेशिक सरकार इतनी अधिक प्रभावित थी कि वह भी राहतके लिये दिया जानेवाला अनुदान श्रीभाईजीको दे दिया करती थी। स्वाधीन भारतमें दिल्लीसे गृहमंत्री पण्डित श्रीगोविन्दवल्लभजी पन्तने तथा लखनऊसे मुख्यमंत्री डा. श्रीसम्पूर्णानन्दजीने अनुदानकी धनराशिका ड्राफ्ट श्रीभाईजीके पास भेजा था।

गीताप्रेसके द्वारा जो सेवाकार्य हुआ, उसके लिये गोरखपुरके जिलाधीश महोदयने लिखा था– मुझे सन् १९३८ की बाढ़के संकटकालमें विशेष रूपसे गीताप्रेसके कार्यको देखनेका शुभ अवसर मिला जब कि वह पीड़ितोंकी सेवामें संलग्न था और उससे मुझे अमूल्य सहायता प्राप्त हुई। यदि श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार तथा प्रेसकी निःस्वार्थ उदारताके फलस्वरूप धन एवं वस्तुओंके रूपमें जो सहयोग मिला, वह न मिलता तो इस जिलेके तथा अन्य जिलोंके

बाढ़-पीड़ित ग्रामोंके सहस्रों व्यक्तियोंको जो सहायता दी गयी, वह असम्भव ही थी। जो कुछ भी इन लोगोंने किया है, उसके लिये कृतज्ञता-ज्ञापन तथा अभिशंसा करनेके लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं।

उस साल राप्ती नदीकी बाढ़से बड़ी हानि हुई थी। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। गीताप्रेसकी ओरसे एक सहायता शिविर पासके एक गाँवमें खोला गया था और प्रतिदिन लगभग दस हजार व्यक्तियोंको अन्न दिया जाता था। इस कार्य-व्यवस्थाका भार गोरखपुरके एक व्यवसायी सज्जनके जिम्मे था और अन्नको वितरित करनेका कार्य काशीके एक पण्डितजी कर रहे थे। उन पण्डितजीको सहयोग देनेके लिये उनके साथ कई उत्साही स्वयंसेवक थे।

व्यवस्था अच्छी-से-अच्छी की गयी थी, पर फिर भी कुछ गड़बड़ी हो ही जाया करती थी। कुछ लोग ऐसे थे कि घुसपैठ करके दुबारा-तिबारा अन्न ले जाया करते थे और कुछ भाई-बहिन ऐसे असमर्थ थे कि पात्र होकर भी उनको अन्न मिल ही नहीं पाता था। घुसपैठ करनेवाले लोग पकड़ लिये गये और माँफी माँगनेपर उनको छोड़ भी दिया गया, पर लोभ पुनः उनसे वैसा कार्य करवा दिया करता था।

उनकी ऐसी चेष्टा देखकर व्यवस्था सँभालनेवाले व्यवसायी सज्जनको बड़ा बुरा लगा और उन्होंने रोषमें भरकर अन्नका वितरण ही बन्द करवा दिया। शिविरके पासवाले गाँवोंमें बड़ी निराशा फैल गयी और गाँवके लोग उन घुसपैठियोंको बड़ा कोसने लगे। वे व्यवसायी सज्जन वितरण-प्रमुख पण्डितजीको साथ लिये हुए गीतावाटिका आये वस्तुस्थितिकी सूचना देनेके लिये। उस समय गीतवाटिकाके पंडालमें श्रीभाईजीका सत्संग चल रहा था। सत्संगके बीचमें ही उन्होंने संक्षेपमें सब कह सुनाया तथा श्रीभाईजीने चुपचाप सुन लिया। सत्संग समाप्त होनेके बाद श्रीभाईजीने सारी बात पुनः सुननेकी इच्छा व्यक्त की, जिससे विस्तृत जानकारी मिल सके। गड़बड़ीका वृत्त बताकर ज्यों ही उन्होंने सहायता-कार्य बन्द कर देने वाले आदेशको बताया, श्रीभाईजीके चेहरेका रंग एकदम बदल गया और उन्होंने क्षुब्ध वाणीमें उन व्यवसायी सज्जनसे कहा— हमलोग, आपलोग और व्यापारीलोग व्यापार करके केवल एक दिन या दो दिनके लिये नहीं बल्कि कई सालके लिये धन संग्रह कर लेते हैं। इसमें भी केवल अपने लिये नहीं बल्कि अपने बेटे और पोतेतकके लिये संग्रह कर लेते हैं, पर क्या इससे भी अधिक संग्रह वे आफतके मारे हुए दुःखी लोग कर रहे थे ? आपका यह संग्रह आपको नहीं चुभता और उस संकटग्रस्त बाढ़पीड़ित भाईने भले चोरीसे ही सही, यदि दो-तीन बार छिपे-छिपे सहायता लेकर दो दिनके लिये अन्न-संग्रह कर लिया तो वह संग्रह आपको चुभ गया और ऐसा चुभा कि आपने वितरण-कार्य ही बन्द कर दिया। यह आपका कौन-सा विवेक है ? गड़बड़ी करनेवाले ऐसे दो-चार व्यक्तियोंको दण्ड देनेके विचारसे आपने शिविर बन्द कर देनेका आदेश दे दिया और इस आदेशसे आपने हजारों असहाय लोगोंको वस्तुतः मिलनेवाली राहतका रास्ता ही बन्द कर दिया। मैं आपके आदेशके लिये और आपके विचारके लिये आपको अब क्या कहूँ ?

श्रीभाईजी शायद और भी कुछ कहते कि उन व्यवसायी सज्जनको तत्काल अपनी भूल समझमें आ गयी। उसी समय कुछ रुँआसे-से होकर उन्होंने श्रीभाईजीसे कहा— यह तो मुझसे बड़ी गलती हो गयी। वैसा तो मैंने रोषमें आकर कर दिया, पर अब सचमुच समझमें आ रहा है

कि यह आदेश देकर मैंने बड़ी भूल की। यदि आपके पास नहीं आता तो यह भूल मेरे ध्यानमें आती ही नहीं। मैं तुरन्त जाकर वह सहायता-कार्य शुरू करवा देता हूँ।

सहायता-कार्य शायद एक ही दिन रुका होगा, पर फिर वह चालू हो गया। भले थोड़ी गड़बड़ी हो जाया करती थी, पर श्रीभाईजीकी दृष्टि उस गड़बड़ीकी ओर थी ही नहीं। श्रीभाईजीको इसी बातसे बड़ी आन्तरिक प्रसन्नता होती थी कि थोड़ी-बहुत गड़बड़ीके बाद भी अनगिनत आर्त भाइयोंको राहत मिल रही है।

[४] 'बदमाशी'का खेल

प्रसंग बहुत पुराना है। सम्भवतः सन् ३७, ३८ के आसपासका होना चाहिये। उस समय कल्याणके सम्पादकीय विभागमें हमलोगोंके साथ श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' भी कार्य करते थे। सम्पादकीय विभागमें श्रीभाईजीके बाद वरिष्ठतम व्यक्ति थे पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी और कनिष्ठतम कहे जा सकते हैं चौकेके नौकर या वाटिकाके माली आदि। सबके साथ रहनेसे परस्परमें मतभेदके प्रसंग भी प्रस्तुत हो ही जाया करते थे, परंतु कभी भी कोई व्यक्ति श्रीभाईजीसे शिकायत नहीं करता था। किसी न्यायालयके जजके सामने जानेमें एक बार डर नहीं लग सकता है, परंतु श्रीभाईजीके सामने जानेमें बड़ा भय लगता था। भय इस माने कि जो शिकायत लेकर जायेगा, वही श्रीभाईजीकी दृष्टिमें हीन समझा जायेगा। श्रीभाईजीके मनमें किसी हीन धारणाका निर्माण न हो जाय, इस कारण कोई भी शिकायत करते हुए डरता था, अतः परस्परकी शिकायतके प्रसंग परस्परमें ही निपटा लिये जाते थे। निन्दा-स्तुतिके, मतभेदके, इस प्रकारके अनेक प्रसंगोंकी बात श्रीभाईजीतक पहुँच ही नहीं पाती थी।

कृष्णजन्माष्टमीके उत्सवके मनानेकी तैयारी हो रही थी। कोठीके हॉलमें ही झाँकी सजायी जाती थी। झाँकीमें समग्र ब्रजकी झाँकी होती थी, मथुरा, गोकुल, यमुना, वृन्दावन आदि। झाँकीको सजाते थे गीताप्रेसके प्रसिद्ध चित्रकार श्रीजगन्नाथजी। वह झाँकी दर्शनीय होती थी और दर्शकोंकी भीड़ लगी रहती थी। उन दिनों कृष्णजन्माष्टमीका उत्सव एकादशीसे ही आरम्भ हो जाता और कई दिनोंतक रहता।

एकादशीके दिन बासे (अर्थात् भोजनालय) के रसोइया श्रीपूरन महाराजपर बड़ा भार पड़ता। अन्नहार करनेवालोंको दोनों समय भोजन बनाकर खिलाना और फलाहार करने वालोंको फलाहारी भोजन तैयार करके खिलाना, इस प्रकार दिनभर कार्यमें लगे रहनेसे श्रीपूरन महाराजको बड़ा श्रम पड़ता। इतनेपर भी यह श्रीपूरन महाराजकी विशेषता थी कि वे इस श्रमको सोत्साह स्वीकार करते तथा सानन्द सभीकी सेवामें संलग्न रहते।

कृष्णजन्माष्टमीके उत्सवका शुभारम्भ एकादशीसे था। गोरखपुर नगरके गाँधी आश्रम खादी भण्डारके प्रधान व्यवस्थापक श्रीहरिभाईजी मेरे और श्रीमाधवजीके घनिष्ठ मित्रोंमेंसे थे। हमारे अनुरोधपर श्रीहरिभाईजी झाँकीका दर्शन करनेके लिये गीतावाटिका आये। झाँकीके अनावरणके बाद कीर्तनका कार्यक्रम था। कीर्तनमें श्रीहरिभाईजीको आनन्द आया, अतः श्रीमाधवजीने श्रीहरिभाईजीसे कहा— कीर्तनका कार्यक्रम तो आधी राततक चलेगा, तबतक इसका आनन्द लीजिये, परंतु लौटते-लौटते आपलोगोंको बहुत देर हो जायेगी, अतः आपलोग यहीं भोजन कर लीजियेगा।

यह प्रस्ताव मैं भी कर सकता था, पर मुझे ऐसा ज्ञात था कि बासेका चौका उठ चुका है और आज एकादशीके कारण श्रीपूरन महाराजपर अधिक श्रम पड़ा है। श्रीहरिभाईजीको आमन्त्रित करनेका अर्थ होगा श्रीपूरन महाराजपर अत्यधिक भार पड़ना, जो पहलेसे ही थकानसे चूर हो रहे हैं। यह सब सोचकर इच्छा होते हुए भी मैंने श्रीहरिभाईजीको आमन्त्रित नहीं किया, परंतु यह बात श्रीमाधवजीके ध्यानमें नहीं आयी और उन्होंने अपने अतिथियोंको आमन्त्रित कर दिया। श्रीहरिभाईजीने भी कुछ संकोचके साथ भोजनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। श्रीपूरन महाराज भी पास ही बैठे थे। उन्होंने सारी बात सुनी और ज्यों ही श्रीहरिभाईजीने भोजनका आमन्त्रण स्वीकार किया, श्रीपूरन महाराज उठकर भोजन बनानेके लिये चले गये। वे जानते थे कि अन्ततोगत्वा मुझे ही भोजन बनाना है।

मध्य रात्रिमें कीर्तनका कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। श्रीमाधवजी अपने मित्रोंसहित बासेकी ओर गये। उधर भोजन तैयार था ही। सारी तैयारी देखकर श्रीमाधवजीका मन कृतज्ञतासे भर गया और बासेमें खड़े-खड़े श्रीपूरन महाराजको धन्यवाद देते हुए उन्होंने कहा— महाराज! किन शब्दोंमें आपको धन्यवाद दूँ और अपनी कृतज्ञता प्रकट करूँ? आज तो आपने बड़ा परिश्रम किया।

श्रीहरिभाईजी अपने साथियोंसहित चौकेके बाहर हाथ धो रहे थे। सम्भवतः श्रीपूरन महाराजको इसका ज्ञान नहीं था। ज्यों ही श्रीमाधवजीने अपनी कृतज्ञता प्रकट की, श्रीपूरन महाराज, जो अन्दर-ही-अन्दर झुँझलाये हुए थे और झुलसे हुए थे, अपने विशेष लहजेके साथ एक साथ बोल पड़े— दिनभर काम करना पड़ा, वह तो अलग बात है, कीर्तनमें भी सम्मिलित नहीं हो पाया। हमारे भाग्यमें कीर्तनका सुख भी नहीं बदा था। आज भगवन्नाम कीर्तनसे भी वंचित हो गया। आपलोग इस बातपर ध्यान नहीं देते। मेरी तो यही प्रार्थना है कि मुझ गरीब ब्राह्मणका भी ख्याल रखा करिये।

इतना सुनकर श्रीमाधवजीको दुःख होना स्वाभाविक था। दुःखकी अधिकताका विशेष कारण यह भी था कि श्रीमाधवजीको यह सन्देह हो गया कि श्रीपूरन महाराजकी बातको श्रीहरिभाईजीने सुन लिया है, अतः वे अतिथि अब कैसे भोजन करेंगे। श्रीमाधवजीको भी श्रीहरिभाईजीके साथ भोजन करना था, पर उन्होंने दुःखके मारे भोजन किया नहीं। श्रीहरिभाईजीने अपने साथियोंसहित भोजन किया। भोजनके बाद वे लोग गीतावाटिकासे शहर जाने लगे। उन लोगोंको विदा करनेके लिये श्रीमाधवजी, गीतावाटिकाके द्वारतक आये। श्रीभाईजी भी द्वारतक आये। मैं तो आया ही था। मैंने श्रीभाईजीको किनारे ले जाकर बता दिया— आज इस प्रकारसे एक अवांछित प्रसंग घटित हो गया है और यदि श्रीहरिभाईजीने बात सुन ली है तो एक प्रकारसे उनका अपमान हो गया है। अतिथियोंने तो भोजन कर लिया है, किन्तु श्रीमाधवजी भूखे हैं। दुःख और रोषके मारे भोजन नहीं किया है।

श्रीभाईजीने कहा— ठीक किया, आपने बता दिया। कोई बात नहीं।

जब श्रीहरिभाईजी जाने लगे, तब श्रीभाईजीने हाथ जोड़कर क्षमा याचना की— आज हमारे रसोइयाद्वारा आपके प्रति थोड़ा अभद्र व्यवहार हो गया है। यह उसकी बहुत बड़ी गलती है। मैं आप लोगोंसे इसके लिये क्षमा-याचना करता हूँ।

श्रीहरिभाईजीने न श्रीपूरन महाराजकी बात सुनी थी और न इन सब बातोंकी जानकारी थी। उन्होंने तुरन्त श्रीभाईजीसे कहा– भाईजी ! आप यह क्या कह रहे हैं ? हमें तो यह सब पता ही नहीं। हम तो यही जानते हैं कि आपके यहाँ खूब बढ़िया रसोई भोजन करनेको मिली और बड़े स्नेहके साथ भोजन कराया गया, फिर आप क्षमा किस बातके लिये माँग रहे हैं ?

श्रीभाईजीने कहा– तब कोई बात नहीं। फिर तो आपलोग पधारें।

श्रीहरिभाईजी शहरकी ओर चले गये और श्रीभाईजी वाटिकामें आये। आते ही श्रीभाईजीने श्रीपूरन महाराजको बुलवाया। श्रीपूरन महाराजको तबतक अपनी गलतीका ज्ञान हो चुका था। आवेशमें व्यक्ति भूलकर जाता है, पर बादमें पश्चात्ताप भी बहुत होता है। रात्रिके लगभग एक बज चुके थे। श्रीपूरन महाराजने तुरन्त अनुमान लगा लिया कि श्रीभाईजी क्यों बुला रहे हैं। श्रीपूरन महाराज श्रीभाईजीके अपने व्यक्ति हैं। उनकी श्रीभाईजीमें श्रद्धा है। वे भक्त हृदय हैं। उनकी भगवन्नामपर बड़ी आस्था है तथा संकीर्तन एवं रामचरितमानसके बड़े प्रेमी हैं। श्रीभाईजीके बड़े विश्वास पात्र हैं एवं निजी परिकर हैं। जब श्रीभाईजी १९५६ में तीर्थयात्रा ट्रेनमें गये तो तार देकर विशेष रूपसे श्रीपूरन महाराजको राजस्थानसे बुलाया गया था। श्रीभाईजीके सामने जाते ही श्रीपूरन महाराजने कहा– भाईजी ! मैं समझ रहा हूँ आपने क्यों बुलाया है। मेरे द्वारा आज बड़ी भूल हुई। आवेशमें कह गया। अपनी भूलके लिये माफी माँगनेके अतिरिक्त और क्या कहूँ ?

श्रीभाईजीको कुछ कहनेका अवसर ही नहीं मिला। श्रीपूरन महाराजने क्षमा माँग ली, पर श्रीमाधवजीका क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ था। श्रीमाधवजीके मुखसे निकल गया– भाईजी ! कसूर इनका नहीं है, बदमाशी हमलोगोंकी है जो समय-कुसमय अपने अतिथियोंको बुलाते रहते हैं और अपना घर समझकर रात-बेरात खानेके लिये अतिथियोंसे कहा करते हैं।

इतना कहते ही श्रीभाईजीका रुख बदला। अबतक तो श्रीभाईजी श्रीपूरन महाराजपर नाराज हो रहे थे, परंतु अब अपनेपर, अपने सहयोगियोंपर, अपने और अपने सहयोगियोंके कार्योंपर, गीतावाटिकाके सारे कार्य-व्यापारपर नाराज होकर व्यंग्यात्मक वाणीमें अपने क्षोभको व्यक्त करने लगे– अच्छा, अबतक आपलोग गीतवाटिकाको अपना घर समझते रहे, अपना घर समझकर अपने अतिथियोंको बुलाते रहे, बुलाये हुए अतिथियोंको जिमाते रहे, यह सब बदमाशी थी और इस बदमाशीकी अब अनुभूति होने लगी है। अच्छा, सब ठीक है। जब यह आपका घर नहीं है तब तो बदमाशी है ही। आपकी भी बदमाशी है, मेरी भी बदमाशी है। अबतक सारा खेल आपकी हमारी बदमाशीका था, तो अब तो तुरन्त इस बदमाशीका अन्त कर देना चाहिये। 'कल्याण'के द्वारा बदमाशीके प्रसारसे क्या लाभ ? इस 'कल्याण'को भी बन्द कर देना चाहिये। आप लोग भी अपने घर पधारें। मैं भी अपना रास्ता लूँगा। जहाँ जाना होगा, चला जाऊँगा। यह सब पाखण्ड है, वितण्डावाद है। यह सब कुछ नहीं, सब व्यर्थ है। इस आडम्बरमें क्या रखा है ? यह सब दिखावा है, प्रदर्शन है, इन सबको बन्द कर देना चाहिये।

इसी आवेशके प्रवाहमें श्रीभाईजीने श्रीमाधवजीसे विशेष रूपसे कहा– आपने बारह घंटेका उपवास किया तो इसके बदलेमें मैं चौबीस घंटेका उपवास करूँगा। अब तो मैं भोजन कर चुका हूँ, इसलिये लाचारी है, पर चौबीस घंटे उपवास करनेके बाद मेरा आपसे और सभीसे कोई

सम्बन्ध नहीं, कोई सम्पर्क नहीं।

इतना कहकर श्रीभाईजी, जो आन्तरिक व्यथाके मारे कुछ रुँआसे-से हो रहे थे और जो क्षोभके मारे काँप रहे थे, कोठीके दक्षिणी द्वारसे भीतर चले गये और अन्दरसे दरवाजा बन्द करके चारपाईपर सो गये।

परिस्थिति बिगड़ गयी। पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी आये। पूज्य बाबाजी भी आ गये। कई लोग इकट्ठे हो गये। श्रीभाईजीके उद्‌गार, क्षोभ तथा उपवासकी बातसे सभी सचिन्त हो गये। मैं तथा अन्य लोग श्रीमाधवजीको कोसने लगे– आपने यह क्या किया ? आपके कारण ही यह विषम परिस्थिति उत्पन्न हो गयी।

श्रीमाधवजीने कहा– मैं क्या करूँ ? यदि मैं नहीं कहता तो मेरा सिर फट जाता। मैं इस स्थितिमें नहीं था कि अपने आवेशको सँभाल सकूँ ? अपने अतिथियोंका अनादर कैसे सहा जाय ?

सभी इकट्ठे लोग सोच रहे थे कि अब क्या किया जाय। अनचाहे रूपसे परिस्थिति विषम बन गयी थी। यही तय हुआ कि चलकर श्रीभाईजीको मनाया जाय। रातको लगभग दो बज चुके हैं। पूज्य बाबाके नेतृत्वमें लोग गये। दरवाजेको खटखटाया गया, पर सारा खटखटाना व्यर्थ गया। उस समय घरमें थे ही दो-तीन व्यक्ति। श्रीभाईजीने दरवाजा बन्द किया था और श्रीभाईजी ही खोलते। फिर पूज्य गोस्वामीजीने कहा– मैं चिम्मनलाल गोस्वामी खड़ा हूँ।

उनके बाद पूज्य बाबाने भी कहा– मैं भी खड़ा हूँ।

बहुत अनुनय-विनय करनेके बाद श्रीभाईजीने दरवाजा खोला और फिर बिन-देखे, बिन-बोले, बिन-बतलाये अपनी खाटपर जाकर सो गये। पूज्य बाबा, पूज्य गोस्वामीजी, श्रीदुजारीजी, श्रीमाधवजी, मैं आदि-आदि सभी जाकर श्रीभाईजीकी खाटको घेरकर बैठ गये। अबतक श्रीमाधवजीका रोष शान्त हो चुका था, अपितु वे अन्दर-ही-अन्दर गल रहे थे, अपनी भूलकी स्मृतिसे वे स्वयं ही स्वयंमें गड़ते जा रहे थे। यह बात श्रीमाधवजीको चुभ रही थी कि इस विषम परिस्थितिका कारण मैं हूँ। उनके नेत्र अभी तरल तो नहीं हो पाये थे, किन्तु उनके नेत्रोंमें आँसू-भरे बादल घुमड़ रहे थे। श्रीमाधवजीने जाकर श्रीभाईजीके चरणोंको पकड़ लिया और कहा– आपके अतिरिक्त मेरा और कौन है ? यदि आप इन बातोंको नहीं सुनेंगे तो और कौन सुनेगा ? दूसरा कौन है जो सहेगा ? यदि मैं नहीं कहता तो आज मैं विक्षिप्त हो जाता। यदि मेरी विक्षिप्तता ही आपको स्वीकार है, तो मुझे अब कहना ही क्या है ? मेरे पास इसके अलावा और कोई रास्ता ही नहीं था कि आपके सामने बरसकर मैं खाली हो जाऊँ और अपने मनको शान्त कर लूँ। मेरी इस चेष्टासे आपको दुःखित होना स्वाभाविक है, पर अब जैसा ठीक समझें, करें।

इतना कहकर श्रीभाईजीके चरणोंसे लिपटकर श्रीमाधवजी खूब रोये। वातावरणमें अतिशय करुणा व्याप्त हो गयी। कौन नहीं रोया ? पूज्य गोस्वामीजी रोये, पूज्य बाबा रोये, सभी उपस्थित जन रोये, और तो और स्वयं श्रीभाईजी रोये। भावाधिक्यमें एक अजीब-सा दृश्य अकारण ही उपस्थित हो गया था। सभीके आँसुओंके प्रवाहमें श्रीभाईजीका सारा रोष बह गया। श्रीभाईजीने अपनी हार स्वीकार की और कहा– ठीक है, कोई बात नहीं। चौबीस घंटेका

उपवास नहीं करूँगा, पर साथ ही कहे हुए शब्द व्यर्थ न जायें, इसलिये चौबीस घंटेको दो भागमें तोड़कर दो एकादशीके व्रतके रूपमें शब्दोंका निर्वाह कर लूँगा, पर अब श्रीमाधवजीको भोजन करवाना चाहिये।

इस समय रातको लगभग तीन बज रहे होंगे। श्रीपूरन महाराज तो जाकर सो चुके थे। श्रीमाधवजीने कहा— इस समय तो वहाँ नहीं खाऊँगा, हाँ, आपके घरमें कुछ हो तो खा लूँगा।

इस सारे प्रसंगके द्रष्टाके रूपमें श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी वहाँ उपस्थित थे। श्रीदुजारीजीसे श्रीभाईजीने कहा— जाकर कुछ लाओ।

पूज्या माँ ऊपर छतपर सो रही थीं। भागे-भागे श्रीदुजारीजी ऊपर गये। माँको जगाया और कहा— कुछ खानेको दो।

माँ अभी ठीकसे जग नहीं पायी थी। उसी उनींदी स्थितिमें कहा— घरमें खानेके लिये इस समय कुछ नहीं है।

आजकल तो श्रीभाईजीकी गृहस्थीमें, दिनके चौबीस घंटोंमें सम्भवतः बारह-तेरह घंटे चौकेका चूल्हा जलता रहता है और जलपान आदिके लिये जो दूसरा चूल्हा जलता है, वह तो अलग है ही, पर उन दिनों इस प्रकार चूल्हा नहीं जलता था। अत्यधिक संक्षिप्त एवं सुव्यवस्थित व्यय था, सादा एवं संयमित जीवन था और साधनामय एवं सात्त्विक वातावरण था। 'घरमें खानेके लिये इस समय कुछ नहीं है' पूज्या माँके इस उत्तरको श्रीभाईजीने नीचे आँगनमें ही सुन लिया। सुनते ही श्रीभाईजीने कहा— अब देखिये, हमारे घरमें कुछ भी खानेको नहीं है। अब तो यह गृहस्थी भी बेकार है। सब व्यर्थ है। एक आदमीके खानेके लायक सामग्री भी घरमें नहीं है।

सभी उपस्थित लोग घबड़ाये। बिगड़ी परिस्थिति बड़ी कठिनाईसे तो सुधरी थी, अब फिर कहीं बिगड़ न जाये। पूज्या माँने दुजारीजीको उत्तर तो दे दिया, जो सही भी था, परंतु उत्तर देनेके एक-दो क्षणोंके बाद ही उन्हें पूर्ण चेतना हो आयी। वे उठकर खड़ी हो गयीं। उन्होंने देखा, नीचे आँगनमें कुछ भीड़ है, तभी उनके कानोंमें पड़े श्रीभाईजीके शब्द 'अब देखिये, हमारे घरमें कुछ खानेको भी नहीं है। अब तो यह गृहस्थी भी बेकार है। सब व्यर्थ है।' इतना सुनते ही पूज्या माँने ऊपरसे ही कहा— कौन कहता है कि नहीं है। घरमें अँगीठी है, अचार है, आटा है। भोजन बनते क्या देर लगती है? आप लोग थोड़ी देर बात करिये। तुरन्त भोजन बन जाता है। मैं अभी आयी।

ऐसा कहते ही पूज्या माँ सीढ़ियोंसे झमकती हुई नीचे उतरीं। उनके पैरोंके पायजेबकी गम्भीर ध्वनि सारे वायुमण्डलमें बिखर गयी। मुझको ऐसा लगा मानो देवलोकसे लक्ष्मी ही अवतरित हो रही है। सचमुच विष्णुप्रिया भगवती लक्ष्मीके समान ही माँकी शोभा थी, हृदय था, वाणी थी, और उदार कर-पल्लव थे। गृह-लक्ष्मी माँ झटपट उतर कर नीचे आयीं और आश्चर्यकी बात कि दस मिनटमें परौठे तैयार हो गये। अँगीठीमें आग पहलेसे रही होगी। आटा सानकर परौठा बनानेमें क्या देर लगी? निशान्त बेलामें श्रीमाधवजीने छककर भोजन किया। प्रसादके रूपमें अन्य सभीने परौठेका एक-एक टुकड़ा खाया। श्रीमाधवजीके भोजन कर लेनेसे श्रीभाईजीको और पूज्य बाबाको परम संतोष हुआ। गृहलक्ष्मी पूज्या माँके हाथका वह परौठा,

अपने अनोखे स्वादकी एक स्थायी छाप सबके मानस-पटलपर छोड़ गया।

[५] पारिवारिकतापूर्ण ममता

गीताप्रेसके प्रकाशनोंकी छपवायी-जिल्दसाजी-बिक्री-वितरण आदिका सारा कार्य गीताप्रेसमें होता था और है, जो शहरके मध्यमें है, पर पहले उन समस्त प्रकाशनोंका सम्पादन-कार्य गीतावाटिकामें होता था, जो शहरके बाहर स्थित है। गीतावाटिकामें सम्पादित सामग्री ही गीताप्रेससे प्रकाशित होती थी, पर इन दोनों स्थानोंकी कार्य-पद्धतिमें बड़ा अन्तर था। गीताप्रेसमें कार्य करने वाले कर्मचारियोंके लिये यह आवश्यक था अमुक बजेसे अमुक बजेतक कार्यालयमें बैठकर कार्य करना है, पर ऐसा प्रतिबन्ध श्रीभाईजीके सम्पादकीय विभागके कार्यालयमें नहीं था। किसी कार्यालयमें कार्य करनेका ऐसा प्रतिबन्ध-विहीन वातावरण शायद ही कहीं देखनेको मिलेगा। श्रीभाईजीके सम्पादकीय विभागको विभाग न कहकर परिवार कहना चाहिये। इस सम्पादकीय परिवारमें किसी प्रकारका बन्धन नहीं था। सभीको पूर्ण छूट थी। सभी अपनी-अपनी सुविधाके अनुसार कार्य करें। न समयका बन्धन था और न स्थानका बन्धन। कोई चाहे कार्यालयमें बैठकर कार्यको करे अथवा अपने निवासस्थानपर रहते हुए। जिसके जिम्मे जो काम है, वह कर देना चाहिये। उस कार्यको कर देनेके बाद फिर तो पूर्ण स्वतन्त्रता थी। गीतावाटिकाके सम्पादकीय विभागकी स्नेहसनी पारिवारिकता कई लोगोंको चुभ जाया करती थी और कभी-कभी कोई टिप्पणी भी कर देता था कि गीतावाटिकामें सम्पादकीय विभागके लोग काम कम और मौज-मस्ती ज्यादा करते हैं। हमलोगोंको तो इस टिप्पणीका उत्तर देनेका अवसर नहीं मिल पाता था। हमलोग कुछ कहें, इसके पहले ही श्रीभाईजी कह दिया करते थे— हमारे कार्यालयके व्यक्ति कितना काम करते हैं, यह मैं जानता हूँ। यदि ये लोग काम नहीं करते तो क्या प्रकाशनके लिये सामग्री प्रेस जा पाती?

श्रीभाईजी ही जब ऐसा कह रहे हैं, तब फिर किसीको साहस नहीं होता था कि हमलोगोंकी ओर कोई अँगुली उठा सके। हाँ, एक अवसरपर श्रीभाईजी अवश्य सावधान करते हुए कह दिया करते थे— कल पूज्य श्रीसेठजी और उनके साथ कुछ लोग गीतावाटिका आयेंगे, अतः आप सबलोग उस समय कार्यालयमें रहें।

हम सभी लोग तब कार्यालयमें रहते ही थे और बैठकर काम करते थे, पर गीतावाटिकासे श्रीसेठजीके सहित सबलोगोंके जाते ही हमलोग बन्धनमुक्त होकर अपने-अपने ढंगसे अपने-अपने काममें लग जाया करते थे।

जहाँ इतनी स्वतन्त्रता श्रीभाईजीने हमलोगोंको दे रखी थी, वहीं हमलोगोंका दायित्व बहुत अधिक बढ़ जाया करता था और सभी इतना अधिक सचेष्ट रहते थे कि दिया हुआ कार्य समयसे पूर्ण करके श्रीभाईजीके सामने रख दें। कभी-कभी ऐसा होता था कि कामको पूरा करनेके लिये सूर्यास्त होनेके बाद भी हमारी कलम कागजपर चलती रही है। उसी समय श्रीभाईजी हमारे पास आते, हमारा हाथ थाम लेते, अँगुलियोंकी कलमको पकड़कर एक किनारे रख देते और प्यारकी अधिकतामें झिड़कते हुए कहते— ये समय भला क्या काम करनेका है? उठिये, जाइये, शौचसे निवृत्त होकर भोजन-विश्राम करिये।

यह कितनी उलटी बात हुई? अन्य स्थानोंपर मालिकलोग ऐसी कार्य-तत्परताको

प्रोत्साहन दिया करते हैं और वे चाहते हैं कि मातहत कर्मचारी इस प्रकारसे अधिकसे अधिक कार्य करें, पर यह कितनी विचित्र बात है कि हमलोगोंको श्रीभाईजीकी फटकार सुननी पड़ती थी कि आपने भोजन नहीं किया, आपने दवा नहीं ली, आपने विश्राम नहीं किया और अब काम छोड़िये।

उन्होंने जो भी काम बतलाया, कभी हुकूमतकी भावनासे नहीं। उन्होंने कभी किसी कामके लिये आदेश नहीं दिया। वे मात्र इतना कहते थे कि यह काम हो जाय तो उत्तम है। उस निर्दिष्ट कार्यको करके जब हमलोग ले जाते थे तो वे सदा सराहना ही किया करते थे। उसमें जो न्यूनता होती थी, वे स्वयं सुधार कर देते थे। हमारी कलमसे जिस अपेक्षित स्तरकी भावाभिव्यक्ति नहीं हो पाती थी, वह उनकी लेखनीसे तुरन्त अवतरित हो उठती थी। उनकी लेखनीपर विद्याकी अधिष्ठात्रीदेवी भगवती सरस्वतीका वास जो था। इस प्रकार हमारी सामग्रीको प्रकाशनकी दृष्टिसे सजा दिया करते थे, पर सामने तो वे सदा सराहना ही किया करते थे।

श्रीभाईजीके इस 'भाव-दरबार' की हवा ही कुछ दूसरे प्रकारकी थी। सारा वातावरण किसी दिव्य भाव-लोकका था। ऐसा भाव-लोक तो अपने घरपर भी नहीं मिलेगा। इस 'भाव-दरबार' की पारिवारिक-भावना अन्यत्र कहीं भी सर्वथा दुर्लभ है। सम्पादकीय विभागके जितने भी सदस्य थे, उनके दूधकी, दवाकी, खानेकी, पीनेकी, सोनेकी, रहनेकी सारी चिन्ता श्रीभाईजी किया करते थे। भविष्यमें लोग विश्वास नहीं करेंगे कि क्या ऐसा 'कार्यालय' भूतलपर हो सकता है, पर यह सर्वथा सत्य तथ्य है। श्रीभाईजी मात्र प्रधान सम्पादक नहीं थे, बल्कि सच्चे अर्थमें हमारे बड़े भाई थे और माताकी तरह, पिताकी तरह, भाईकी तरह, बहनकी तरह हमलोगोंकी सँभाल किया करते थे। कल्याण परिवारके वरिष्ठ सदस्य सम्मान्य श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदीने जब संन्यास लिया तो वे विख्यात हुए श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वतीके नामसे। अपने संन्यासी जीवनमें उन्होंने कहा था– मेरा कोई घर था तो वह श्रीभाईजीका घर था, मेरी ममता कहीं थी तो वह श्रीभाईजीकी सुपुत्री सावित्रीमें थी और मैंने संन्यास लिया है तो वह मैंने अपने पितृकुलसे नहीं लिया, लिया श्रीभाईजीके ममता भरे परिवारसे। मेरी उस पितृकुलसे मोह-ममता तो बहुत पहले ही दूर जा चुकी थी। मैंने वस्तुतः संन्यास लिया ही श्रीभाईजीके घरसे। श्रीभाईजीके उस अकारण-अविरल स्नेहकी मधुर स्मृति मुझ संन्यासीको भी सदा भावार्द्र बनाती रहती है।

सचमुच श्रीभाईजीकी यह ममता विभागके प्रत्येक सदस्यके प्रति थी। उस पारिवारिकतापूर्ण ममताकी जब-जब याद आती है, आँखें भर-भर जाती हैं।

[६] प्रकाशनके प्रति उपरामता

कुछ दिनोंके लिये गीताप्रेसके मैनेजर रहे श्रीरामनृसिंहजी हरलालका। वस्तुतः वे बड़े बुद्धिमान, बड़े कार्य-दक्ष और बड़े सेवातत्पर थे, अतः सभी उनको सम्मान देते थे। पहली बात तो यह कि वे सुयोग्य थे और फिर दूसरे वे प्रेसके मैनेजर थे, अतः उनको सम्मान मिलना ही था, पर उनको जो सम्मान मिला, उससे उनका मन बढ़ गया। बुद्धिमत्ता एवं दक्षताके कारण उनका बढ़ता हुआ वर्चस्व गीताप्रेसके कार्यमें बात-बातपर दखलन्दाजी करने लगा। प्रेसके लोगोंको यह दखलन्दाजी कभी-कभी चुभती तो थी, पर गीताप्रेस और धर्मकी सेवाके नामपर होनेवाली

इस दखलन्दाजीको सब सह भी लेते थे। ऐसा लगता है कि श्रीहरलालकाजीको अपनी योग्यताका ज्यादा एहसास हो गया था और एक बार उनकी दखलन्दाजीने श्रीभाईजीकी कृतिके प्रकाशनपर भी अंकुश लगानेमें संकोचका अनुभव नहीं किया।

मुझे उस पुस्तिकाका नाम याद नहीं है, पर श्रीभाईजीकी एक छोटी-सी पुस्तिका गीतावाटिकासे गीताप्रेस छपनेके लिये गयी थी। आदरणीय श्रीगंगाबाबूने उसकी कम्पोजिंग शुरू करवा दी थी। लगभग आधी कम्पोजिंग हो गयी थी कि श्रीहरलालकाजीने उसकी कम्पोजिंगको बंद कर देनेका आदेश दे दिया। श्रीहरलालकाजीको उसका प्रकाशन उचित नहीं लगा। आदेशके अनुसार पुस्तिकाकी कम्पोजिंग बन्द हो गयी।

श्रीभाईजी उस पुस्तिकाके प्रूफकी प्रतीक्षा गीतावाटिकामें कर रहे थे, पर प्रूफके पहुँचनेके बदले पहुँचा कार्यको बन्दकर दिये जानेका समाचार। दूसरेकी भावनाओंको सदैव महत्त्व देनेवाले तत्सुखसुखी-भावापन्न श्रीभाईजीने यही सोचा— उस पुस्तिकाकी इस समय कोई उपयोगिता नहीं होगी, अतः प्रकाशनका विचार छोड़ दिया गया होगा।

दूसरे दिन श्रीभाईजी गीताप्रेस गये। मैं भी उनके साथ था। मुझे कुछ पता नहीं था कि किसी पुस्तिकाके मुद्रण-प्रकाशनका विचार विसर्जित कर दिया गया है। श्रीभाईजी तो कई काम इकट्ठे होनेपर गीताप्रेस जाया करते थे। उन्होंने कई काम सम्पन्न किये, फिर मुद्रण-विभागके प्रमुख श्रीगंगाबाबूसे कहकर पुस्तिकाकी प्रेस-कापी मँगवायी। श्रीगंगाबाबू प्रेस-कापी लेकर आये और उसको श्रीभाईजीने हाथमें ले लिया। फिर श्रीभाईजीने नितान्त निर्विकार भावसे पूर्णतः प्रसन्न मुद्रामें उसको फाड़कर रद्दीकी टोकरीमें डाल दिया। फाड़ते समय न कोई टिप्पणी और न कोई प्रतिक्रिया, अपितु ऐसे सहज ढंगसे किया मानो कोई व्यर्थ अनुपयोगी कागज फाड़कर एक किनारे फेंक दिया गया हो।

श्रीभाईजी निर्विकार थे, पर श्रीगंगाबाबू तो निर्विकार नहीं रह सके। उन्होंने तो उस पुस्तिकाकी प्रेस-कापीको कम्पोजमें देनेके पहले पढ़ी थी। श्रीगंगाबाबूके मनके भाव विह्वल हो रहे थे, पर उनके श्रद्धालु अधर कुछ बोल नहीं पाये। श्रीभाईजी शान्त भावसे प्रेससे वाटिका चले आये। धीरे-धीरे वरिष्ठ लोगोंमें यह चर्चा फैलने लगी और सभी श्रीहरलालकाजीको कहने लगे— आपने निर्णय उचित नहीं लिया।

श्रीहरलालकाजीको बुद्धिमत्ता तथा दक्षताका जो एहसास था, उस एहसासको भी महसूस होने लगा कि मुझसे यह गलती हुई है। वे गीतावाटिका आये, बड़े विनम्र स्वरोंमें क्षमा-याचना की। श्रीभाईजी तो स्नेहकी मूर्ति थे और वहाँ तो याचनासे पहले ही क्षमाका दान मिल जाया करता था, पर अब उस पुस्तिकाके प्रकाशनमें श्रीभाईजीको कोई रुचि नहीं रह गयी थी। जब श्रीहरलालकाजीने बड़ी विनय की तो फिर वह पुस्तिका छपनेके लिये गीताप्रेस गयी।

अपनी कृतिके प्रकाशनके प्रति ऐसी घोर उपरामता अनेक बार श्रीभाईजीके जीवनमें देखनेको मिलती है। एक बार श्रीभाईजीके पदोंका संग्रह गीताप्रेसमें नहीं छप पाया तो अन्य श्रद्धालुओंने उसे प्रयागमें छपवाया। इसी प्रकार श्रीभाईजी द्वारा लिखित श्रीरास पञ्चाध्यायीकी टीका कलकत्तेसे छपी। मुझे तो एक बार और बड़ी विचित्र बात सुननेको मिली है। श्रीभाईजीने श्रीमद्भगवद्गीताके कुछ अंशपर भक्ति-भाव-पोषिणी कोई सरस टीका लिखी थी। इस टीकाको

देखकर-पढ़कर यह टिप्पणी की जाने लगी कि यदि यह प्रकाशित हो गयी तो गीताप्रेससे प्रकाशित श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका 'गीतातत्त्व विवेचिनी' को कौन पढ़ेगा ? इस टिप्पणीको सुनते ही श्रीभाईजीने अपनी वह टीका स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) में भगवती श्रीभागीरथीके पावन लहरोंको सदाके लिये समर्पित कर दी। यह तो श्रीनिमाई पण्डित (अर्थात् महाप्रभु श्रीचैतन्य देव) के द्वारा अपने न्याय-ग्रन्थको श्रीगंगाजीकी धारापर प्रवाहितकर दिये जानेवाले प्रसंगकी आधुनिक नवलीलाके रूपमें आवृत्ति हो गयी। अपनी कृतियोंके प्रकाशनके प्रति ऐसी उपरामता श्रीभाईजी जैसे महान निर्विकार संतके अन्तरमें ही हो सकती है।

[७] भागवतांकका प्रकाशन

पूज्य श्रीसेठजी सदैव ही श्रीभाईजीके लिये श्रद्धास्पद रहे। पूज्य श्रीसेठजीका श्रीभाईजीके जीवनमें बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रारम्भिक साधनावस्थामें श्रीभाईजीको श्रीसेठजीसे बड़ी प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन मिला था। शिमलापालके नजरबन्दी जीवनमें श्रीसेठजीने उनकी और उनके परिवारकी बड़ी सँभाल की थी। अन्तरमें आत्यन्तिक विरक्ति होते हुए भी श्रीभाईजी गोरखपुरमें गीताप्रेसके कार्यके लिये जीवनके अन्त तक अटके रहे मात्र श्रीसेठजीकी रुचिका पालन करनेके लिये। कोई भी श्रीभाईजीको श्रीसेठजीका एक आज्ञाकारी जन कह सकता है, पर मुझे परम आश्चर्य हुआ तब, जब ऐसे आज्ञाकारी जनने भी सैद्धान्तिकताके आधारपर श्रीसेठजीसे अपना मत-वैभिन्न्य व्यक्त किया। यह मतान्तर था बड़ा प्रबल और था श्रीमद्भागवत महापुराणके विशेषांकके प्रकाशनके सम्बन्धमें।

पूज्य श्रीसेठजी एक सिद्ध संत थे और आचार्य कोटिके महापुरुष थे। उनके जीवनमें आचार-विचार-व्यवहारकी मर्यादाका अत्यधिक महत्त्व था। मर्यादावादी दृष्टिकोण होनेके कारण किसी भी निर्णय पर पहुँचनेके पूर्व वे लोक-भावनाको ध्यानमें रखा करते थे तथा विचारा करते थे कि इस निर्णयका जन-मानसपर क्या प्रभाव पड़ेगा। कोई भी निर्णय लिया जाय और तदनुसार कोई भी कार्य किया जाय, वह लोक-संग्रहकी कसौटीपर खरा उतरना चाहिये। समाज- हितैषिताका निखरा दृष्टिकोण होनेके कारण श्रीसेठजीके निर्णयानुसार न जाने कितने सरस ग्रन्थोंका प्रकाशन गीताप्रेससे नहीं हो पाया और इसी कारण श्रीसेठजीको श्रीमद्भागवत सम्बन्धी विशेषांकके प्रकाशनपर थोड़ी आपत्ति थी।

सन् १९३८ में श्रीरामचरितमानसपर 'कल्याण' पत्रिकाका विशेषांक मानसांक प्रकाशित हो चुका था और इसी प्रकार प्रकाशित हो चुका था सन् १९३९ में गीतातत्त्वांक, जो है श्रीमद्भगवद्गीताकी एक विस्तृत टीका। श्रीरामचरितमानस और श्रीमद्भगवद्गीतापर आधारित विशेषांकोंके प्रकाशित हो जानेके बाद यह विचार जोर पकड़ने लगा कि अब श्रीमद्भागवत महापुराणपर आधारित विशेषांक प्रकाशित होना चाहिये। श्रीसेठजी भी श्रीमद्भागवत महापुराणके महत्त्वको भलीभाँति जान रहे थे, पर उनके मनमें आशंका थी कि समाजके अभद्र तत्त्व रासपञ्चाध्यायी वाले अंशका मनमाना अर्थ लगाकर अनुचित लाभ उठा सकते हैं और गम्भीर अर्थ वाले तथ्यकी आन्तरिक गम्भीरताको हृदयंगम न करके समाजमें अनर्थ एवं अनर्थकारी वातावरण उत्पन्न कर सकते हैं। लोक-मंगलकी भावनासे प्रेरित होनेके

कारण श्रीसेठजी चाहते थे कि यदि श्रीमद्भागवत महापुराणपर आधारित विशेषांकका प्रकाशन हो तो दशम स्कन्धके महारासवाले पाँच अध्यायोंको विशेषांकमें नहीं छापना चाहिये।

इसी बातपर श्रीभाईजीका उनसे मतान्तर था। श्रीभाईजीकी गहरी आस्था और सुदृढ़ मान्यता थी— श्रीरासपञ्चाध्यायी तो श्रीमद्भागवत महापुराणका प्राण है। रासपञ्चाध्यायीको निकाल देनेसे फिर भागवत भागवत नहीं रह जायेगा। इन पाँचों अध्यायोंको निकाल करके और इस प्रकार पुराणको प्राण-विहीन करके प्रकाशित करनेसे क्या लाभ? भले श्रीमद्भागवतका प्रकाशन न हो, पर यदि हो तो उसमें श्रीरासपञ्चाध्यायी वाला अंश अवश्य रहे। हम लोगोंको भगवान वेदव्यासकी वाणीपर अविश्वास करना उचित नहीं। श्रीरासपञ्चाध्यायीके अन्तमें फलश्रुतिके रूपमें स्पष्ट कहा गया है कि इससे हृद्रोगका नाश होता है। इस कथनपर विश्वास करके श्रीरासपञ्चाध्यायी सहित ही श्रीमद्भागवतका प्रकाशन होना चाहिये।

अपनी आस्थाकी अभिव्यक्ति कर देनेके बाद भी श्रीमद्भागवतके प्रकाशनके प्रति श्रीभाईजीका तटस्थ-भाव रहा। तटस्थता इसलिये कि आजकल श्रीभाईजीकी उपराम-वृत्ति बड़ी प्रबल हो उठी थी। श्रीभाईजी उन दिनों यही सोचते थे कि मैं बम्बईसे गोरखपुर आया था कल्याणके सम्पादन-कार्यके दायित्वसे मुक्त होनेके लिये, न कि उससे अधिकाधिक सम्बद्ध होनेके लिये। उनका मन इतना अधिक उचट गया कि वे अलग होनेकी तैयारीमें लग गये। अन्ततोगत्वा वे सितम्बर १९३९ में एकान्त-वासके लिये दादरी (हरियाणा) चले गये और फिर तीन मास बाद वहाँसे चले गये रतनगढ़। श्रीसेठजीने देखा कि श्रीभाईजीके बिना कल्याणका सम्पादन और प्रकाशन सम्भव नहीं है, अतः वे एक दिन गीतावाटिका आये और हमलोगोंसे कहने लगे— आप सभी लोग यहाँसे रतनगढ़ चले जायें और हनुमानको लेकर यहाँ आयें। वह शायद मेरी बातपर ध्यान न दे, पर आप लोगोंकी बात तो वह सुनेगा ही। आपलोग उसे यहाँ अवश्य ले आयें, जिससे कल्याणका काम होता रहे। यदि आनेकी बात नहीं बन पाये तो आप सब लोग वहीं रह जायें तथा वहींसे कल्याणके सम्पादनका काम होता रहे।

श्रीसेठजीके कथनके बाद सारा सम्पादकीय विभाग गीतावाटिकासे रतनगढ़ गया। पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, पं. श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदी, दादा कृष्णदास आदि-आदि कई लोग गये और फिर वहाँसे आना हो पाया तत्काल नहीं, जुलाई १९४५ में। पाँच वर्ष सभी लोग रतनगढ़में ही रहे।

हमलोग रतनगढ़ गये थे सन् १९४० में और इस वर्ष कल्याणका साधनांक विशेषांक प्रकाशित हुआ। इन दिनों श्रीभाईजीकी निवृत्ति-भावना, एकान्त-साधना, मौन-साधना, नाम-साधना, भाव-साधना आदिका प्रकर्ष रूप हमलोगोंको दिखलायी देता था और यह मेरा निजी अनुमान है कि इसीके फलस्वरूप कल्याणका साधनांक प्रकाशित हुआ।

कल्याणके विशेषांकके रूपमें समाजके सामने आया साधनांक, पर वह तो प्रतीक्षा कर रहा था भागवतांककी। कल्याणके पाठकोंकी आशा यही थी कि श्रीरामचरितमानस और श्रीमद्भगवद्गीताके बाद अब श्रीमद्भागवत महापुराणपर विशेषांक प्रकाशित होगा, जो भक्ति-पथ-पथिकोंके लिये परम उपयोगी सिद्ध होगा और इनमें भी श्रीकृष्ण-भक्तोंके लिये। भक्तोंकी इस आशा और आवश्यकताको श्रीसेठजी भली प्रकार समझ रहे थे, पर वे चाहते थे

कि विशेषांकमें श्रीरासपञ्चाध्यायी न छपे। वे यह भी भली प्रकार समझ रहे थे कि इस विचार-विन्दुपर हनुमान मुझसे सहमत नहीं है, पर इसीके साथ वे यह तो बड़ी भली प्रकारसे जान रहे थे कि बिना हनुमानके अन्य कोई भी भगवतांककी तैयारी कर नहीं सकता। श्रीसेठजीके विचारोंमें बड़ा मन्थन-चिन्तन चल रहा था, पर कोई हल निकल नहीं रहा था।

सन् १९४१ में जब चूरू स्थित ऋषिकुलका वार्षिकोत्सव हुआ तो श्रीसेठजी रतनगढ़ भी आये और श्रीभाईजीसे मिले। उस समय हमलोग भी वहीं थे। हमलोगोंके सामने ही अपनी मारवाड़ी भाषामें श्रीसेठजीने श्रीभाईजीसे मुस्कुराते हुए स्नेह सने स्वरमें कहा— हनुमान ! एक रकम सेती मँ हार्यो तू जीत्यो। इब भागवतांक प्रकाशित कर। (एक प्रकारसे मैं हारा और तुम जीते। अब भागवतांकको प्रकाशित करो।)

भागवतांकको प्रकाशित करनेके लिये सहमति प्रदान करके श्रीसेठजीने यह भी कहा कि उसमें रासपञ्चाध्यायी तो रहेगी ही, पर तुम चीरहरणलीला और महारासलीला, इन दो लीलाओंपर अपनी ओरसे टिप्पणी अवश्य दे देना।

श्रीसेठजीकी अनुमति मिलते ही श्रीभाईजी तो प्रसन्न हुए ही, हम सभी लोग एकदम खिल उठे। सारे सम्पादकीय परिवारमें परमानन्द व्याप्त हो गया। अनुमति देकर श्रीसेठजी चले गये और श्रीभाईजी चाहने लगे कि आगामी विशेषांक श्रीमद्भागवत महापुराणपर हो, पर इतने बड़े विशेषांककी तैयारीके लिये अपेक्षित समय था ही नहीं। अट्ठारह हजार श्लोकोंवाले महापुराणका अनुवाद साधारण काम नहीं है। प्रथम, सारे महापुराणका अनुवाद और दूसरे, श्रीमद्भागवतसे सम्बन्धित कतिपय मुख्य विषयोंपर लेखोंका संकलन-सम्पादन, इस सारे कार्यकी विशालताका अनुमान श्रीभाईजीको हो गया और अनुमान होनेके बाद भी इस विशेषांकके कार्यको सम्पन्न करनेके लिये वे प्रस्तुत हो गये। उन्होंने अपने पास श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदीको बुलाया और कहा— पण्डितजी ! अपने पास कुल अढ़ाई-तीन मासका समय है और इस अवधिमें श्रीमद्भागवतका अनुवाद लिखकर विशेषांकके लिये तैयार करना है और यह गुरुतर कार्य आपके अतिरिक्त और कौन कर सकता है ? श्रीसेठजीने अन्तिम समयमें अनुमति प्रदान की और अब मेरी और सम्पादकीय विभागकी लज्जा आपके हाथ है।

दूसरेको सम्मान देना तो श्रीभाईजीके स्वभावमें था और मानप्रदायिनी भाषामें ही उन्होंने श्रीद्विवेदीजीसे निवेदन किया था। बात सुनकर श्रीद्विवेदीजीने जिज्ञासा व्यक्त की— कल्याणकी और विशेषांककी बात आप मुझसे न कहें। यह सब बात तो आप जाने। मुझे तो यह कहिये कि आप क्या चाह रहे हैं ? आपकी इच्छा क्या है ?

श्रीभाईजीने कहा— आप श्रीमद्भागवत महापुराणका अनुवाद कर दें।

श्रीद्विवेदीजीने कहा— आपकी इच्छा ही मेरे लिये आज्ञा है और शीघ्र ही यह कार्य आरम्भ हो जायेगा। आप श्रीदेवधरजीको लिखनेके लिये मुझे दे दीजिये। मैं अनुवाद बोलता जाऊँगा और वे लिखते जायेंगे।

श्रीभाईजीने उसी समय मुझे बुलाया और पुचकारते हुए, प्यारमें नहलाते हुए, पीठपर हाथ फेरते हुए कहा— देवधरजी ! आजसे आप पण्डितजीके साथ काम करें और भागवतके

अनुवादको लिखें। आप लोग अपनी सुविधानुसार खायें, पीयें, सोयें, बैठें, चाहे जो करें।

बस, श्रीमद्भागवत महापुराणके अनुवादका कार्य आरम्भ हो गया। श्रीद्विवेदीजी अपने सामने अनेक टीकाएँ रखकर श्लोकोंके अर्थ बोलते जाते थे और मैं लिखता जाता था। सबेरे तीन बजे उठकर और स्नानादिसे निवृत्त होकर हमलोग चार बजे तक लिखनेके लिये बैठ जाते थे और घंटों अनुवादका लेखन कार्य होता रहता था। श्रीमद्भागवत महापुराणका अनुवाद-कार्य अढ़ाई मासमें पूर्ण हो गया। एक सर्वथा असम्भव कार्य वस्तुतः सम्भव हो गया। मुझे पण्डितजीके साथ रहनेका अवसर मिला है। जब वे श्रीशान्तनुविहारी द्विवेदी थे, तब तो मैं उनके पास ही था और संन्यास ले लेनेके बाद जब वे स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती कहलाये, तब भी उनके पास उठने-बैठनेका भरपूर अवसर मिला है। मुझे उनके जीवनको पाससे देखनेका खूब अवसर मिला है और मैं कह सकता हूँ कि वे बड़े अलमस्त थे। समयकी पाबन्दीका पालन वे बहुत कम कर पाते थे। कार्यको नियमित रूपसे करना तो उनके स्वभावमें ही नहीं था और कुछ-कुछ ऐसा ही हिसाब-किताब मेरा भी समझना चाहिये, पर यह सारी अलमस्ती और सारी बेपरवाही उन दिनों कहाँ चली गयी, कुछ पता नहीं। वैसी नियमितता, वैसी संलग्नता, वैसी तत्परता, वैसा परिश्रम न पहले कभी हुआ और न कभी भविष्यमें हो पाया। वैसा परिश्रम हम दोनोंके द्वारा कभी सम्भव था ही नहीं। इस विशाल अनुवाद-कार्यको सम्पन्न करनेकी शक्ति कहाँसे आयी, हमें पता नहीं। मैं तो यही मानता था और मानता हूँ और यही मान्यता स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराजकी भी है कि इस शक्तिका संचार श्रीभाईजीने किया। यह पूर्णतः सही बात है कि उस शक्ति-संचारके बिना यह कार्य हो ही नहीं पाता। शक्ति-संचारके अतिरिक्त इन दिनों श्रीभाईजीकी आध्यात्मिक शक्तिका वैभव भी देखनेको मिला, जो आगामी विवरणसे स्पष्ट है।

अनुवाद करके हमलोग श्रीभाईजीको दे दिया करते थे और उस अनुवादको अन्तिम रूप प्रदान करनेके लिये श्रीभाईजी एक बार उसको देखते ही थे और देखकर यथास्थान ठीक करते ही थे। इसके बाद वह अनुवाद छपनेके लिये रतनगढ़से गोरखपुर भेज दिया जाता था। इधर श्रीमद्भागवतका अनुवाद तैयार हो रहा था और उधर श्रीभाईजी विशेषांकके लिये आवश्यक लेख और चित्र तैयार करवा रहे थे। श्रीमित्रा बाबू, श्रीजगन्नाथजी आदि चित्रकारोंको बतलाने और समझानेमें तथा निर्देशानुसार रंगीन चित्र, सादे चित्र, रेखा चित्र, मुख पृष्ठ आदि तैयार करवानेमें श्रीभाईजीका पर्याप्त समय लगता था। चित्रोंके अतिरिक्त लेखोंको आमन्त्रित करनेकी दृष्टिसे देशके विभिन्न विद्वानोंसे सम्पर्क स्थापित करना साधारण कार्य नहीं था। विद्वानोंसे लेख मँगवाने और उनका सम्पादन करनेका दायित्वपूर्ण कार्य श्रीभाईजीने अपनी लेखनीसे किया। लेखनीसे सम्पादन करनेके अलावा उन्होंने स्वयं भी टिप्पणी लिखी श्रीसेठजीके कथनानुसार श्रीचीरहरणलीला और श्रीमहारासलीलापर। इन दो लीलाओंके अतिरिक्त श्रीभाईजीने श्रीमाखनचोरीलीलापर भी टिप्पणी लिखी और इन मार्मिक टिप्पणियोंमें, जिन्हें वस्तुतः विस्तृत लेख ही कहना चाहिये, इन अति विस्तृत लेखोंमें उन्होंने ऐसा लिखा, जिसमें युग-युगके साधकों-भक्तों-विचारकों-विद्वानोंके लिये एक महान आलोक है, वह आलोक, जिससे सत्यके मर्मका दर्शन हो सके। ऐसे आलोकका दान वही कर सकता है, जिसके अन्तरमें आध्यात्मिक आलोकका पुञ्ज हो। श्रीभाईजीके ये लेख भागवतांकके

आरम्भमें छपे हैं। चित्र-लेख-अनुवादयुक्त ग्यारह सौ पृष्ठों वाला यह विशेषांक ठीक समयपर प्रकाशित हो गया। प्रायः कल्याणके विशेषांक सात सौ पृष्ठोंके हुआ करते हैं, पर इतना विशाल विशेषांक न कभी पहले और न कभी बादमें प्रकाशित हो पाया। सुसज्जा और सुन्दरताकी दृष्टिसे इस विशेषांककी बड़ी ख्याति हुई और ऐसा महान एवं विशाल विशेषांक श्रीभाईजीने तैयार कर दिया चार मासके अन्दर सम्पादन-दायित्वके साथ-साथ अन्य दायित्वोंका निर्वाह करते हुए। मैं उन अन्य दायित्वोंको एक जागतिक झमेला-झंझट कहा करता हूँ। रतनगढ़ पूर्वज भूमि होनेके कारण श्रीभाईजीका परिचय-क्षेत्र अति विस्तृत था और सभी लोग अपनी-अपनी समस्या लेकर श्रीभाईजीके पास आते ही रहते थे। बेटी-बेटेके सम्बन्धकी समस्या, पारस्परिक मनमुटावकी समस्या, घरेलू झगड़ोंकी समस्या, रोग और चिकित्साकी समस्या, नौकरी और सिफारिशकी समस्या, संस्था-संचालनकी समस्या, कोर्ट-कचहरीकी समस्या, इन समस्याओंका कहीं अन्त नहीं है, पर ये समस्याएँ सामने आती थीं और उनका न्यूनाधिक समाधान श्रीभाईजीके द्वारा आनेवालेको मिलता ही था। इन समस्याओंमें उलझे हुए सांसारिक लोगोंकी दुनियासे साधकों-साधुओंकी साधनापरक दुनिया एकदम अलग होती है और साधना जगतके लोग भी श्रीभाईजीके समयपर अपना अधिकार मानते थे। इनके लिये सत्संगमें प्रतिदिन प्रातःकाल या सायंकाल श्रीभाईजीका प्रवचन एक घंटा हुआ करता था। रतनगढ़के साधकोंकी साधन-कमेटीकी बैठकमें भाग लेनेमें जो समय लगता था, वह इससे अलग है।

सांसारिकोंको समस्याओंका समाधान देना, साधकों-साधुओंके लिये प्रवचन करना, अपने सम्पादकीय परिवारको सँभालना, इस प्रकार इन विभिन्न दायित्वोंका भली प्रकार निर्वाह करते हुए भागवतांकका सम्पादन करना और चार मासमें सम्पूर्ण प्रकाशनोचित सामग्रीको तैयार कर देना, क्या यह कार्य कोई साधारण मानव कर सकता है? सर्वथा असम्भव। तभी तो मैं कहता हूँ कि इस विशेषांककी सामग्रीको तैयार करनेमें आदिसे अन्ततक पद-पदपर श्रीभाईजीकी अद्भुत और अव्यर्थ आध्यात्मिक शक्तिका प्रभाव और वैभव देखनेका मुझे अवसर मिला।

[८] गुरुजनाभिलाषानुवर्तन

सन् १९४२ में रतनगढ़से मैं अपने गाँवपर चला आया। गाँवपर आकर घरको सँभालना भी जरूरी था। अपने घरपर सभी लोगोंसे मिल कर मैं पुनः रतनगढ़ जानेके लिये गाँवसे गीताप्रेस आया। गीताप्रेसमें मुझे एक नया आदेश सुननेको मिला।

ऐसा कौन सा हिन्दू है जिसने महादानी मन्दिर-निर्माता बिड़ला-बन्धुओंकी ख्याति न सुन रखी है? इन बिड़ला-बन्धुओंमें सम्मान्य श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाका श्रीभाईजीसे बड़ा घना आत्म-भाव था। श्रीबिड़लाजीके मनमें गीताप्रेस, श्रीसेठजी और श्रीभाईजीके लिये अमित सराहना भरी पड़ी थी। श्रीबिड़लाजी मथुरा और वृन्दावनके मध्यमें श्रीगीतामन्दिरका निर्माण करवा रहे थे। श्रीगीतामन्दिरमें श्रीगीताजी आदिके उद्बोधक शिलालेख लगवानेके लिये इन्हें विश्वसनीय एवं सुयोग्य व्यक्तिकी आवश्यकता थी। अपनी विवशता और आवश्यकताका निवेदन पत्रके द्वारा श्रीबिड़लाजीने श्रीभाईजीके सामने किया। जो पत्र श्रीभाईजीको लिखा गया, वही पत्र उन्होंने श्रीसेठजीके पास भी लिखा। मैं ज्यों ही गाँवसे गीताप्रेस आया, श्रीसेठजीने कहा— आप रतनगढ़ नहीं, मथुरा चले जायें और श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लासे

मिलकर उन्हें श्रीगीतामन्दिरमें शिलालेख लगवानेके कार्यमें सहयोग दे दीजिये।

मैंने विनम्र शब्दोंमें कहा— पर मुझे तो रतनगढ़ जाना है श्रीभाईजीके पास।

श्रीसेठजीने कहा— श्रीबिड़लाजीका जो पत्र मेरे पास आया है, वैसा ही हनुमानके नाम है और यदि हनुमान यहाँ होता तो वह भी मथुरा जानेके लिये ही कहता। केवल तीन-चार माहकी बात है। आपके ऊपर हमारा विश्वास है। आप गीताप्रेसकी प्रतिष्ठाको बनाये रखेंगे। वहाँ जाकर शिलालेख लगवानेवाले कार्यको पूरा करवा दें। फिर तो श्रीभाईजीके पास ही काम करना है।

मैं गोरखपुरसे चला गया मथुरा। वहाँ जाकर मैं कार्यमें सहयोग देने लगा। फिर तो श्रीभाईजीका भी पत्र मुझे मिल गया कि वहाँका कार्य कर देना चाहिये। कार्य हो रहा था, पर तीन-चार माहमें पूरा नहीं हो पाया। श्रीबिड़लाजीने पुनः श्रीभाईजीसे अनुरोध करके मुझे तीन मासके लिये और माँग लिया। उदारात्मा श्रीभाईजी भला कब ना कहने वाले थे? तीन मासके बाद फिर कुछ समयके लिये माँग की गयी और फिर मुझे वहाँ रुक जाना पड़ा। नौ मासमें शिलालेख लगवानेका कार्य पूर्ण हो गया।

जब मैं मथुरासे प्रस्थान करने लगा तो पुनः एक नयी बात सामने आ गयी। उसी समय श्रीकृष्णजन्मस्थानके पुनरुद्धारका कार्य आरम्भ हो चुका था और श्रीबिड़लाजी चाहते थे कि मैं उस कार्यके लिये मथुरा रहूँ, पर अब वे किस रूपमें मुझसे कहें या श्रीभाईजीसे कहें। उन्होंने उसी समय वाराणसी टेलीफोन करके काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके संस्थापक परम पूज्य श्रीमदनमोहनजी मालवीयको कहा— मैं दो बार तो माँग चुका और अब फिर श्रीभाईजीको कुछ कहनेकी स्थितिमें मैं नहीं हूँ, पर आप देवधरजीके लिये श्रीभाईजीको पत्र लिख दें तो बड़ा अच्छा रहे।

टेलीफोनसे समाचार मिलते ही पूज्य श्रीमालवीयजीने श्रीभाईजीको पत्र लिखकर कहा— मैं श्रीदेवधरजीको श्रीकृष्णजन्मभूमिके पुनरुद्धार-कार्यके लिये आपसे माँग रहा हूँ। यह कार्य भी तो हिन्दू धर्मके उत्कर्षको लेकर ही है।

पूज्य श्रीमालवीयजीका पत्र पाकर श्रीभाईजीका मन दुविधामें कुछ पड़ा और नहीं भी पड़ा। मैं तो चाहता ही नहीं था कि सम्पादकीय विभाग छोड़कर मुझे मथुरा जाना पड़े। मेरे साथी लोग भी यही चाहते थे कि मैं उनके पास ही रहूँ, पर पूज्य मालवीयजी जैसे गुरुजनकी उपेक्षा सम्भव थी ही नहीं। पूज्य मालवीयजीकी अभिलाषा और अनुरोधको श्रीभाईजीने अपने लिये आदेश ही माना और यही निश्चय किया कि उस अभिलाषाका अनुवर्तन ही मेरा परम धर्म है। तत्काल श्रीभाईजीने पूज्य मालवीयजीके पत्रकी नकलको अपने पत्रके साथ संलग्न करते हुए मेरे पास लिखकर भेजा— श्रीकृष्णजन्मभूमिके पुनरुद्धारका कार्य भी मेरा ही कार्य है और उस कार्यके पूर्ण होनेमें आप अपना सहयोग सर्व प्रकारसे दें।

मैं श्रीभाईजीके इस पत्रपर सचमुच विस्मय करने लगा। जैसे मैं और मेरे साथी नहीं चाहते थे, वैसे ही श्रीभाईजी भी नहीं चाहते थे कि मैं उनसे दूर जाऊँ, परंतु पूज्य गुरुजनके वचनको सम्मान देनेके लिये उन्होंने अपनी चाहनाका स्वरूप ही बदल दिया। अब वही हो, जो पूज्य गुरुजनकी अभिलाषा है। गुरुजनोंकी अभिलाषाका अनुवर्तन करनेकी भावना श्रीभाईजीके

जीवनमें पदे-पदे मिलती है और उनकी यह अभिलाषानुवर्तन-भावना मेरे लिये सदैव वन्दनीय रही है। न जाने कितने प्रसंग मेरे सामने घटित हुए हैं, जो श्रीभाईजीके व्यक्तित्वके इस महान पक्षके परिपोषक हैं।

[१] पिताजीको जीवन-दान

मैं मथुरामें था कि एक दिन गाँवसे समाचार आया कि पिताजीको लकवा मार गया है। यह तीसरा दौरा था। मैं भागकर मथुरासे अपने गाँव माधवपुर आया। पिताजीकी हालत देखकर मैं भी एक बार घबरा गया। गाँवमें न तो कुशल चिकित्सक होते थे और न आवश्यक दवाएँ मिल पाती थीं। मैं अपने गाँवसे गोरखपुर श्रीभाईजीके पास आया। श्रीभाईजीको अपने पिताजीकी गम्भीर स्थितिसे अवगत कराया। श्रीभाईजीने मुझसे पूछा— आपका गाँव यहाँसे कितनी दूर है ?

मैंने बतलाया— लगभग साठ मील होगा, पर आप यह क्यों पूछ रहे हैं ? आपको मेरे गाँवपर नहीं चलना है। आपको जो भी करना हो, यहीं गीतावाटिकामें बैठे-बैठे ही करें।

श्रीभाईजीने प्यार भरी भाषामें कहा— क्या मैं चलूँगा ? मैं तो बैठा रहूँगा। चलेगी कार और उसमें हम बैठे रहेंगे।

श्रीभाईजीके स्वरमें प्यार तो प्रमुख था ही, चलनेका निश्चय भी प्रबल था। इसके तुरन्त बाद श्रीभाईजीने मुझसे कहा— एक बार आप बाबासे पूछ आयें कि वे कारमें चल सकनेकी स्थितिमें हैं क्या ?

पूज्य बाबाकी पसलीमें बड़ा दर्द था, इतना दर्द कि बेचैनीके गहरे चिह्न चेहरेपर थे। श्रीभाईजीके कहनेके बाद मैंने जाकर बाबासे पूछा तो एकदम स्वस्थ व्यक्तिकी भाँति बाबाने कहा— अवश्य चलूँगा। मेरे कारण श्रीभाईजीके कार्यमें कोई बाधा क्यों उत्पन्न हो।

बाबाकी स्वीकृति मिलते ही शामको श्रीभाईजी नैश कारसे मेरे गाँवके लिये गीतावाटिकासे चले। कारमें मैं तथा पूज्य बाबा तो थे ही, श्रीभाईजीने डाक्टर चक्रवर्तीजीको भी ले लिया। पिताजीकी जो हालत मैंने बतलायी थी, उसके हिसाबसे आवश्यक दवा तथा इंजेक्शन भी ले लिये गये। तीन घंटेके बाद रातको नौ बजे हमलोगोंकी कार गाँवपर पहुँची। जब घरके द्वारपर गया तो वहाँ बुरी तरह रोना-धोना चल रहा था। मैं सशंक हो उठा कि क्या पिताजीका निधन हो गया। मैं कुछ पूछूँ, इसके पहले ही घरवाले और गाँववाले मुझे कटु वचनमें उलाहना देने लगे— तुम कैसे बेटे हो, जो पिताजीको ऐसी गम्भीर हालतमें छोड़कर चले गये ? वे सर्वथा चेतना शून्य पड़े हैं। नाड़ीकी गति नहीं के बराबर है। अन्तिम समय जानकर उनको नीचे ले लिया गया है।

मैं यह सब चुपचाप सुनता रहा। इसके बाद श्रीभाईजी, बाबा एवं डाक्टर चक्रवर्तीजीको साथ लेकर मैं पिताजीके पास आया। वे भूमिपर बेहोश पड़े थे। श्रीभाईजी मेरे पिताजीको पण्डितजी कहा करते थे। पहले एक-दो बार भेंट-मुलाकात हो चुकी थी। श्रीभाईजी पिताजीके कानके पास मुहँ सटाकर कहने लगे— पण्डितजी ! मैं हनुमान हूँ। मैं हनुमान गोरखपुरसे आया हूँ। आप देखिये। मैं गीताप्रेससे चलकर आपके पास आया हूँ।

पासमें खड़े हुए गाँवके एक प्रौढ़ व्यक्तिने समीपस्थ एक अन्य व्यक्तिसे कहा– क्या पण्डितजी इनकी आवाज सुनेंगे, जो घंटोंसे बेहोश पड़े हैं?

गाँवके खड़े लोग अपने ढंगसे हास्यास्पद टिप्पणी करते रहे, पर उन्हीं टिप्पणीकरने वालोंने अपनी आँखसे देखा कि मेरे पिताजीने धीरेसे अपनी पलकें खोली। श्रीभाईजीको देखते ही पिताजीके नेत्र सजल हो उठे और मेरे विश्वासके अनुसार श्रद्धामें-सम्मानमें-कृतज्ञतामें कुछ बूँदें ढुलक भी गयीं। श्रीभाईजीने डाक्टर चक्रवर्तीजीको दवा देनेके लिये कहा। डाक्टर साहबने दवा दी तथा इंजेक्शन लगाया।

उधर डाक्टर साहब पिताजीको सँभाल रहे थे और इधर मैंने श्रीभाईजीसे कहा– श्रीभाईजी मेरी एक बात सुन लें। मेरा निवेदन यह है कि या तो पिताजी अभी आपके सामने ही 'चले' जायें या जीवित रहें तो स्वावलम्बी बनकर रहें। मैं रहता हूँ मथुरा और मेरे पीछे कौन मल-मूत्रकी, दवा-पानीकी सेवा करेगा? आपके सामने ही चले जायें तो इससे बड़ी बात और क्या होगी?

श्रीभाईजीने सान्त्वना देते हुए कहा– आप इतने अधीर न हों। डाक्टर साहब दवा दे रहे हैं। अब यह बतायें कि क्या आप अपने यहाँ चौबीस घंटेका अखण्ड कीर्तन करवा सकते हैं?

मैंने कहा– क्यों नहीं हो सकता?

श्रीभाईजीने बताया– तो आप मानसकी चौपाई *'दीन दयाल बिरिदु सँभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी'* का कीर्तन करवा दीजिये।

मैंने और मेरे पास जो गाँव वाले खड़े थे, सबने इस बातको तुरन्त स्वीकार कर लिया। श्रीभाईजीके सामने ही भगवान श्रीसीतारामजीका चित्रात्मक श्रीविग्रह स्थापित करके उक्त चौपाईका कीर्तन आरम्भ कर दिया गया।

श्रीभाईजी, बाबा तथा डाक्टर चक्रवर्तीजी कुछ घंटों बाद गाँवसे वापस गोरखपुर चले आये। कीर्तन लगातार चौबीस घंटे होता रहा। दवा भी दी जा रही थी। तीन दिनमें पिताजी ठीक हो गये और आश्चर्य यह कि चार वर्ष ठीक प्रकारसे जीवित रहे। लकवाके कारण वे बोल नहीं पाते थे, पर अपना आवश्यक कार्य वे स्वयं कर लिया करते थे। किसी अन्यपर निर्भर नहीं थे। चार वर्ष बाद निधनके एक दिन पहले संध्यावन्दन उन्होंने ठीक प्रकारसे किया और बीस घंटे बीतते-बीतते वे 'चले' गये। यह चमत्कार तो मेरे साथ घटित हुआ और जैसा मैंने निवेदन किया था, श्रीभाईजीने ठीक वैसा ही मेरे पिताजीके लिये कर दिया।

[१०] सद्भावकी सृष्टि

मैं १९६६ के अप्रैल मासमें श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये गीतावाटिका गया। मुझे कई विषयोंमें श्रीभाईजीसे परामर्श लेना था। मुख्य विषय था– श्रीकृष्णजन्मभूमिपर भागवत भवनके निर्माणके लिये अर्थ-व्यवस्था। इस बारेमें श्रीभाईजीसे विस्तार पूर्वक बातचीत हुई। इस बातचीतमें श्रीभाईजीने तो श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाकी सीमातीत प्रशंसा की। श्रीभाईजीने श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाके बारेमें कहा– वे एक ऐसे व्यक्ति हैं जो हिन्दू भूमि, हिन्दू धर्म, हिन्दू

समाज, हिन्दू जगत, हिन्दू साहित्य, हिन्दू हितके बारेमें सतत सोचते रहते हैं।

इस बात-चीतके बीच मैंने श्रीभाईजीको एक उपालम्भ भी दिया। वह उपालम्भ था उनके एक पत्रको लेकर। १६ मार्च १९६६ को अपने पत्रमें श्रीभाईजीने लिखा था– संयोगकी बात थी। पक्का विचार होनेपर भी मैं मथुरा, चूरू नहीं जा सका। 'करी गोपालकी सब होय'। इधर शरीर बहुत कमजोर हो गया। दिनभर प्रायः लेटा रहता हूँ। कुछ भी काम-काज कर नहीं पाता। आपके कई पत्र मिले थे। सोचा था, मिलनेपर सारी बातें होंगी, पर मनुष्यका सोचा क्या होता है। शरीरकी अस्वस्थता ही यात्रामें बाधक बन गयी। शरीर तो जाने वाला है ही, फिर मेरा शरीर तो आयुकी दृष्टिसे नदी-तटका खोखली जड़ वाला पेड़ है। एक झोंकेमें जा सकता है। इसकी कोई चिन्ता नहीं। चित्त बहुत प्रसन्न रहता है। बीमारीके निमित्तसे एकान्त मिल जाता है, जो बहुत ही अनुकूल प्रतीत होता है। आपसे एक विनीत प्रार्थना है। मेरे द्वारा जानमें-अनजानमें, पता नहीं, कितनी बार आपके साथ बुरा व्यवहार-बर्ताव हुआ होगा। आपको तो स्मृति ही नहीं होगी, पर मैं चाहता हूँ, आप मुझे सर्वथा क्षमा कर दें। मैं अपने उन सभी गुरुजनों-बन्धुओंसे, जिनसे मेरा व्यवहार पड़ा है, बड़ी दीनताके साथ क्षमा प्रार्थना करता हूँ। सभी भगवद्स्वरूप हैं, मुझ तुच्छपर दया करेंगे ही।

इस पत्रको पढ़कर मुझे बड़ी व्यथा हुई। श्रीभाईजी जैसे महानात्माकी लेखनीसे लिखे हुए इन शब्दोंको नेत्र न पढ़ना चाहते थे और कान न सुनना चाहते थे। उपालम्भ देते हुए मैंने श्रीभाईजीसे कहा– आप यह कैसा पत्र लिखने लगे कि पता नहीं कब शरीरका अवसान हो जाय। ऐसा लिखनेसे स्वजनोंको बड़ी निराशा होती है, हृदय व्यथासे भर जाता है और आँसू भी बह पड़ते हैं। ऐसे उद्‌गार तो आत्मीयजनोंको हतोत्साहित ही कर देते हैं।

मैं अभी और भी अपने व्यथित हृदयके खिन्न भाव व्यक्त करना चाहता था, पर श्रीभाईजी बीचमें ही बोलकर कहने लगे– मेरे लिखनेका भाव न यह था कि मेरा शरीरान्त शीघ्र होने वाला है और न यह था कि मेरे स्वजन निराशाच्छन्न हो जायँ। मैं तो विगत दो वर्षोंसे इस प्रकारके भाव लिखकर या बोलकर व्यक्त कर रहा हूँ। इन भावोंको व्यक्त करनेका उद्देश्य है कि किसीसे कोई द्वेष नहीं रह जाय। जहाँतक मुझे स्मरण है, कोई मुझसे नाराज नहीं है, फिर भी लिख देता हूँ और क्षमा माँग लेता हूँ, इसीलिये कि किसीके भी मनमें मेरे प्रति कुभावका अस्तित्व रंचमात्र न रह जाय।

मैंने तत्काल कहा– किसीके मनमें आपके प्रति लेश मात्र द्वेष या कुभाव होगा, यह सोचना ही हास्यास्पद है।

श्रीभाईजीने कहा– व्यवहारमें अनेक प्रकारके और भिन्न स्तरके लोगोंसे मिलना पड़ता है। न जाने कोई कब और क्या सोच ले ? किसीके मनमें द्वेष या कुभावका लेशांश भी रहना उचित नहीं, अतः योग्य यही है कि सभीसे अपनी ज्ञात-अज्ञात भूलोंके लिये क्षमा- याचना कर लेनी चाहिये।

श्रीभाईजीके इन शब्दोंको सुनकर मैं मन-ही-मन आत्म-विश्लेषण कर रहा था कि व्यवहारमें मैं कितना लापरवाह और श्रीभाईजी कितने सावधान हैं। उनकी सतत सावधानी तथा विनम्र

क्षमा-याचना समाजमें सद्भावकी ही सृष्टि करती है। ■

श्रीगिरिधारी बाबा

[१] वह प्रथम दर्शन

मैं घरसे निकला संतों-महात्माओंके दर्शनके लिये। तब मेरी आयु २४ वर्षके लगभग थी। मैं जा रहा था नैपालकी ओर। ट्रेनमें किसीने मुझसे कह दिया कि साधु-महात्माओंका दर्शन करना हो तो गोरखपुरके गीताप्रेस जाओ। इतना सुनते ही मैंने मन-ही-मन तय किया कि पहले गीताप्रेस ही जाना है। गोरखपुर स्टेशनपर उतर कर मैं सीधे गीताप्रेस पहुँचा। यह बात सन् १९३३ के अगस्त मासकी है। तब गीताप्रेसका रूप बहुत छोटा था। उन दिनों शायद चार-पाँच ट्रेडिल मशीनें मात्र थीं। वहाँ मुझे मिले श्रीगंगा बाबू, जो सादगी-सेवा-सरलता-समर्पणके मूर्तिमान स्वरूप थे। उनके सादे वेषको देखकर कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता था कि आप गीताप्रेसके प्रमुख व्यक्तियोंमें से एक हैं। मैंने उनसे कहा— मैं तो संतोंका दर्शन करनेके लिये गीताप्रेस आया हूँ।

उदार-हृदय श्रीगंगा बाबूजीने कहा— आप पहले स्नान करके भोजन तो कर लें, फिर आप जिस उद्देश्यसे आये हैं, उसकी भी पूर्ति होगी।

ज्यों ही मैं स्नान-भोजनादिसे निवृत्त हुआ, पूज्य श्रीभाईजी (नित्य वन्दनीय प्रातः स्मरणीय परम पवित्रात्मा श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) गीताप्रेस पहुँचे। हम दोनोंकी आँखोंके चार होते ही सहज स्नेहके एक ऐसे उद्रेकका उद्भव हुआ कि उन्होंने मुझे अपने आलिंगनमें कसकर ले लिया। यह पस्परालिंगन ऐसा था कि मेरा अंग-अंग रोमांचित हो उठा।

मानव पूर्व जन्मके संस्कारोंसे प्रेरित होकर व्यवहार जगतमें क्रियाशील होता है। अलग-अलग परिवारोंमें जन्म होनेपर भी देखा जाता है कि एक व्यक्तिका दूसरेके प्रति सहज आकर्षण होता है। इसका हेतु यही है कि पूर्व जन्ममें वह अवश्य अपना सगा-सम्बन्धी रहा है। भावी जीवनमें श्रीभाईजीसे मेरे सम्बन्धका जो स्वरूप रहा, उसके आधारपर मैं अनुमान करनेको बाध्य हूँ कि वे पूर्व जन्ममें अवश्य ही मेरे कोई आत्मीय रहे होंगे। इस प्रथम मिलनके बादसे मेरा उनका स्नेह-सम्बन्ध सदैव अक्षुण्ण रहा। यहींपर एक तथ्य और भी स्पष्ट रूपसे मैं स्वीकार करता हूँ कि इस मिलनके बादसे मेरे जीवनके सुसंस्करणका शुभारम्भ हुआ।

[२] साधनामें सँभाल

गीताप्रेसमें प्रथम दर्शन होनेके बाद मैं श्रीभाईजीकी छत्र-छायामें रहने लगा। इन दिनों श्रीभाईजी गोरखनाथ मन्दिरके पास वाले बगीचेमें रहा करते थे। मुझ अल्हड़ अज्ञानी और भूलभरे शिशुको उन्होंने अपने वात्सल्य-स्नेहसे पाला-पोसा। मेरी भूलोंको सुधारनेमें उनकी अहैतुकी कृपा जिस प्रकार एकरस बरसती रही, उसे मैं कभी भूल नहीं सकता। भगवानकी ओर मेरी रुचि बढ़ानेमें उन्होंने जो साधन मेरे लिये प्रस्तुत किये, क्या कोई सगा-सम्बन्धी भी वैसा करेगा? अपने अनूठे अनुभवोंद्वारा मुझमें भगवद्भक्तिकी लालसा बढ़ायी और मुझ गँवारको परिष्कृत करनेमें तीर्थरूप श्रीभाईजीने कोई कमी नहीं की।

श्रीभाईजी उन दिनों खादीके बड़े मोटे कपड़े पहना करते थे। भोजन बड़ा सादा होता था। थालीमें दाल-शाक-रोटी आदिके रूपमें अधिक-से-अधिक तीन या चार वस्तुएँ रहा करती थीं। मिर्च-खटाई-चटपटेपनका तो नाम भी नहीं था। यहाँ साथ रहनेवालोंका जीवन साधनात्मक होता था। सभीने स्वेच्छासे साधनात्मक जीवन स्वीकार किया था। सभी साधना-डायरी रखते थे। मनमें कोई विकृति आती तो उसे डायरीमें लिखना होता था। श्रीभाईजी कहा करते थे कि विकृतिके आते ही भगवानका स्मरण और हरिनामका जप करो। साधनाके नियमोंका पालन कठोरतापूर्वक करना होता था।

यह कठोर साधना हम लोगोंको कभी भी कठोर नहीं लगी। वस्तुतः साधनाकी कठिनता तनिक भी ध्यानमें आयी ही नहीं। यह केवल इसीलिये कि हमारे बीच एक पूर्ण विकसित फूल था। उस खिले हुए फूलकी सुगन्ध इतनी मोहक और मादक थी कि कठोरता और कठिनताका आभास तक नहीं हो पाया। यह विकसित फूल था श्रीभाईजीका वह मधुमय व्यक्तित्व, जिसका निर्माण हुआ था सम्मोहन मन्त्रके मृदुल अक्षरोंसे।

बगीचेमें प्रतिदिन भगवन्नामका सामूहिक संकीर्तन हुआ करता था। मैंने श्रीभाईजीको संकीर्तनमें नृत्य करते हुए देखा है। उस नृत्यका भाव और प्रभाव विचित्र होता था। जिस कमरेमें यह कीर्तन होता था, उसके कपाट बन्द कर दिये जाते थे। विलम्बसे आनेवालोंको कमरेमें प्रवेश नहीं मिल पाता था, अतः सभीका प्रयास रहता था कि समयसे पूर्व ही संकीर्तन-कक्षमें पहुँच जायें। कमरेमें भावभरे आह्लादकारी संकीर्तनको देखकर यही लगता मानो श्रीगौरांग महाप्रभुका हरिनाम-संकीर्तन पुनः गोरखपुरमें अवतरित हो उठा है।

बगीचेका वातावरण बड़ा अलौकिक था। उस वातावरणमें आध्यात्मिकता-सात्त्विकता-सेवापरायणताके सशक्त परमाणु व्याप्त थे। उस वातावरणके सम्पर्कमें आनेवाले और बगीचेमें सदा रहने वाले, सभी लोगोंको उन परमाणुओंकी दिव्यताकी अनुभूति होती थी। सच बात यह है कि श्रीभाईजीका दिव्य व्यक्तित्व उस वातावरणपर छाया हुआ था। उस वातावरणका ही प्रभाव था कि मुझमें भजन करनेका चाव जगा और मैं श्रीभाईजीसे आज्ञा लेकर श्रीअयोध्या धाम आ गया।

मैं अयोध्यामें अपने गुरूदेव परम पूज्य परमहंस श्रीराममंगलदासजी महाराजके पास रहता अवश्य था, पर वहाँ भी श्रीभाईजीकी छाया मुझे सदा प्राप्त रही। श्रीभाईजी सदा मेरा समाचार मँगवाते रहते थे और हर प्रकारसे मेरी सँभाल करते रहते थे। श्रीभाईजीकी वह आत्मीयता क्या कभी भुलायी जा सकती है ? उसे स्मरण करके हृदय कृतज्ञतासे भर जाता है।

[३] उन्होंने परौठे बनाये

मैं अयोध्यामें अपने परम पूज्य गुरूदेव महाराजके पास सात वर्षों तक रहा, परंतु समय-समयपर गोरखपुर जानेका कार्यक्रम बन ही जाया करता था। श्रीभाईजीके प्यारका आकर्षण था ही ऐसा। कभी श्रीभाईजी मुझे बुला लेते और कभी मैं स्वतः पहुँच जाता। उनकी संनिधिका अर्थ ही था स्नेह-सिन्धुमें संतरण।

एक प्रसंग लिख रहा हूँ। यह प्रसंग देखनेमें भले छोटा-सा हो, परंतु इसके माध्यमसे उनके वात्सल्यपूर्ण स्नेहकी अनूठी झाँकी देखनेको मिलती है। घटना सम्भवतः अक्टूबर सन् १९३७

की है, मुझे गोरखपुरसे अयोध्या जाना था। ट्रेन प्रातःकाल सात बजे छूटती थी। मैं छः बजे नहा-धोकर उनके पास विदाई लेनेके लिये पहुँचा तो एक विचित्र दृश्य देखकर मुझे बड़ा विस्मय हुआ। घरके आँगनमें बैठे हुए एक अँगीठीपर वे स्वयं अपने हाथोंसे परौठे बना रहे थे। घरमें बेटी सावित्रीकी माँ थी, इतना ही नहीं अनेक सेवक भी थे, यह सब होनेपर भी वे स्वयं परौठे क्यों बना रहे हैं। इस बातका मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। मैंने उनसे पूछा– भाईजी ! यह आप क्या कर रहे हैं ?

कितना मीठा उत्तर था उनका ! उसे स्मरण करके भी आँखें सजल हो उठती है और पुलकावली छा जाती है। उन्होंने कहा– तुम्हें जाना है न ! इतने प्रातःकाल किसको जगाता, किसको उठाता ? मैंने सोचा कि मैं ही तुम्हारे लिये प्रातराश बना दूँ। तुम्हें खिलाकर विदा करूँगा तो मुझे संतोष रहेगा।

सचमुच, उनके स्नेहमें कितना अपनापन था, यह भाषामें बतलाया नहीं जा सकता। कहाँ मैं एक अति साधारण स्तरका अकिंचन प्राणी और कहाँ वे स्वयंकी गरिमासे महिमान्वित आध्यात्मिक महापुरुष, किन्तु यह सत्य है कि उस महापुरुषके हृदयमें वात्सल्यका सागर सदा उमड़ता ही रहता था।

[४] पण्डित श्रीनेहरूको कार

सन् १९३६-३७ में गीतावाटिकामें साल भरका अखण्ड हरिनाम संकीर्तन हो रहा था, उस समयकी बात है। पं. श्रीजवाहरलालजी नेहरूको बरहज जाना था। वहाँ एक सार्वजनिक सभामें उनका भाषण होने वाला था। दुर्भाग्यसे बरहज जानेवाली ट्रेन छूट गयी। अब जानेका यही साधन शेष रह गया था कि किराये या मँगनीकी कारसे चला जाय। सम्मान्य बाबा श्रीराघवदासजीने बहुत प्रयत्न किया, पर न तो कहींसे मोटर किरायेपर मिली और न किसीने अपनी मोटर श्रीनेहरूजीके लिये दी। जो भी मोटर देता, वही अँग्रेजी सरकारकी कोप-दृष्टिका भाजन बनता। सरकार द्वारा कारको ही जब्त कर लिये जानेकी आशंका थी।

हारकर बाबा श्रीराघवदासजी गीतावाटिकामें श्रीभाईजीके पास आये और सारी स्थितिका निवेदन करके कहा– हमारी इज्जतका सवाल है। नेहरूजीको बरहज ले जाना बहुत जरूरी है। कहींसे भी मोटर नहीं मिल रही है। आपसे विनम्र प्रार्थना है कि आप मोटरकी व्यवस्था करा दें।

श्रीभाईजी तो सदा दूसरोंकी सुख-सुविधाके लिये सदा तत्पर रहते थे, चाहे उनको बड़ी-से-बड़ी हानि क्यों न उठानी पड़े। श्रीभाईजीने तुरंत अपनी मोटर दे दी, जिसे लेकर बाबा श्रीराघवदासजी चले गये।

पंडित नेहरू उपयुक्त अवसरपर बरहज पहुँच गये। वहाँसे लौटनेके बाद वे गीतावाटिकामें आये तथा श्रीभाईजीके यहाँ जलपान किया। बहुत दिनों बाद श्रीनेहरूजीका पत्र श्रीभाईजीको मिला था, जिसमें उन्होंने गीतावाटिकामें पहुँचने और जलपान करनेका विवरण लिखा था।

श्रीरामप्रसादजी सी. आई. डी. इन्स्पेक्टर श्रीभाईजीके पास प्रायः आते रहते थे। उन्होंने उसी रातको कहा– भाईजी ! आज हमने आपका नाम नोट कर लिया।

श्रीभाईजीने पूछा– कैसे ?

श्रीरामप्रसादजीने कहा– आज आपने पंडितजीको मोटर दे दी।

श्रीभाईजीने कहा— वह तो खुली चीज थी। चोरीकी कोई चीज तो थी नहीं। नाम लिख लिया तो क्या और नहीं लिख लिया तो क्या?

उस समय गोरखपुरमें शायद मिस्टर रोज नामके कलेक्टर थे। उन्होंने कहा था— हमें मालूम है कि श्रीभाईजीने श्रीनेहरूजीको कार दी, पर हम उनपर कोई कारवाही नहीं करेंगे।

श्रीभाईजी ऐसे निर्भीक थे तथा उनका सरकारी अधिकारियोंपर भी इतना प्रभाव था। उस समय सब नेता श्रीभाईजीके पास ठहरते थे, लेकिन उनको कभी किसी कलक्टरने टोका तक नहीं कि आपके यहाँ ये लोग क्यों आते हैं? क्यों ठहरते हैं? क्या बात है? उन्हें विश्वास था कि ये राजनीतिक आदमी नहीं हैं और प्रेमसे सबको ठहराते हैं।

[५] उनका उपदेश और उनका वरदहस्त

श्रीभाईजीकी सन्निधिमें बहुत कुछ सीखनेको मिला, परंतु उनकी एक बात मेरी नस-नसमें समा गयी। श्रीभाईजी कहा करते थे— सर्वव्यापक भगवान सर्वदा हमारे साथ हैं और हमारे परम सुहृद है, फिर हम चिन्तित और भयभीत क्यों हों?

श्रीभाईजीके इस उपदेशसे मेरे मनमें बड़ी ही निश्चिन्तता और निर्भयता समा गयी थी। यही कारण है मैं जीवनमें कई बार कठिन-से कठिन परिस्थितियोंको सहज ही पार कर गया। कलकत्तेमें जब डाइरेक्ट ऐक्शन हुआ, तब श्रीभाईजीने मुझे वहाँ भेजा। बंगालके नोआखालीका कुख्यात काण्ड जगतप्रसिद्ध है। वहाँ अनेक भाइयोंके जान-मालकी हानि हुई और अनेक बहिनोंके शील-संकोचका अपहरण हुआ। अपनी बहिनों एवं अपने भाइयोंके साथ जितना और जैसा अनाचार-अत्याचार हुआ, उससे श्रीभाईजीका हिन्दू-हृदय रो उठा। उनके अश्रुओंकी संतप्तता व्यक्त हो उठी थी कल्याण पत्रिकाके परिशिष्टांकके रूपमें। सरकारने यह परिशिष्टांक तुरंत जप्त कर लिया। श्रीभाईजीने मुझे वहाँ नोआखाली भी भेजा। वहाँ मुझको अकेले नहीं जाने दिया। उन्होंने साथमें भेजा अपने निजीजन श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवाल को। भेजनेमें निमित्त बना गोरखपुरका एक रेलवे कर्मचारी। उसका परिवार नोआखालीमें घिर गया था। वह श्रीभाईजीके पास आकर रोने लगा। उसकी आर्तिसे द्रवित होकर उस परिवारको बचा लानेका कार्य श्रीभाईजीने मुझे सौंपा और प्रभुकृपासे उस उद्धार कार्यमें मुझे सफलता मिली।

श्रीभाईजीने वहाँ चाँदपुर सब-डिविजनमें दंगा पीड़ित लोगोंके लिये ऐसी व्यवस्था की, जिससे उन लोगोंको पुनर्वासमें पर्याप्त सहायता मिल सकी। इसी निमित्तसे मुझे नोआखालीमें नौ-दस महीने सहायता-कार्य करनेका अवसर मिला।

महामना मालवीयजी जब अन्तिम दिनोंमें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में रोग-शय्यापर पड़े थे, मैं नोआखाली जाते हुए चरण-स्पर्श-हेतु उनके पास गया। उनके कमरेके बाहर एकने पूछा— कहाँसे आये हो?

मैंने कहा— गोरखपुरसे, भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके पाससे।

वे सज्जन तुरंत अन्दर गये और महामनासे कहा— एक सज्जन पोद्दारजीके पाससे आये हैं और आपके दर्शन करना चाहते हैं।

उनकी आज्ञा हुई— उन्हें अन्दर बुलाइये।

मैं नतमस्तक उनके चरणोंकी ओर बढ़ा और माथा टेक दिया। महामना मालवीयजीने पूछा— भाईजी ठीक हैं न ? कैसे आये हो ?

मैंने कहा— नोआखाली जा रहा हूँ। भाईजीने लोगोंकी सहायतार्थ वहाँ एक स्थानपर कैम्प खुलवा दिया है।

वे बोले— भाईजी तो हिन्दूधर्मके प्राण है। वे ऐसे पुण्यात्मा हैं, जिनसे हम सबको बहुत बल मिलता है।

मेरे माथेपर उन्होंने अपना हाथ रखा और मैं उनके चरण स्पर्श करके बाहर आ गया।

जो कुछ यत्किंचित् सेवा-कार्य हमारे द्वारा वहाँकी परिस्थितिके मध्य हो सका, उसे देखकर लोग आश्चर्य करते थे। उन आश्चर्य करनेवाले लोगोंको विश्वास करा सकना कठिन हो गया कि श्रीभाईजी जैसे संतके उपदेश एवं आशीर्वादके फलस्वरूप जन-सेवाका वह महान कार्य हो सका, जो हम जैसे साधारण व्यक्तियोंके लिये असम्भव था। इसमें गरिमा मुझ यन्त्रकी नहीं, अपितु उन यन्त्री श्रीभाईजीकी है।

इसी बीच मैं प्रातः स्मरणीय महात्मा गाँधीजीके सम्पर्कमें आया और उन्हें समीपसे जाननेका स्वर्ण-अवसर मुझे मिला। कष्ट-पीड़ित मानवताके आँसू पोंछनेके लिये वे दयार्द्र हो स्वयं कष्ट सहते हुए नोआखाली चले आये थे। पूज्य श्रीभाईजीसे उनका बहुत पुराना परिचय था। हो सकता है, उसी कारण बापूने मुझे अपना स्नेह-भाजन बनाया हो। श्रीभाईजीके बारेमें बापू चर्चा किया करते थे और कहते थे— हनुमान आदमी बहुत बढ़िया है। दीन-दुःखियोंकी सेवामें दत्तचित्त हो, लगा रहता है। भगवानका भक्त है, इसलिये दूसरोंका दुःख वह अपना दुःख मानता है। मैं उसे बहुत वर्षोंसे जानता हूँ, उससे किसीका अनिष्ट नही हो सकता। जब गोरखपुर जाओ, मेरा उसे स्नेह देना।

एक दिन बापू बोले— तुम्हें पता है, जब देवदास गोरखपुर जेलमें बंद था, तब हनुमानने उसकी बहुत देख-भाल की थी। मैं तो निश्चिन्त था कि हनुमान सब देख लेगा।

मैंने अनुभव किया कि श्रीभाईजीका प्रभाव कहाँ-कहाँ और कितना गहरा है।

देश-विभाजनके समय पंजाबमें सब ओर मार-काटकी विभीषिका फैल गयी। मैं नोआखालीसे लौटा ही था कि भयानक घटनाओंके समाचार आकाशवाणी और दैनिक पत्रोंद्वारा आने लगे। बहुत दुःख हुआ, मैं भोजन करते समय रो पड़ता, भोजन बीचमें ही छोड़ देता। जी चाहता कि भाग जाऊँ उन कष्ट-पीड़ित लोगोंमें। एक दिन न रह सका। श्रीभाईजीके चरणकमलोंपर गिरकर प्रार्थना की— मुझे पंजाब जानेकी अनुमति दें।

उनका हृदय भर आया। कौन पिता अपने बच्चेको अग्निमें झोंकेगा ? उन्होंने कहा— अकेले ही जाओगे क्या ?

मेरा क्रन्दन बढ़ा और रोते हुए मैंने कहा— आपने सदैव मुझे एक मन्त्रसे दीक्षित किया है कि मेरे साथ भगवान सदा है और इसको कभी भी न भूलूँ। आशीर्वाद दीजिये कि भगवान मुझे यन्त्रवत् जनता-जनार्दनकी सेवामें लगाये रखें, जिससे मेरा जीवन सफल हो।

श्रीभाईजीने स्नेहभरे हाथको मेरे सिरपर रखा और मैं पंजाबके लिये चल पड़ा। मैं लौकिक

दृष्टिसे सर्वथा साधनहीन था। मार्गमें गोली चली, बम फटे, पर मै किसी प्रकार अमृतसर पहुँच गया। वहाँ भगवानने मुझसे काम लिया, 'मारवाड़ी रिलिफ सोसाइटी' और सरकारी कोषसे मुझे उन दु:खी विस्थापित लोगोंकी सहायताके लिये काफी मदद मिली। मुझे सदैव ऐसा लगता था— जैसे श्रीभाईजी मेरे संग-संग अपना वरदहस्त लिये चल रहे हों। उन्होंने पत्रोंद्वारा मेरा साहस बढ़ाया। सचमुच उनका बल मेरा बल था।

[६] मैं उनका संदेश-वाहक

मुझे श्रीभाईजीका संदेश-वाहक कहा जा सकता है। देशके महान व्यक्तियोंके पास अपने विचारोंको बतलाने-समझानेके लिये श्रीभाईजी कई बार मुझे व्यक्तिगत रूपसे भेजा करते थे। मेरे साथमें रहता था उनका पत्र। जिनके नाम पत्र रहता था, उनको अनेक बातें मौखिक रूपसे बतलानी पड़ती थी, पक्ष-विपक्षकी कई बातें कह करके कथ्य-विषयसे सम्बन्धित कई बातोंको खोल-खोलकर रखना पड़ता था। हिन्दू कोड बिलके समय तो कई बार कई जगह जाना पड़ा था।

सन् १९४८-४९ में हिन्दू कोड बिल सारे भारतमें चर्चाका एक गम्भीर विषय बन गया था। केन्द्रीय सरकार इस बिलको पास करके हिन्दुओंकी समाज-व्यवस्थामें परिवर्तन लाना चाहती थी। उस परिवर्तनके रूपको देखकर श्रीभाईजी बड़े दुखित थे। श्रीभाईजीकी स्पष्ट धारणा थी— भारतकी नवोन्नतिके कर्णधार बनकर जो लोग धारासभामें यह हिन्दू कोड बिल ला रहे हैं, उन्होंने ऋषियोंद्वारा प्रणीत हिन्दू शास्त्रोंको देखा नहीं है और वे लोग पाश्चिमात्य संस्कृति और सभ्यताके बहकावेमें आकर बिना समझे-बूझे हिन्दू जातिका विनाश करनेमें तत्पर हो रहे हैं। प्रस्तावित 'हिन्दू कोड' हिन्दू जाति और सनातन धर्मपर क्रूर प्रहार है।

सन् १९४९ में जब कानून मंत्री डा. अम्बेडकर महोदयने बिलको कानूनका रूप देनेके लिये धारा-सभामें उपस्थित कर दिया तो हिन्दू समाजकी भावी हानिकी कल्पना करके श्रीभाईजीका हृदय कराह उठा। श्रीभाईजीके आन्तरिक विचार यही थे कि यह कोड हिन्दुओंकी शास्त्रीय समाज व्यवस्थाके सर्वथा विरुद्ध है। यदि यह कानून बन गया तो हिन्दुओंकी परम्परागत धार्मिक सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाका मूलोच्छेद हो जायेगा और सारा समाज दुखी हो जायेगा। इससे हिन्दुओंका सुखी जीवन सदाके लिये संतप्त बना दिया जायेगा।

उन दिनों श्रीभाईजी 'कल्याण' के माध्यमसे हिन्दू कोड बिलका प्रबल विरोध कर रहे थे। स्वयं लिखते थे और लेखकोंके लिखे हुए लेखोंको छापते थे। इतना ही नहीं, श्रीभाईजीने जगह-जगह मुझे भेजा। अजातशत्रु डा. राजेन्द्रप्रसाद, पण्डित गोविन्द वल्लभ पंत, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन, डा. कैलाश नाथ काटजू, श्रीहृदय नारायण कुंजरू, श्रीचन्द्रभानु गुप्ता इस प्रकार न जाने कितने गणमान्य व्यक्तियोंसे मिलनेका अवसर मुझे मिला।

एक बातसे मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा था। ऐसा कोई भी व्यक्ति नही मिला, जिससे श्रीभाईजीका अति घनिष्ठ और अति निकट सम्पर्क न हो। श्रीभाईजीके परिचय-क्षेत्रके विस्तारको देखकर वस्तुतः आश्चर्य होता था। बाहर जानेपर पता चला कि श्रीभाईजीका आध्यात्मिक व्यक्तित्व उन महान नेताओंके ऊपर भी कितना अधिक छाया हुआ था। जिन-जिनसे मिला, सभीने श्रीभाईजीके संदेशवाहकके नाते मेरी बातें ध्यान पूर्वक सुनी।

सर्वोत्तम होता यदि यह बिल कानून बनता ही नहीं, पर अब इतनेसे संतोष करना चाहिये

कि श्रीभाईजीके इस प्रबल विरोधसे हिन्दू कोड बिल अपने मूल रूपमें पारित नहीं हो पाया और कानूनका रूप प्रदान करनेके पूर्व सरकारको कई स्थानपर उसमें परिवर्तन करना पड़ा। ■

श्रीचन्द्रशेखरजी पाण्डेय

उनकी मधुर छाप

'कल्याण' तथा गीताप्रेसकी जो इतनी अधिक उन्नति हुई है, इसका श्रेय निश्चित रूपसे श्रीभाईजीको ही है। उन्होंने आरम्भमें ही निश्चय किया था कि 'कल्याण'के सम्पादन अथवा ग्रन्थ-प्रणयनके लिये वे एक पैसा भी पारिश्रमिक न लेंगे, भोजन-वस्त्र भी नहीं, 'यह कार्य अवैतनिक है, इसलिये जितना काम सरलतासे हो सके, उतना ही काम करो'— इस प्रकारकी भावना क्षणमात्रके लिये भी श्रीभाईजीके मनमें नहीं आयी। वे घोर परिश्रम करते थे और भोजन-शयनके घंटोंको छोड़कर निरन्तर कार्यरत रहते थे।

'कल्याण'के प्रारम्भिक वर्षोंमें श्रीभाईजीके निवास-स्थानपर बिजली नहीं थी, अतः पंखे नहीं थे। गर्मीमें उत्तर प्रदेशकी विकट गर्मीका अनुमान वही लगा सकता है, जो उन दिनों वहाँ कभी रहा हो। मैं भी सम्पादन विभागमें था। कामके सिलसिलेमें जब-जब मैं श्रीभाईजीके पास गया, मैंने देखा कि उनका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ है, पर वे पसीनेकी ओर तनिक भी ध्यान दिये बिना लिख-पढ़ रहे हैं। आँखोंमें जलन होने लगती तो पासमें रखी कटोरीका पानी आँखोंमें लगा लेते थे।

सचमुच श्रीभाईजी तो, बस, 'भाईजी' ही थे। उनकी सभी बातें विलक्षण थी, अलौकिक थी। कहलाते तो वे श्रीभाईजी थे, किंतु बड़े भाई, संरक्षकके साथ-साथ माताकी ममता और पिताके स्नेहसे भी उनका हृदय परिपूर्ण था। उनके सम्पर्कमें आनेवालोंको यही लगता था, जैसे वह अपने परिवारके परम प्रिय एवं परम आदरणीय व्यक्तिके समीप है।

स्मरण आते हैं मुझे वे दिन, जब 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें काम करते हुए मैं गौरवका अनुभव कर रहा था। कार्य ही लक्ष्य था। कोई निश्चित स्थान नहीं, कोई निश्चित समय नहीं। जीवनमें बस, उतना ही समय आया, जब मैं देश-कालके बन्धनसे परे था। सन् १९४२ की बात है। 'गो-अंक' की तैयारी हो रही थी। एक गुजराती विद्वान, जिनका इस विषयपर अच्छा अधिकार था, बुलाकर रखे गये। वे लेख तैयार करने लगे, परंतु उन्हें हिन्दी ठीक नहीं आती थी, वे गुजराती-प्रधान हिन्दी लिखते थे और वह भी गुजराती लिपिमें। नागरी लिपिका अभ्यास उन्हें बिलकुल न था। आवश्यकता थी, उन लेखोंका प्राञ्जल हिन्दीमें अनुवाद करनेकी। श्रीभाईजी यदि चाहते तो सरलतासे कुछ ऐसे व्यक्तियोंको बुलाकर रख लेते, जिन्हें गुजराती और हिन्दी, दोनों लिपियों एवं भाषाओंका ज्ञान हो, किन्तु अपने सहयोगियोंका विचार करके उन्होंने ऐसा नहीं किया। श्रीभाईजीने हमें बड़े स्नेहसे गुजराती वर्णमाला सिखलायी और उन लेखोंको हिन्दीमें अनुवाद करनेका भार सौंप दिया। अयोग्यतावश हमलोगोंसे इस कार्यमें भूलें होती थी, जिन्हें श्रीभाईजी स्वयं शुद्ध करते थे। इसमें उनका समय एवं शक्ति दोनों लगते थे, पर श्रीभाईजीको इसीमें प्रसन्नता थी। अपने सहयोगियोंके साथ

ऐसा स्नेह-व्यवहार करनेवाले और कहाँ मिलेंगे! यह उनकी आत्मीयताका सांकेतिक निर्देशनमात्र है, वह तो अनुभवकी वस्तु थी। देश-विदेशके असंख्य भाग्यशाली व्यक्तियोंके हृदयपर श्रीभाईजीकी आत्मीयताकी मधुर छाप अंकित है। ■

पं. श्रीशिवनाथजी दुबे

[१] सत्य

बात है कई वर्ष पूर्वकी। उस समय श्रद्धेय श्रीभाईजीकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। मध्यप्रदेशके एक सज्जन उनसे मिलने आये। उन्हें अपने पत्रमें श्रद्धेय श्रीभाईजीने दो सौ रुपये सहायता देनेकी बात लिखी थी। मैंने श्रद्धेय श्रीभाईजीके समीप जाकर उनके आनेका कारण बताया और उनसे यह भी कह दिया कि मुझे स्मरण है कि आपने उन्हें दो सौ रुपये देनेकी बात लिखी थी।

श्रद्धेय श्रीभाईजीने तुरन्त कहा— मुझे तो स्मरण नहीं कि मैंने उन्हें दो सौ रुपये देनेकी बात कभी लिखी थी, पर आप कह रहे हैं तो मैंने अवश्य लिखा होगा। आप दूलीचन्दसे कहकर रुपये दिलवा दें।

रुपये उन्हें दे दिये गये— उस समय जब कि उनकी आर्थिक दशा अत्यन्त दयनीय थी, केवल सत्यकी रक्षाके लिये उन्होंने तत्काल रुपये दे दिये।

[२] दया

अत्युक्ति नहीं, सर्वथा सत्य है कि श्रीभाईजी मूर्तिमान दया थे। किसीका कष्ट देखकर सह लेना उनके वशकी बात नहीं थी। उन दिनों गीतावाटिकामें एक वृद्धा मेहतरानी शौचालय साफ किया करती थी। जाड़ेके दिन थे। मेहतरानी शौचालय साफ करके लौट रही थी और श्रीभाईजी वाटिकामें टहल रहे थे। उसे देखते ही अत्यन्त प्यारसे भोजपुरीमें श्रीभाईजीने उससे पूछा— कहा माई, मजेमें बाटू न ?

मेहतरानीने उत्तर दिया— हाँ बचवा, जीयत हई। आजकल जाड़ा लगत बा बेटा। अब सर्दी ना सहात।

'अच्छा, तनी रुका माई'— ऐसे स्नेह-सने शब्दोंको मेहतरानीसे कहकर श्रद्धेय श्रीभाईजीने तुरन्त एक कम्बल और एक धुस्सा (गरम सूती चादर) मँगवाकर उसे दिलवा दिये।

मेहतरानीने गद्‌गद कण्ठसे आशिष दी— जुग-जुग जिया बेटा।

श्रीभाईजी प्रायः कहते— मैं तो सर्वथा अकिंचन हूँ और सबमें परमात्मा विद्यमान हैं। कहींसे कुछ आ जाता है तो उनकी वस्तु उनको समर्पित कर देता हूँ। 'तेरा तुझको सौंपते का लागे है मोर', पर जब इसमें मेरी प्रशंसा होती है तो मैं लज्जासे गड़ जाता हूँ।

[३] परनिन्दा-असहिष्णुता

श्रद्धेय श्रीभाईजी अपने प्रवचनमें प्रायः कहते— *दोष देखने हों तो अपने देखो, दूसरोंके तो गुण ही देखने चाहिये।*

उनके सामने कोई किसीकी निन्दा करे, उन्हें सह्य नहीं था। यही कारण था कि उनके समीप रात-दिन रहनेवाले भी किसीपर अत्यन्त असन्तुष्ट होकर भी श्रीभाईजीके सामने उसकी निन्दा नहीं कर सकते थे। हम सब जानते थे कि इनसे शिकायत करनेपर अपनी ही फजीहत होने लगेगी।

एक बारकी बात है। श्रीभाईजी सत्संगसे उठे तो एक आगन्तुक उनसे भारतके राष्ट्रपति देशरत्न डा. श्रीराजेन्द्रप्रसादजीकी चर्चा करने लगे। श्रीभाईजीने श्रीराजेन्द्र बाबूकी बड़ी प्रशंसा की। इसपर उक्त सज्जनने कहा— आप डाक्टर साहबको नहीं जानते भाईजी, उन्होंने एक. . . ।

वे श्रीराजेन्द्र बाबूके चरित्रपर लाञ्छन लगाना चाहते थे और यह श्रीभाईजीके स्वभावके सर्वथा विपरीत था। उन्होंने उक्त सज्जनका वाक्य पूरा होनेके पहले ही उत्तर दे दिया— एक डिठौना रहना चाहिये, नहीं तो उनमें इतने सद्गुण हैं कि नजर लग जायेगी।

वे सज्जन आगे नहीं बोल सके, चुप हो गये।

परदोष-दर्शन तो दूर, किसीकी निन्दा भी सह लेना आपके वशकी बात नहीं, किन्तु अपना दोष बतानेवालेका उपकृत होना, उसका आभार स्वीकार करना इनका सहज गुण ही नहीं, स्वभाव भी है। बहुत वर्ष पूर्व आपको अपने एक मित्रके द्वारा सूचना मिली कि किसीने एक पुस्तकमें इनकी कुछ आलोचना की है। आपने उक्त मित्रको तुरन्त लिखा— आपके कथनानुसार पुस्तकमें यदि मुझपर कटाक्ष किये गये हैं तो इसमें आपत्तिकी कौन-सी बात है? यदि आलोचकने कोई सच्चा दोष दिखलाया होगा तो वह मुझपर उसका उपकार ही मानना चाहिये।. . . . . यदि उसने कहीं अनुचित और मिथ्या आक्षेप किया हो तो बेचारा भ्रममें है। परमात्मा उसकी भ्रम-भरी बुद्धिको शुद्ध करें।

[४] प्रेम-व्यवहार

डा. मुहम्मद हाफिज सैयद प्रयाग विश्वविद्यालयके दर्शन अध्यापक थे। हाफिज साहब भगवान श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे। अपने घरपर श्रीकृष्णका एक भव्य चित्र रखते थे और चन्दन-पुष्प, धूप-दीपसे बड़े भावके साथ उसकी पूजा करते थे। एक बार श्रीभाईजी प्रयाग गये थे, तब हाफिज साहब अपने इष्टदेवके दर्शन करानेके लिये उन्हें अपने घर ले गये। भगवान श्रीकृष्णके नाते हाफिज साहबके साथ श्रीभाईजीकी बड़ी ही आत्मीयता थी। हाफिज साहब 'कल्याण' एवं 'कल्याण-कल्पतरु' के लिये लेख बराबर लिखते थे। उन लेखोंमें भारतीय दर्शन, धर्म एवं संस्कृतिके प्रति उनका प्रगाढ़ प्रेम दर्शनीय है।

एक बार हाफिज साहब गोरखपुर पधारे। श्रीभाईजीके घरपर ही वे ठहरे। भाईजीने बड़े स्नेहसे उनका आतिथ्य किया। अतिथि भगवानका स्वरूप होता है, फिर वे तो भगवान श्रीकृष्णके भक्त थे, अतएव उनके प्रति ममत्व होना स्वाभाविक था। हाफिज साहबने आग्रह किया— आज आपके पास बैठकर आपके इष्टदेवका प्रसाद लूँगा।

श्रीभाईजीने भगवानके भोगके लिये विशेष व्यवस्था करवायी। भोजनका समय हुआ। बरामदेमें पास-पास दो कम्बलके आसन लगाये गये और सामने काठके बने पीढ़े रखे गये। दोनोंके लिये स्टीलकी थाली-कटोरीमें प्रसाद परोसकर आया। श्रीभाईजी बड़े प्रेमसे

पूछ-पूछकर उनको खिला रहे थे तथा स्वयं भी प्रसाद पा रहे थे। हाफिज साहब श्रीभाईजीकी आत्मीयतासे आप्यायित थे।

प्रसाद ग्रहण करनेके पश्चात् तौलियासे हाथ पोंछते हुए नेत्रोंमें आँसू भरकर डा. सैयद हाफिजसाहबने श्रीभाईजीसे कहा— मुसलमानोंके सबसे बड़े शत्रु तुम हो।

श्रीभाईजीने पूछा— वह कैसे ?

डा. सैयद हाफिजसाहबने कहा— यदि तुम्हारी तरह सब हिन्दू हो जायँ तो भारतमें मुसलमानोंके दर्शन भी न हों।

कुछ दिनों बाद जब श्रीभाईजी गीता-भवन, (स्वर्गाश्रम) सत्संगके लिये गये, तब सैयद साहब भी वहाँ पहुँचे। मैंने देखा श्रीभाईजीने उन्हें अत्यन्त सम्मानपूर्वक अपने समीप, जहाँ कई संन्यासी महात्मा बैठे थे, बैठाया। श्रीभाईजीके अनुरोधपर डा. सैयद हाफिज साहब श्रीमद्भगवदगीतापर लगभग एक घंटा बोले भी।

[५] गोवध-विरोधी आन्दोलनके सेनानी

धर्मप्राण श्रीभाईजी गायोंकी रक्षा एवं अकाल-पीड़ित गो-वंशकी सेवा करनेमें अपनी ओरसे कुछ उठा नहीं रखते थे। 'गो-वध-विरोधी आन्दोलन'के समय उन्होंने जिस तत्परता, लगन एवं कुशलतासे आन्दोलनके लिये अर्थ-व्यवस्था की तथा आन्दोलनके संचालनमें सहयोग दिया, उससे सभी धर्माचार्य एवं गो-प्रेमी परिचित हैं। यहाँ मैं उनके कुछ पत्रोंके कुछ अंशमात्र दे रहा हूँ—

पूज्य विनोबाजीके पत्रमें भाईजीने लिखा था— *यह सर्वथा स्वीकृत है कि गायोंके साथ हिन्दूका आत्मा और प्राणका सम्बन्ध है। आज यदि पूज्य बापूजी होते तो इस प्रकारके आन्दोलनकी कोई आवश्यकता ही नहीं होती, इससे पहले ही सर्वथा गोवंशका वध बन्द हो जाता। अब तो आपपर ही सबकी आँख लगी है। आप संत है और गायके सम्बन्धमें आपने यहाँतक कह दिया था कि 'भारतमें गो-वध बन्द नहीं होगा तो क्रान्ति हो जायगी' भारतमें गो-वध सर्वथा बन्द हो जाय- इसी उद्देश्यसे आपसे करबद्ध प्रार्थना कर रहा हूँ। . . .*

श्रीजयप्रकाशनारायणको श्रद्धेय श्रीभाईजीने लिखा था— *आप गोवधका सर्वथा निवारण चाहते हैं, यह मेरा विश्वास है। देशमें बहुत बड़े-बड़े साधु-महात्मा गोवध निवारणार्थ प्राण-त्याग करनेके लिये तैयार हो गये हैं। . . . अतएव मैं आपसे साग्रह अपील करता हूँ कि आप अपने प्रभावसे केन्द्रीय सरकारद्वारा आवश्यक हो तो संविधानमें उचित परिवर्तन करके तुरन्त सर्वथा गो-वंशके वधका निषेध करनेकी घोषणा करवा दें।*

श्रीगुलजारीलालजी नन्दाके पत्रमें श्रीभाईजीने लिखा था— *स्व. सम्मान्य श्रीशास्त्रीजीसे मेरी व्यक्तिगत बात हुई थी और उन्होंने यह कहा था कि मेरे नामका प्रचार तो नहीं करना चाहिये, पर मैं स्वयं गोवधसे दुःखी हूँ और मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिसमें अगले सालतक गोवध सर्वथा कानूनन बन्द हो जाय। इसके लिये संविधानमें परिवर्तन करना होगा तो वह भी किया जायगा। हमारा दुर्भाग्य है कि श्रीशास्त्रीजीका अकस्मात् देहावसान हो गया। . . पता नहीं क्यों, मेरा ऐसा दृढ़ विश्वास है कि और देशोंकी बात चाहे जो हो, पर भारतवर्षमें जबतक रक्तकी एक भी बूँद गोवधके द्वारा गिरती रहेगी, भारतका और भारतवासियोंका कल्याण और सुख-साधन*

नहीं होगा।. . .

इस प्रकार श्रद्धेय श्रीभाईजीने गो-वंशकी रक्षाके लिये अकेले जितना सहयोग प्रदान किया, उतना अनेक व्यक्तियों एवं संस्थाओंके सम्मिलित प्रयत्नसे भी सम्भव नहीं हो सका।

[६] सफल सम्पादन

'कल्याण'के विशेषांकों एवं साधारण अंकोंको देखकर सुविज्ञ पाठक स्वयं निर्णय कर सकते हैं कि श्रद्धेय श्रीभाईजीमें सम्पादन-कला कितनी उच्च कोटिकी थी। उनकी लेखनीमें माधुर्य था, रस था, पर वह लेखनी देश और धर्मपर आँच आनेपर आग भी उगल सकती थी। पूर्व बंगके नोआखाली जनपदमें निरीह हिन्दूओंपर भीषण अत्याचार हुए। उसे वृद्धावस्थामें सह न सकनेके कारण वन्दनीय मालवीयजी चल बसे। उनके श्राद्धोपलक्षपर श्रद्धेय श्रीभाईजीने 'कल्याण'का एक विशेष अंक प्रकाशित किया, उसके मुख्य पृष्ठपर शंख एवं कोड़ेका चित्र था। पूरा अंक श्रीभाईजीने स्वयं लिखा था, पर उक्त सत्य तथ्यको सह न सकनेके कारण भारत सरकारने उक्त अंक जप्त कर लिया।

'कल्याण'में लेखोंको सुधारकर, उनके क्रम बैठाकर और सुन्दर लेख लिखकर ही उन्होंने सम्पादनमें सफलता नहीं प्राप्त की थी, अपितु 'कल्याण' जैसे पवित्र पत्रके सर्वथा अनुकूल, ऋषितुल्य उनका जीवन था।

'कल्याण'के लेखकोंका वे बड़ा सम्मान करते थे और प्रत्येक रीतिसे सन्तुष्ट रखते थे। अपने कार्यमें सहयोग देनेवालोंको वे सदा प्रोत्साहन देते रहते थे। यहाँ मैं उनके दिनांक ३-६-६८ के गीताभवन, स्वर्गाश्रमसे लिखे पत्रका कुछ अंश उद्‌धृत कर रहा हूँ, जिससे उनके अपने सहयोगियोके प्रति भाव एवं उनकी उस समयकी मानसिक स्थितिकी सहज ही कल्पना हो सकती है। उन्होंने लिखा था—

प्रिय श्रीदुबेजी,

सादर प्रणाम।

आपके पत्र मिल गये थे। सूची ठीक करके 'कल्याण'में प्रकाशनार्थ भेज दी है। आपने बड़ा ही परिश्रम किया। पू. श्रीगोपीनाथ कविराजजीका तो परम अनुग्रह है ही। विशेषांककी सूची छपनेको तो भेज दी है, पर आजकल मेरे मस्तिष्ककी जो स्थिति है और जो उत्तरोत्तर बढ़ रही है, उसे देखते सम्पादनका कार्य मैं कर सकूँगा, यह नहीं कहा जा सकता। प्रतिदिन ही पाँच-सात घंटे बाह्य चेतना सर्वथा लुप्त रहती है। चेतनाके समय भी बार-बार यहाँका सब कुछ लुप्त होता रहता है। पता नहीं, क्या होता है? कामकाज प्रायः बन्द है।. . . मैं तो अधिक समय बन्द रहता हूँ।

श्रीभगवानमें उनकी तन्मयता उस स्थितिमें पहुँच गयी थी कि उन्हें प्रायः बाह्य-विस्मृति रहने लगी थी। उस स्थितिमें मैंने 'कल्याण'के लिये उनके पास 'कः पन्थाः' शीर्षक एक लेख भेजा था। उक्त लेखमें अनेक घटनाओंके साथ लिखा गया था कि बुढ़ापेसे आक्रान्त होनेपर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इनमेंसे किसीका भी साधन नहीं कर सकता। इसलिये युवावस्थामें ही धर्मका आचरण कर लेना चाहिये।

'कल्याण'में जब मैंने अपना लेख देखा, तब आश्चर्यचकित रह गया। अत्यधिक व्यस्तता,

अस्वस्थता एवं प्रभु-तल्लीनताकी उच्चतम अवश स्थितिमें जब उनकी बाह्य चेतना प्रायः लुप्त होती रहती थी, वे सम्पादन-कार्यमें कितने सजग रहते थे और अपने सिद्धान्तपर किस प्रकार दृढ़ रहते थे, यह उनकी जोड़ी हुई पंक्तियोंसे स्पष्ट हो जाता है। मेरे उक्त लेखके अन्तमें श्रद्धेय श्रीभाईजीने इतना अपनी ओरसे लिख दिया था—

भक्तराज प्रह्लाद तो युवावस्थाकी प्रतीक्षा भी नहीं करना चाहते। वे अपने बालक बन्धुओंसे कहते हैं— इस संसारमें मानव-जन्म दुर्लभ है। इसीमें परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है, पर पता नहीं इसका कब अन्त हो जाय, इसलिये बुद्धिमान पुरुषको बचपनमें ही भागवत धर्मका आचरण कर लेना चाहिये—

कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थमद्।। (श्रीभागवत/७/६/१)

'आप मेरी आत्मा और मेरे प्राण हैं'— एक बार आवेशमें इस वाक्यका प्रयोग श्रद्धेय श्रीभाईजीने मेरे लिये किया था और श्रीभाईजीके अन्य स्वजनोंकी भाँति मेरा हृदय भी कहता है— 'भाईजी मेरे थे और मेरे हैं'।

'श्रीभगवान एवं उनके भक्तोंके चरित्रके अतिरिक्त सांसारिक चर्चासे बचना चाहिये'— श्रद्धेय श्रीभाईजी कहते थे और इस लेखके द्वारा निश्चय ही मैंने भक्त-गुण-गान कर समयका सदुपयोग एवं श्रीभाईजीकी ही आज्ञाका पालन किया है।

उन्हींके मतलबकी कह रहा हूँ, जबान मेरी है, बात उनकी।
उन्हींकी महफिल सँवारता हूँ, चिराग मेरा है रात उनकी।
फकत मेरा हाथ चल रहा है, उन्हींका मतलब निकल रहा है।
उन्हींका मजमूं, उन्हींका कागज, कलम उन्हींका, दवात उनकी।

■

श्रीरामलालजी श्रीवास्तव

[१] सत्संगकी मर्यादा

घटना सम्भवतः १९३५ ई. की है। गीतावाटिकामें कोठीके बाहरी बरामदेमें प्रतिदिनकी तरह श्रीभाईजी सत्संगमें प्रातःकाल आठ बजे प्रवचन कर रहे थे। बगीचेके बाहरी फाटकके सामने सड़कपर एक अँग्रेज साहबने घोड़ेकी लगाम रोक ली। वे नित्य सबेरे घोड़ेपर सवार होकर टहलने निकला करते थे। वे बगीचेमें तो नहीं आये, पर शान्त भावसे चार-पाँच मिनटतक ठहरकर सत्संगके वातावरणका आनन्द लेकर चले गये। श्रीभाईजीका प्रवचन चलता ही रहा। सत्संग समाप्त होनेपर पता चला कि घोड़ेपर सवार अँग्रेज साहब गोरखपुर मण्डलके आयुक्त कमिश्नर श्रीहोबर्ट थे।

श्रीभाईजीने उनको उसी दिन पत्र लिखा— मैं जानता था और मैंने देखा कि आप फाटकके निकट ही घोड़ेपर सवार रहकर सत्संगके प्रति ध्यानमग्न थे, पर हमारे शास्त्रोंमें सत्संगकी यह मर्यादा है कि बीचमें न उठा जाय और न किन्हीं सज्जनके सत्संगके बीचमें उपस्थित होनेपर

उनसे बात की जाय। आशा है, आपके मनमें किसी भी तरहका विचार न होगा।

श्रीहोबर्ट साहबने श्रीभाईजीका पत्र पढ़ा और वे बहुत प्रभावित हुए। ऐसे भी वे पूर्वाञ्चलमें हिन्दू धर्म और सभी सम्प्रदायके संत-महात्माओंके प्रति अपनी सद्‌भावना और उदार दृष्टिके लिये प्रख्यात थे। मगहरमें कबीरकी समाधि-स्थलीसे सटे आमी नदीके तटपर एक शिव-मन्दिरके निर्माणमें भी उनका योगदान बड़ा सराहनीय रहा है। वे इस घटनाके बाद श्रीभाईजीसे कभी-कभी मिलकर अध्यात्म, धर्म तथा संस्कृतिपर बात किया करते थे।

[२] आत्मश्रेय

श्रीभाईजीने सदा अपने जीवनमें आत्मश्रेयका ही वरण किया। श्रेय और प्रेय दोनों ही मनुष्यके सामने आते हैं। सद्‌विवेकी उन दोनोंके स्वरूपपर विचार करके परम कल्याणके साधन आत्मश्रेयको ही महत्त्व देता है। जो मन्द बुद्धिवाला है, वह भोग और विषय सुखके पीछे भ्रमित और सम्मोहित रहता है।

सन् १९३६ ई. का प्रंसग है। उत्तर प्रदेश (तत्कालीन संयुक्त प्रान्त) के गवर्नर सर मालकम हेलीके इंगलैण्ड जानेके बाद सर हैरी हेग उनके उत्तराधिकारी हुए। सर हेगकी दृष्टिमें श्रीभाईजी बड़े ही सम्मानित व्यक्ति थे। उन्होंने श्रीभाईजीको सूचित किया— मैं आपको 'सर' की उपाधिसे सम्मानित करनेके लिये वाइसरायको लिखना चाहता हूँ।

यह उपाधि ब्रिटिश साम्राज्यमें बड़े गौरवकी बात समझी जाती थी। श्रीभाईजीने विनम्र उत्तर लिखकर भेज दिया 'सर' की प्रस्तावित उपाधिके लिये मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ, पर मुझे इसकी तनिक भी न आवश्यकता है और न मनमें इसके प्रति किसी भी तरहकी आसक्ति है। मैं क्षमा चाहता हूँ।

सर हैरी हेग श्रीभाईजीके नकारात्मक उत्तरसे चकित हो गये। इस उपाधिके लिये भारतके बड़े-बड़े राजा-महाराजा और श्रेष्ठ विद्वान तरसा करते थे। सर हैरी हेगने मन-ही-मन श्रीभाईजीकी त्याग-वृत्ति और पारमार्थिक जीवनकी बड़ी सराहना की।

सर हैरी हेगसे एक बार इलाहाबादमें भेंट होनेपर श्रीभाईजीने उनसे पूछा था— आप 'सर' की उपाधिसे सम्मानित होने वालोंको क्या समझते हैं?

गवर्नर सर हैरी हेगने बताया— इस उपाधिको हम कुत्तेके गलेमें सोनेका पट्टा समझते हैं।

भगवानकी कृपासे 'सर' की बला श्रीभाईजीके सिरसे टल गयी। कितने आत्म-विवेकी थे वे!

[३] अयाचित सहायता

श्रीभाईजीसे उनके कमरेमें जाकर श्रीनागरमलजी अजीतसरियाकी धर्मपत्नीने पूछा— भाईजी! आपके कमरेसे सिसकते हुए कौन सज्जन अभी-अभी निकलकर बाहर गये हैं।

वे कलकत्तेसे राजस्थान जा रही थीं। उन्होंने सुना था कि दिल्लीमें श्रीभाईजी बीमार हैं। वे उन्हें देखने आयी थीं।

श्रीभाईजीने उन सज्जनकी विवशता बतायी— ये बड़े दुखी हैं। इन्होंने अपनी लड़कीके गहने सत्ताइस सौ रुपयोंमें बन्धक रख दिये हैं। लड़कीको ससुराल जाना है। बड़ी चिन्तामें पड़

गये हैं। रुपयोंका कोई प्रबन्ध है नहीं।

श्रीनागरमलजीकी धर्मपत्नीने कहा— मैं कलकत्तेसे किसी अच्छे काममें लगानेके लिये ठीक इतने ही रुपये लेकर चली हूँ। इससे अच्छा दूसरा काम क्या हो सकता है ?

भगवत्कृपासे प्राप्त इस आकस्मिक और अयाचित सहायतासे उन दुखी भाईकी बात बन गयी। उनका हृदय सद्भावनासे भर उठा। यद्यपि यह घटना बहुत समय पहलेकी है, तथापि सम्भवतः १९६४-६५ ई. के मध्य एक दिन सत्संगमें श्रीभाईजीने इस प्रसंगका उल्लेख करते हुए कहा था— जो लोग दूसरोंके हित और दुःख दूर करनेमें तत्पर रहते हैं, भगवानके विधानसे अयाचित दैवी सहायता पहलेसे उनके लिये सुनिश्चित रहती है।

[४] प्लेटफार्मका टिकट

संत-महात्मा, वैष्णव जन स्वभावसे ही सरल होते हैं। सादगी बाहरसे नहीं आती, यह अपने ही भीतर रहने वाली अद्भुत शक्ति है। संतोष और शान्ति तो जीवनकी सच्ची निधि है।

सम्भवतः सन् १९५१ ई. के ग्रीष्म कालकी बात है। उन दिनों पण्डित श्रीगोविन्दवल्लभजी पन्त उत्तर प्रदेश प्रशासनके मुख्य मन्त्री थे। वे एक दिन सबेरेकी आठ बजे वाली गाड़ीसे गोरखपुर स्टेशनपर उतरे। स्वागतमें आये हुए लोगोंकी खासी भीड़ थी। यह मात्र संयोग था कि मैं भी किसी आवश्यक कामसे स्टेशन गया हुआ था। स्टेशनके पोरटिकोमें श्रीभाईजीकी मोटर खड़ी थी। मैंने देखा कि श्रीभाईजी भीतर प्लेटफार्मपर न जाकर वहाँ खड़े थे, जहाँ पहले दरजेका बाहर-भीतर आने-जानेका दरवाजा था। मैं बड़े अचरजमें पड़ गया। मैं समझ गया कि वे श्रीपन्तजीसे मिलने आये हैं। श्रीपन्तजी और उनमें एक-दूसरेके लिय बड़े स्नेह और सम्मानका भाव था, दोनोंमें प्रगाढ़ मैत्री थी। मैंने भाईजीसे कहा— गाड़ी अभी आई है, प्लेटफार्मपर चलिये।

भाईजीने कहा— रामलालजी ! मेरे पास तो प्लेटफार्मकी टिकट ही नहीं है। वाटिकासे चलते समय जेबमें रुपये-पैसे रखनेकी याद ही नहीं थी।

उन्होंने यह बात बहुत सहज सीधे ढंगसे कही। मैं प्लेटफार्मका टिकट लेने वाला ही था कि इतनेमें अनेक शासनाधिकारियों और कांग्रेसी स्थानीय नेताओंसे घिरे हुए पन्तजी पहले दरजेके निकास-द्वारपर आ गये। श्रीभाईजीको देखते ही उन्होंने हाथ जोड़कर सादर प्रणाम किया। बड़े ही विस्मयकी बात तो यह थी कि दोनों-के-दोनों एक-दूसरेका हाथ पकड़े-पकड़े मुस्कुराते हुए एक ही मोटरमें बैठकर डाकबँगले चले गये। लोग देखते रह गये।

[५] अनन्यता

अनन्य वह है, जिसमें अन्यसे किसी भी तरहकी आशा पूरी होनेकी कामना न रह जाय, जिसके सर्वस्व भगवान हों, जिसके बल और आश्रय भगवान ही हों, जिसे भगवानका ही भरोसा हो। श्रीभाईजीकी ऐसी अनन्यताकी अनुभूति उस समय मुझे हुई, जब गीताप्रेस (गोरखपुर) के नवनिर्मित भव्य द्वार तथा गीताप्रेसके ही लीला-चित्र-मन्दिरका उद्घाटन करनेके लिये भारतके प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न श्रीराजेन्द्रप्रसादजीने गोरखपुर आनेके लिये अपनी स्वीकृति भेज दी थी। श्रीराजेन्द्र बाबूकी श्रीभाईजीसे प्रगाढ़ मैत्री थी और बहुत अच्छा आत्मसम्बन्ध था। दोनोंका एक-दूसरेमें दृढ़ विश्वास था। श्रीभाईजीने उन्हें सादर आमन्त्रित किया था। आमन्त्रणके स्वीकृत होते ही सरकारी स्तरपर राष्ट्रपतिके स्वागत-सत्कारकी तैयारी

आरम्भ हो गयी तथा सजावट आदिमें गीताप्रेसकी ओरसे भी प्रचुर धनराशिका सदुपयोग हुआ था। समूचे नगरमें बड़ा उत्साह था। अब दो-चार दिनोंमें ही राष्ट्रपतिका आगमन होने वाला था।

एक दिन गीतावाटिकामें प्रभातकालीन सत्संगमें श्रीभाईजीका प्रवचन समाप्त होते ही किन्हीं सज्जनने पूछा— सुना जा रहा है कि अभी श्रीराजेन्द्र बाबू नही आ रहे हैं। क्या उनके आनेका कार्यक्रम स्थगित हो गया है?

श्रीभाईजीने कहा— हाँ, बात तो कुछ ऐसी ही है। अभी कुछ देर पहले जिलाधीशने मुझे भी फोनपर बताया है कि राष्ट्रपतिजीका निकट भविष्यमें गोरखपुर आना सम्भव नहीं है। उनके कार्यक्रममें परिवर्तन हुआ है।

श्रीभाईजीने बड़ी निःस्पृहता और अनासक्ति पूर्वक यह सब बतलाया था। ऐसा स्पष्ट लगता था कि राष्ट्रपतिके आनेके सम्बन्धमें न उनके मनमें आकर्षण है और न उनके न आनेसे विषाद है। साधारण और असाधारण व्यक्तिके स्वभावमें यही तो विशेष अन्तर है।

दैवयोगसे सात-आठ दिनोंके बाद ही श्रीराजेन्द्र बाबूके गोरखपुर आनेका कार्यक्रम निर्धारित हो गया। वे स्वयं श्रीभाईजीके प्रति इतना अधिक अपनापन रखते थे कि न आनेमें विलम्ब उनके लिये असह्य हो गया और समय निकालकर २९ अप्रैल १९५५ को गोरखपुर पधारकर उन्होंने गीताप्रेसके द्वार और लीला-चित्र-मन्दिरका उद्घाटन किया। मैंने देखा था कि ये दोनों एक-दूसरेसे मिलकर कितने अधिक प्रसन्न और संतुष्ट थे।

श्रीभाईजीका मैंने यह परम प्रसन्न और सन्तुष्ट रूप देखा और वह निःस्पृह तथा अनासक्त रूप भी देखा। अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियोंमें ऐसी सम दृष्टि भगवदनन्य व्यक्तिकी ही हो सकती है। अनन्यता ही श्रीभाईजीके जीवनकी अमूल्य निधि थी। ऐसे लोगोंका लोक जीवन हर्ष और विषादसे परे होता है।

[६] पारस्परिक स्नेह

हिन्दी जगतके महारथी सम्पादकाचार्य पण्डित श्रीलक्ष्मणनारायणजी गर्देका श्रीभाईजी हृदयसे सम्मान करते थे। दोनोंका उसी समयसे ही एक दूसरेके प्रति पारस्परिक स्नेह और सद्भाव था, जब श्रीभाईजी अपनी तरुणावस्थामें कलकत्तेमें रहते थे। बादमें श्रीगर्देजी सपरिवार वाराणसीमें ही रहने लगे और इधर श्रीभाईजी गोरखपुरमें निवास करते हुए 'कल्याण' पत्रिकाका सम्पादन सँभालने लगे। 'कल्याण'के विशेषांकोंके सम्पादनमें तथा ऐसे भी साधारण अंकोंमें योगदानके लिये श्रीगर्देजीको श्रीभाईजी सम्मानपूर्वक गोरखपुर बुलाया करते थे। इस तरह वे बीच-बीचमें वाराणसीसे आकर थोड़े बहुत समयके लिये वे ठहर जाया करते थे।

एक समयकी बात है। उन दिनों मैं सम्पादन विभागमें आ गया था। सम्भवतः सन् १९५५-५७ के बीचकी घटना है। उस समय कुछ लोगोंके आग्रहपर श्रीभाईजीका शामको भी एक घंटे सत्संग चला करता था। मैं सायंकालीन सत्संगमें भी जाया करता था। एक बार श्रीगर्देजी ज्वरग्रस्त हो गये। सम्भवतः १०१ डिग्रीसे अधिक ज्वर रहा होगा। सत्संग पूर्ण होते ही मैं श्रीगर्देजीसे मिलने गया। वे मुझसे बड़ा स्नेह करते थे। वे चारपाईपर लेटे-लेटे धीरे-धीरे मुझसे बात कर रहे थे तभी मैंने देखा कि श्रीभाईजी उनके सिरहाने खड़े थे। उनके एक हाथमें दवा थी,

दूसरेमें दूधसे भरा गिलास।

उन्हें देखकर मैं खड़ा हो गया। ज्यों ही श्रीगर्देजीने श्रीभाईजीको सिरहाने खड़े हुए देखा, त्यों ही वे उठ बैठे और मुस्कराते हुए कहा– घरमें और लोग भी तो हैं। आप कभी-कभी बड़ी ज्यादती कर बैठते हैं।

श्रीभाईजीने विनोदमें कहा– महाराज! यह ज्यादती तो आप जैसे बड़े लोगोंके ही साथका परिणाम है।

श्रीभाईजीने उन्हें दवाई खिलाई और जब दूधका गिलास दिया तो श्रीगर्देजीने मेरी ओर इशारा किया– रामलालजी, आप ही बतायें, हम दोनोंमें भाईजी ही तो बड़े हैं।

मैं क्या कहता? श्रीभाईजीके शब्द थे– महाराज! मुझे स्नेह देते रहिये।

श्रीगर्देजीने कहा– स्नेह तो मुझे चाहिये।

[७] द्वन्द्वातीत

सम्भवतः सन् १९५६-५७ की घटना है। फैजाबादके नगरक्षेत्रमें विधान-सभाकी सदस्यताके लिये उपचुनाव था। उसमें एक प्रत्याशी थे समाजवादी नेता आचार्य श्रीनरेन्द्र देव। उनके विरोधमें त्याग-वैराग्यकी तपोमयी मूर्ति बाबा श्रीराघवदास खड़े थे। बाबाजीके स्नेहपात्र शिष्य श्रीसत्यव्रतजीकी बड़ी इच्छा थी कि श्रीभाईजी एक बार अयोध्या चल चलें और महात्मा श्रीरामपदार्थदास वेदान्ती तथा अन्य प्रभावशाली संत-महात्माओंसे इस उप चुनावमें बाबाजीकी सहायताके लिये संकेत कर दें। श्रीभाईजीने जाना अस्वीकार कर दिया। यद्यपि बाबा श्रीराघवदास कई बार इस अवधिमें उनसे बरहज आश्रमसे गोरखपुर मिलने भी आये थे, परंतु इस सम्बन्धमें श्रीभाईजीसे कुछ नहीं कहा। तथापि सत्यव्रतजीके बार-बार आग्रह करनेपर श्रीभाईजी अयोध्या गये। मेरी भी उनके साथ अयोध्या जाकर संत-महात्माओंका दर्शन करनेकी इच्छा थी, इसलिये मैं भी उनके साथ गया। सत्यव्रतजीके शिष्य श्रीमोहनलालजी देवरियावाले अयोध्यामें ही उन दिनों सपरिवार रहकर भगवानका भजन करते थे। उन्हींके निवास स्थान पहाड़ी कोठीमें श्रीभाईजी ठहरे थे। मैं उनके साथ वेदान्तीजी श्रीरामपदार्थदासके मन्दिरमें गया। मैंने उनसे श्रीभाईजीको बात करते हुए सुना। श्रीभाईजीने बड़ी विनम्रतासे कहा– महाराज! मेरी इच्छा न रहते हुए भी मुझे आना पड़ा। आप लोग जैसा उचित हो कीजियेगा। मेरे लिये तो बाबाजी और आचार्य नरेन्द्र देव, दोनों ही अपने हैं।

शायद पाँच बजेका समय था। श्रीभाईजीने मोटर छोड़ दी, उसमें अन्य लोग पहाड़ी कोठी गये। फिर उन्होंने मुझसे कहा– रामलालजी! चलिये कनक भवन चलें।

मैं और वे पैदल चल पड़े। मैं उनके पीछे-पीछे था। उस समय कनक भवनमें उनके प्रवेश करते ही अनेक संत-महात्मा, जो दर्शन करने आये थे, उनके पास आ गये। अनेक परिचित थे। उनमेंसे अनेक एक-दूसरेसे कह रहे थे– ये 'कल्याण'के सम्पादक श्रीपोद्दारजी हैं। कितने सादे वेषमें हैं!

श्रीभाईजी भगवान श्रीसीतारामका खड़े-खड़े दर्शन करनेमें अत्यधिक तन्मय हो गये। थोड़े समयके बाद वे बोल पड़े– कितने सुन्दर हैं श्रीसीताराम!

वे कुछ और कहना चाहते थे कि उनका गला भर आया। वे वहाँसे चल पड़े। हनुमान गढ़ीतक आते-आते उन्होंने कहा— चलिये नयाघाट चलें। भगवती सरयूकी इस समय आरती होती है। दर्शन कर आयें।

मुझे संकोच हो रहा था। मैंने निवेदन किया— नयाघाट तो बहुत दूर है। टाँगा (घोड़ा गाड़ी) कर लें।

श्रीभाईजीको बात पसन्द नहीं आयी। उन्होंने कहा— पैदल चलेंगे।

आधे घंटेके बाद हमलोग नयाघाट पहुँचे। अब अँधेरा होनेवाला था। वहाँ सरयूजीकी आरती हो रही थी। आरतीका दर्शन कर वे पहाड़ी कोठी आ गये। उस समय उनकी द्वन्द्वातीत अवस्था देखकर मुझे बार-बार श्रीमद्भागवतका श्लोक स्मरण हो रहा था—

प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वन्द्वेषु योजिताः।
न व्यथन्ति न हृष्यन्ति यत आत्मागुणाश्रयः॥

(भागवत/१/१८/५०)

[८] 'जे पीड़ पराई जाणे रे'

सम्भवतः १९५६-५७ ई. की बात है। एक बार श्रीभाईजीके ज्वर-ग्रस्त होनेपर उन्हें गोरखपुरके जाने-माने डाक्टर श्रीलाहिड़ी साहब देखने आये। बात-ही-बातमें उन्होंने कहा— पण्डित गौरीशंकरजी मिश्रकी हालत बहुत चिन्ताजनक है। मैं उन्हें देखने गया था। लम्बे अरसेसे बीमार हैं।

डाक्टर श्रीलाहिड़ी साहबके जाते ही श्रीभाईजीने अस्वस्थ होते हुए भी मुझसे कहा— मेरे साथ चलिये।

किसीने उनसे पूछनेका साहस नहीं किया कि आप इस हालतमें कहाँ जा रहे हैं। रास्तेमें उन्होंने बताया— गौरीशंकरजी मिश्रकी हालत ठीक नहीं है। उनको देखना आवश्यक है।

मोटर बेतियाहाताकी ओर चल पड़ी। पण्डित श्रीगौरीशंकरजी तपे-तपाये कांग्रेसी नेता थे। गाँधीजीके आह्वानपर वकालतपर लात मारकर सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलनमें सम्मिलित हो गये। वे उच्च कोटिके साहित्यकार भी थे। उनके 'जीवन-क्रान्ति', 'बलिदान-मन्दिर' आदि उपन्यास प्रकाशित हैं। बड़े स्वाभिमानी और पुरुषार्थी थे। उन दिनों बेतियाहाता प्रायः जंगल था। अँग्रेजी शासनमें वहाँ जिलाधीश एक बँगलेमें रहता था। धीरे-धीरे दो-चार बँगले बनते जा रहे थे। पण्डित श्रीगौरीशंकरजी मिश्र उसी जंगलके मध्यमें एक शान्त रमणीय उपवनमें एक छोटे-से मकानमें रहते थे। कभी-कभी श्रीभाईजीसे मिलने गीतावाटिका भी आया करते थे। भाईजी उनका बड़ा सम्मान करते थे। श्रीभाईजीकी मोटर सड़कपर ठहर गयी। वे थोड़ी दूर पैदल चलकर मिश्रजीके निवास-स्थानपर आ गये। गोधूलि वेला थी, धीरे-धीरे अंधकार बढ़ रहा था। मिश्रजीके कमरेमें एक दीप मन्द गतिसे जल रहा था। श्रीभाईजीको देखते ही वे चारपाईपर बैठ गये। श्रीभाईजीके संकेतपर वे मसनदके सहारे लेट गये। बड़ा करुण दृश्य था। मिश्रजीके नेत्र अश्रुकणसे बोझिल थे। दो-तीन मिनट तक बात करते रहे। श्रीभाईजीने उन्हें प्रणाम किया, कमरेसे बाहर निकलने वाले ही थे कि मिश्रजी कह पड़े— आप कितने सहृदय हैं, कितने महान हैं!

श्रीभाईजीने दोनों हाथ जोड़ लिये। कमरेसे बाहर निकलते ही मुझसे कहा– रामलालजी, यह लिफाफा तकियेके नीचे रख आइये।

उसे मैंने तकियेके नीचे रखा ही था कि मिश्रजी सिसकने लगे। उनके शब्द अस्पष्ट थे, *'वैष्णव जन तो तेने कहिये . . . '*। मैं कमरेसे बाहर आ गया। भाईजीने रास्तेमें कहा– इस लिफाफेकी गन्ध किसीको भी न लगे।

वैष्णव दूसरेकी पीड़ा समझते हैं, उनको दूर करना उनका स्वभाव है।

[९] संत-मिलन

बंगालके भगवन्नाम-प्रचारक संत महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथजी महाराजने अयोध्या होते हुए गोरखपुर आकर गीताप्रेस देखने और श्रीभाईजीसे मिलनेकी सूचना भेजी। श्रीभाईजीसे उनका बड़ा घनिष्ठ आत्मसम्बन्ध था। दोनोंके हृदयमें एक दूसरेके प्रति अगाध स्नेह और सम्मानका भाव था। वे रेलगाड़ीसे गोरखपुर पधारने वाले थे। श्रीभाईजीने उनके ठहरनेकी व्यवस्था गोरखनाथ मन्दिरमें की थी। स्टेशन पहुँचनेपर उनका तथा उनके साथ पधारे हुए परिकरोंका स्वागत कर उन्हें गोरखनाथ मन्दिर ले जाने तथा उनसे सम्बन्धित व्यवस्थाकी देख-रेख करनेका भार मुझे सौंपा गया था। उन दिनों गोरखनाथ मन्दिरके परिसरमें मठका नव निर्माण चल रहा था। उसमें ऊपर-नीचेके अनेक कमरे बन चुके थे। उत्तरकी ओरका बरामदा बन रहा था। महन्त श्रीदिग्विजयनाथजी महाराज उस समय बाहर गये हुए थे। उनके उत्तराधिकारी श्रीअवैद्यनाथजी महाराजने महात्मा श्रीसीतारामदासजी महाराजका जीपसे बाहर निकलते ही बड़ी सहृदयतासे स्वागत किया। श्रीसीतारामदासजी महाराजके साथ बारह-तेरह सेवक थे। वे सब उच्च कोटिके विद्वान और साधक थे। मैंने देखा श्रीसीतारामदासजी और उनके सभी परिकर श्रीअवैद्यनाथजी महाराजकी प्रबन्ध-कुशलता और व्यवस्थासे बहुत प्रसन्न और प्रभावित थे। गोरखनाथ मन्दिरमें झाँझ और पखावज बजा-बजाकर श्रीसीतारामदासजीके परिकरोंने–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

महामन्त्रके सस्वर गायन द्वारा सम्पूर्ण वातावरणको भगवन्नामकी ध्वनिसे संप्लावित कर दिया।

भोजन आदिके उपरान्त दो जीपोंमें संतमण्डली नाम-संकीर्तन करती हुई गीताप्रेसके मुख्य द्वारपर आ पहुँची। सावनका महीना था। आकाशमें श्याम-श्वेत बादल छाये हुए थे। हलकी-हलकी बूँदें पड़ रही थी। इस सरस रिमझिममें गीताप्रेसके द्वारपर उतरते ही श्रीसीतारामदासजी महाराजने श्रीभाईजीको अपनी भुजाओंमें भर लिया और इसके बाद सड़कके पंकिल बरसाती जलमें श्रीसीतारामजी लोटने लगे। अपार जन समूह यह दृश्य देखकर आश्चर्य कर रहा था। श्रीभाईजीने उन्हें उठाकर अपने अंकसे लगा लिया। इस दिव्य मस्तीका और ऐसे आनन्दोन्मादका रसास्वादन कोटि-कोटि पुण्योंका फल है। श्रीसीतारामजीने श्रीभाईजीसे कहा– आपकी इस तपोभूमिके रजकणकी प्राप्ति मनुष्यको बड़े सौभाग्यसे होती है।

श्रीभाईजीने विनम्र निवेदन किया– आप जैसे संतोंकी चरण-धूलिसे ही ऐसे स्थान पवित्र हो जाते हैं।

[१०] लोकमान्य तिलकका पश्चात्ताप

एक दिन सत्संगमें किसी प्रसंगवशात् लोकमान्य तिलककी बात चल पड़ी। अपने बम्बई-निवास-कालमें श्रीभाईजी लोकमान्य तिलकसे कभी-कभी मिला करते थे। श्रीभाईजीने बताया कि तिलकजी बीमार थे। उनकी हालत चिन्ताजनक थी। अन्तिम समय निकट ही था। मैं उन्हें देखनेके लिये गया। मुझे देखते ही उनके नयनोंमें अश्रु-कण आ गये। तिलकजीके मनमें एक बात बहुत दिनोंसे चुभ रही थी। उनके जीवनमें एक महान भूल हो गयी थी।

श्रीभाईजी द्वारा पूछे जानेपर पता चला कि लोकमान्य तिलकने अपनी पुस्तक 'आर्यन' किंवा 'आर्कटिक होम आफ दि वेदाज' (वेदोंकी प्रणयन-भूमि आर्कटिक) में यह सिद्ध किया था कि आर्योंका आदि देश आर्कटिक प्रदेश है। ऋग्वेदमें कुछं नक्षत्रोंकी स्थितिके वर्णनसे प्रभावित होकर ही उन्होंने ऐसा मत व्यक्त किया था। अँग्रेजी इतिहासकारोंने तो भारतको अनार्यों और द्रविड़ोंका देश बतलाया और इस आशयकी पुस्तकें लिखी थीं कि आर्य ईसाके जन्मसे २००० वर्ष अथवा १५०० वर्ष पूर्व भारतमें आये थे। लोकमान्य तिलकने इस मतका खण्डन तो किया था और स्वीकार किया था कि आर्यसभ्यताका विकास ईसाके जन्मसे ६००० वर्ष पहलेसे ही था। यद्यपि उन्होंने ऐसा लिखकर अँग्रेजों तथा पाश्चात्य विद्वानोंको मुहतोड़ जवाब दिया था, तथापि आर्योंको भारतके बाह्यका निवासी बताना उनकी दृष्टिमें भूलका विषय था। उनके हृदयमें यह बात काँटेकी तरह गड़ रही थी।

उन्होंने मृत्यु-शैय्यापर पड़े-पड़े अपने मनकी व्यथा श्रीभाईजीसे कही और इसी स्वीकृतिके द्वारा अन्त समयमें उन्होंने अपनी महान भूलका प्रायश्चित भी कर लिया। इस पश्चात्तापसे भारतके स्वर्णिम इतिहासका एक आरम्भिक पृष्ठ निष्कलंक हो उठा।

[११] मूलतः स्वरूपतः हिन्दू

एक बार शीतकालमें मैं गोरखपुर रेलवे स्टेशनपर श्रीभाईजीके आनेकी प्रतीक्षा कर रहा था। अनेक लोग उन्हें प्रणाम करने आये थे। वे रातवाली गाड़ीसे वाराणसी जाने वाले थे। गाड़ीके छूटनेका समय हो रहा था, रातके आठ बजनेको थे। प्रथम श्रेणीके प्रवेश द्वारसे श्रीराहुलजी प्लेटफार्मपर आ गये। मुझे देखते ही महापण्डित श्रीराहुल सांस्कृत्यायनने प्रश्न किया– रामलालजी ! आप मेरी वस्तु तो लाये हीं होंगे।

मैंने तुरन्त कहा– जी ! आप आज्ञा दें और मैं न लाऊँ ? ऐसी क्या बात है ? गीतावाटिकामें आपका फोन आते ही मैंने तत्काल गीताप्रेससे पुस्तकें मँगा ली थी।

मैंने प्रणति पूर्वक उनके करकमलोमें गीताप्रेससे प्रकाशित सात-आठ भक्त गाथाओंका बण्डल रख दिया। वे भक्तोंके चरितका अध्ययन करना चाहते थे। वे प्रसन्न हो उठे। महापण्डित उसी गाड़ीसे इलाहाबाद जाने वाले थे। वे किसी साहित्यिक कार्यक्रममें सम्मिलित होनेके लिये तीन दिनोंके लिये गोरखपुर आये थे। उनका मुझपर बड़ा स्नेह रहा करता था। उनसे बात हो ही रही थी कि श्रीभाईजी आ गये। श्रीभाईजीका चरणस्पर्श कर, मैंने दोनोंका मनोरंजन करना चाहा और मैं बोल पड़ा– यह उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुवका मिलन है। दुनियाके लोगोंकी

दृष्टिमें एक महान आस्तिक हैं तो दूसरे शायद नास्तिक कहकर सम्मानित किये जाते हैं।

कहनेके लिये तो मैं कह गया, पर तत्काल ही मेरे मनमें आशंकाकी बिजली कौंध गयी कि दोनों क्या सोचेंगे। दोनों-के-दोनों ठहाका मारकर हँस पड़े।

श्रीराहुलजी बोल पड़े— नास्तिकता न रहे तो यह आस्तिकता ठहरेगी किसपर ?

इतना कहकर श्रीराहुलजी श्रीभाईजीकी ओर देखने लगे। श्रीभाईजीने मुस्कुराकर कहा— नास्तिक भी तो परमात्माका ही अंश है। परमात्मा तो सबमें हैं, सब जगह हैं। बौद्ध धर्म तो हिन्दू धर्मका ही एक रूप है। हमारे शंकराचार्य प्रच्छन्न बौद्धके रूपमें कहीं-कहीं वर्णित हैं।

श्रीराहुलजीने गम्भीर स्वरमें कहा— तो मैं प्रच्छन्न हिन्दू तो हूँ ही।

श्रीभाईजीने बात सँभाली— नहीं, नहीं, आप मूलतः और स्वरूपतः हिन्दू हैं।

इतना कहकर श्रीभाईजी मुस्कराने लगे और श्रीराहुलजीने भी मुस्कुराकर सहमति ही प्रकट की। मैंने प्रत्यक्ष देखा कि श्रीराहुलजी प्रणत थे।

[१२] उदारता

एक समयकी बात है। उन दिनों लखनऊसे गोरखपुरतक रेलवेकी बड़ी लाइन नहीं थी। लखनऊसे चलने वाली एक्सप्रेस गाड़ी धड़धड़ाती हुई अपने नियत समयसे ठीक नौ बजे रातको गोरखपुर स्टेशनपर आ पहुँची। मैं बस्तीसे गोरखपुर आ रहा था, मैं गाड़ीसे उतर पड़ा। मैंने देखा कि पहले दरजेके डिब्बेसे श्रीभाईजी उतर रहे हैं। उनके साथ उतर रहे थे स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज (पूज्य श्रीराधा बाबा), निजी परिकर श्रीराधेश्यामजी धानुका तथा श्रीरामसनेहीजी। इधर गीतावाटिका और गीताप्रेसके किसी भी सज्जनको स्टेशन पर न देखकर मैं बड़ा विस्मित था कि बात क्या है। मैंने श्रीभाईजी और स्वामीजी महाराजके चरण छुए। श्रीभाईजीने बताया— दूसरे दिन सबेरे पहुँचनेका कार्यक्रम था, पर आज ही आनेका विचार हो गया। टेलीफोनकी लाइन ठीन न होनेसे सूचना नहीं दी जा सकी।

श्रीभाईजीके साथ ही मैं स्टेशनसे बाहर आ गया। कुलीने सामान ताँगेपर रख दिया। श्रीभाईजी और स्वामीजी ताँगेपर बैठ गये। रामसनेहीजीने कुलीके हाथपर दस रुपयेका नोट रखा और वे ताँगेपर बैठने ही जा रहे थे कि कुली झनझनाते हुए बोल पड़ा— मेरे पास दसके फुटकर कहाँ ? कहाँसे लौटाऊँ ?

श्रीभाईजी ताँगेसे उतर पड़े और बड़े स्नेहसे उसकी पीठको हाथसे सहलाते हुए कहा— भैया ! पैसा किसीने माँगा तो नहीं। यह तुम्हारा है।

कुलीका मुख विस्मय और प्रसन्नतासे खिल उठा। श्रीभाईजीके मीठे वचनसे उसके नेत्रोंमें अश्रुकण आ गये। उसने श्रीभाईजीका चरण स्पर्श किया। ताँगा अपनी रफ्तारसे चल पड़ा। कितनी सहज स्नेह भरी उदारता थी यह ! मैं बार-बार सोचता रह गया।

[१३] श्रीजहूर बख्श

सम्भवतः सन् १९६३-६४ की बात है। एक दिन वाराणसीसे निकलने वाले दैनिक 'आज'में मध्यप्रदेशके हिन्दीके कथाकार और रहीम-रसखानकी परम्पराके भागवत कवि श्रीजहूर बख्शकी लम्बी बीमारी और दयनीय आर्थिक स्थितिका अत्यन्त दुखद समाचार पढ़कर

सारा हिन्दी जगत क्षुब्ध और चिन्तित हो उठा। इसके पहले वे दो-तीन बार अखिल भारतीय कवि-सम्मेलनमें गोरखपुर आ चुके थे। भगवान कृष्णकी लीला-सम्बन्धी उनकी रचनाओंको सुननेका हमें सौभाग्य मिला था। वे मधुर कोमल पदावलीसे ललित व्रजभाषामें बड़ी भावपूर्ण भक्तिमयी कविताएँ भी लिखते थे। एक बार वे गोरखपुर पधारनेपर भाईजीसे मिलनेके लिये गीतावाटिका भी आये थे।

उनकी चिन्ताजनक अस्वस्थताके समाचारसे 'कल्याण' के सम्पादन विभागमें हमारे साथ कार्य करने वाले पण्डित श्रीशिवनाथजी दूबे बहुत चिन्तित थे। हम दोनों श्रीजहूर बख्शकी हिन्दी साहित्य साधनाके हृदयसे प्रशंसक थे। उनकी इच्छा थी कि हम दोनों साथ-साथ श्रीभाईजीके पास चलें और श्रीजहूर बख्शकी आर्थिक सहायता करनेके लिये निवेदन करें।

हमलोग श्रीभाईजीसे 'आज'में प्रकाशित समाचारके आधारपर संकोचके साथ बात कर ही रहे थे कि श्रीभाईजीने बताया– यह समाचार तो प्रयागसे निकलने वाली 'नार्दन इण्डिया पत्रिका'में कल ही आ गया था और मैंने कल ही मनीआर्डरसे रुपये भेज दिये।

मैं कुछ कहना ही चाहता था कि श्रीभाईजीने संकेत किया– रामलालजी! यथेष्ट पैसे भेजे हैं।

[१४] जीवकी सेवा

जीवमात्रपर दया तो परमात्माका स्वभाव है। वैष्णव साधक तो जीवकी सेवाका अधिकारी है। *'जीवे सेवा नामे रुचि'* का सत्संगमें श्रीभाईजी प्रायः उल्लेख किया करते थे। निःसन्देह उनकी सेवावृत्ति असाधारण थी। सम्भवतः सन् १९६४ ई. की बात है। उन्होंने मुझसे कहा– रामलालजी! आप सदर अस्पताल चले जाइये। आजकी डाकमें लालसाहब, गोला गोपालपुरकी एक चिट्ठी मिली है। उनके परिवारका एक नवयुवक बहुत बीमार है। उसकी हालत गिरती जा रही है। इतने रुपये लेते जाइये और उस बीमारकी दवा, दूध, फल आदिके लिये लालसाहबको दे देजियेगा।

उन्होंने रुपये सादे लिफाफेमें रखकर मुझे दे दिया। मैं यथाशीघ्र अस्पतालमें मरीजकी शय्याके पास पहुँच गया। सिरहाने कुरसीपर एक अधेड़ सज्जन बैठे किसीकी राह देख रहे थे। मैंने उन्हींसे कहा– मुझे श्रीभाईजीने भेजा है।

इतना सुनते ही वे मुझसे लिपटकर बालककी तरह फूट-फूट कर रोंने लगे। मुझे समझनेमें देर न लगी कि वे ही सज्जन गोला गोपालपुरके लालसाहब हैं। मरीज तकियेके सहारे बिस्तरेपर बैठ गया। लालसाहबने कहा– बेटे, अब मृत्यु कुछ नहीं बिगाड़ सकती। तुम बच गये।

मरीजके शरीरमें नया प्राण आ गया। मैंने लालसाहबके हाथमें वह सादा लिफाफा रख दिया। मैंने उनसे कहा– श्रीभाईजीने आपको प्रणाम कहा है और सेवा सूचित करते रहनेका आपसे आग्रह किया है।

[१५] स्नेहोपहार

लगभग १९६४-६५ ई. की बात है। गोरखपुरके सम्मान्य नागरिकों और साहित्य-कारोंकी एक समिति द्वारा गोरखपुर विश्वविद्यालयके तत्कालीन ट्रेजरार पण्डित

श्रीसूरतनारायणमणिजी त्रिपाठीके अभिनन्दनका आयोजन किया गया था। उनके सम्मानमें राजस्थानके तत्कालीन राज्यपाल तथा उत्तर प्रदेशके भूतपूर्व मुख्य मन्त्री डा. श्रीसम्पूर्णानन्दजी द्वारा अभिनन्दन ग्रन्थके विमोचन और समर्पणका कार्यक्रम था। उत्तर प्रदेशके अनेक प्रशासक, साहित्यकार तथा अनेक विशिष्ट जन इस अवसरपर पधारे हुए थे। श्रीभाईजीने मुख्य अतिथिके सम्मानमें सभी लोगोंको गीतावाटिकामें मध्याह्न भोजनके लिये आमंत्रित किया था।

भोजनके बाद ही सामान्य श्रीसम्पूर्णानन्दजीने कहा— भाईजी! आपको मेरी वस्तुकी तो याद होगी ही।

श्रीभाईजीके शब्द थे— उसे तो मैंने सबेरे ही पैकेटमें रखवा दिया है। मैं जानता था, आप तकाजा करेंगे ही।

बात यह थी कि श्रीसम्पूर्णानन्दजी जब भी गोरखपुर पधारा करते थे, तब स्नेह एवं सम्मानवशात् श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये गीतावाटिका आया ही करते थे। भोजनके बाद वे मुखशुद्धिके लिये स्वादिष्ट पीपल लिया करते थे। यह सुस्वाद पदार्थ विशेष रूपसे तैयार किया जाता था। चलते समय श्रीभाईजीने कहा— लीजिये, यह उपहार लेते जाइये।

इतना कहकर श्रीभाईजीने उनके हाथमें पीपलका पैकट रख दिया। श्रीसम्पूर्णानन्दजी मुस्कुराते हुए पैकेटको जेबमें रखा और कहा— इसी स्नेहोपहारके लिये लम्बी दूरी तयकर मैं जयपुरसे गोरखपुर चला आया।

[१६] सरकारी मोटर

बात उन दिनोंकी है, जब गोरखपुरके उद्योग विभागके उपनिर्देशक थे श्रीजगदीशप्रसाद अस्थाना। उनका उद्योग-कार्यालय गीतावाटिकाके ही सन्निकट था, इसलिये वे कभी-कभी भाईजीके प्रातःकालके सत्संगमें आने लगे और धीरे-धीरे सपरिवार उन्होंने श्रीभाईजीका स्नेहाशिष प्राप्त कर लिया। अस्थाना महोदय बड़े ही मिलनसार और सहृदय व्यक्ति थे। एक दिन वे भाईजीके प्रातःकालके सत्संगमें बैठे थे। श्रीभाईजीका प्रवचन पूर्ण होते ही उन्होंने बड़ी विनम्रतासे निवेदन किया— कल आप मीटिंगमें आये नहीं, हम सभी लोग बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे थे।

श्रीभाईजीने कहा— अपनी मोटर कहीं चली गयी थी। आप जानते ही हैं कि यथा समय पहुँचनेका मुझे कितना ध्यान रहता है। आनेकी बड़ी इच्छा थी, पर विवशता थी।

अस्थानाजीने कहा— मैंने आपको लानेके लिये मोटर भेज दी थी।

श्रीभाईजीने कहा— आपने मोटर भेज दी थी। वह ठीक समयपर आ गयी थी और मैं मीटिंगमें आसानीसे आ भी सकता था, पर मनमें बड़ा संकोच था कि यह मोटर सरकारी है। उपयोगमें किस तरह लाता।

श्रीभाईजीने तुरंत थोड़ी देर बाद मुस्करा कर कहा— मैं अवश्य आता, यदि मोटर अस्थाना

साहबकी अपनी होती।

[१७] गीतातीर्थ

गीताप्रेसमें प्रत्येक वर्ष मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशीको गीता जयन्तीका उत्सव मनाया जाता है। एक बारकी बात है कि गीता जयन्तीके अवसरपर आयोजित सभामें मैं प्रवचन-कथा-पदगान आदि कार्यक्रमका संचालन कर रहा था। जब श्रीभाईजी प्रवचन करनेके लिये मंचपर लाउडस्पीकरके सामने आने वाले थे, तब कार्यक्रम-संचालकके नाते श्रीभाईजीके प्रवचनसे पूर्व मैंने भूमिकास्वरूप उपस्थित श्रोताओंसे कहा– जिस तरह भगवती गंगाके पावन तटपर गंगोत्री, हरिद्वार, प्रयाग, विन्ध्याचल, काशी आदि अनेक पवित्र तीर्थ हैं, जिनमें निवास करके लोग अपना इहलोक-परलोक सुधार लेते हैं, उसी तरह श्रीमद्भगवद्गीताके भाष्यकार आचार्य शंकर, आचार्य रामानुज, श्रीश्रीधर स्वामी, श्रीमधुसूदन सरस्वती आदि चेतन तीर्थ हैं, जिनके गीता-भाष्यमें अवगाहन करके साधक लोग साध्य-साधनाके स्वरूपको जान लेते हैं और साधनाके सोपानोंको पार करके परम सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। श्रीभाईजी भी उन्हीं पुण्यात्मा भाष्यकारोंके समान चेतन गीतातीर्थ हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन अपने आपमें गीताकी भाषा है। वे गीताके मर्म और तत्त्व समझने वाले भागवत मानव हैं, जिनके गीतापरक उपदेशामृतसे लाभ उठाकर त्रय-ताप पीड़ित मानव अपना जीवन कृतार्थ बना ले सकता है। अब उन्हीं श्रीभाईजीके उपदेशामृतके पान करनेका अवसर हमलोगोंको मिलेगा।

कहनेके लिये तो मैं भूमिकास्वरूप ये शब्द कह गया, पर मेरे मनमें संकोच भी हो रहा था कि श्रीभाईजी न जाने क्या सोचते होंगे।

श्रीभाईजीने अपने प्रवचनके आरम्भमें ही कहा– श्रीरामलालजी मेरे छोटे भाई हैं। छोटे भाईका तो यह सहज स्वभाव ही होता है कि अपने बड़े भाईका सदा सम्मान करे, पर जहाँतक मेरी अपनी बात है, मुझमें गीतातीर्थ होनेकी योग्यता भला कहाँ है ? निःसन्देह आचार्य शंकर, आचार्य रामानुज, श्रीश्रीधर स्वामी, श्रीमधुसूदन सरस्वती, आदि-आदि तो गीतातीर्थ हैं ही। वे महान आचार्य गीता-तत्त्वके मर्मज्ञ हैं। मेरे लिये तो सबसे बड़े सन्तोषका विषय यही होगा, यदि मैं उन-उन मर्मज्ञों द्वारा निर्दिष्ट गीता-मर्मको थोड़ा-बहुत समझ करके और यत्किंचित् आचरण करके अपने मानव जीवनको सफल बना लूँ।

वास्तविक तथ्य होते हुए भी भाईजीने कभी भी अपनी सराहना स्वीक़ार नहीं की।

[१८] गोमाता

हिन्दू संस्कृति और हिन्दूजीवन-धारामें गोमाता तो गंगाजीकी तरह परम पुण्यमयी एवं पवित्र श्रद्धाकी अक्षय निधि है। उसके दर्शन और स्पर्श मात्रसे ही संसारके लोगोंके पाप-तापका शमन हो जाता हैं और वह सद्गति देती है।

सन् १९६८ के नवम्बर महीनेकी घटना है। श्रीभाईजीने गीतावाटिकामें कई गायें पाल रखी थी। उनमेंसे एक गाय बीमार हो गयी और उसका प्राणान्त हो गया। श्रीभाईजीने विधि पूर्वक उसका अन्तिम संस्कार सम्पन्न कराया। जिस तरह पुत्र अपनी माँकी अन्त्येष्टिमें अपने हृदयकी सम्पूर्ण श्रद्धाको उड़ेल देता है, उसी तरह गोमाताके अन्तिम संस्कारमें श्रीभाईजीकी श्रद्धा-भावना दर्शनीय थी।

गायके शवको नदीमें प्रवाहित करने हेतु ले जानेके पहले श्रीभाईजी स्वयं उसकी मृत्युस्थलीपर आ गये। उस समय उनकी धर्मपत्नी और पुत्री सावित्रीबाई फोगला भी उपस्थित होकर गायके प्रति अन्य सभी लोगोंके साथ हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित कर रही थीं। वातावरणका कण-कण भगवन्नामकी मधुर ध्वनिसे संप्लावित था। कीर्तनके मध्यमें ही भाईजीने गंगा जलसे मृत गायके शरीरको स्नान कराया, मुखमें तुलसीदल रखा, चंदनसे तिलक किया और तुलसीकी माला गलेमें डाल दी। इसके बाद गायको नये लाल रंगकी चादरसे ओढ़ा दिया। उसकी पाँच प्रदक्षिणाएँ की। एक घंटेतक झाँझ, करताल, ढोल और पखावजके गगन भेदी शब्दके साथ लोग एकाग्र चित्तसे *'श्रीमन्नारायण नारायण, नारायण'* मन्त्रका उच्चारण करते रहे। बड़ा पवित्र वातावरण था, अद्भुत अपूर्व दृश्य था।

इसके बाद ठेलेपर गायका शव लिटा दिया गया। भाईजीने अश्रुपूरित नेत्रोंसे गीतावाटिकाके मुख्य बाहरी द्वारतक आकर गायको प्रणाम किया। ठेला लेकर लोग कीर्तन करते हुए भगवती राप्तीके तटपर आये और प्रवाहमें गायका शव प्रवाहित किया।

[१९] चरणामृत

सम्भवतः सन् १९७० के नवम्बर महीनेकी बात है। श्रीभाईजीकी अस्वस्थता बढ़ती जा रही थी, शरीर कमजोर होता जा रहा था। यह निश्चय नहीं हो पा रहा था कि उन्हें कैंसर है या नहीं। डाक्टरोंकी रायसे उनका एक्स-रे करानेका निश्चय किया गया, जिससे शरीरमें कैंसरके विकारका पता चल सके। एक दिन दोपहरके ग्यारह बजे उन्हें एक्स-रे करानेके लिये रेलवे अस्पताल ले जाया गया। उनके वापस आनेकी लोग बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे थे। गीतावाटिकाके पोरटिकोमें हम अनेक लोग खड़े होकर मोटरका इन्तजार कर रहे थे। प्रायः सभीके मनमें आशंका थी कि न जाने एक्स-रेमें क्या निकले। वातावरण चिन्तासे बोझिल था। मधुर-मधुर ध्वनिसे बंगीय कीर्तन मण्डली पंडालमें *'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'* महामन्त्रका वाद्य निनादित स्वर लहरीमें अखण्ड संकीर्तन कर रही थी।

इसी समय एक महात्मा आये। वे लम्बे कदके थे, शरीर गौर वर्णका था, नेत्रोंमें दिव्य तेज था, ललाटपर रामानन्दी तिलक था, मस्तक भूरी-भूरी भस्मांकित जटासे विभूषित था। उनके हाथमें एक छोटा-सा जलपात्र था, उसमें जल था। वे लोगोंसे बात करना चाहते थे, पर हम लोग चिन्तामग्न थे। वे टहल रहे थे। मोटर आ गयी। भाईजीने मोटरसे उतरते ही हाथ जोड़कर उन संतको प्रणाम किया। महात्माने जलपात्र श्रीभाईजीके हाथके सामने करते हुए कहा– यह भगवानका चरणामृत है। आप ग्रहण करें।

श्रीभाईजीने बिना हाथ धोये ही अञ्जलिमें चरणामृत लिया और पी गये। महात्मा प्रसन्न थे। वे जाने लगे तो श्रीभाईजीने अपने निकटवर्ती कृष्णचन्द्रजी अग्रवालको कुछ संकेत किया। कृष्णचन्द्रजी उन्हें दक्षिणा देनेकी व्यवस्थामें संलग्न होने वाले थे कि महात्माने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया और वे स्वंय कह पड़े– मुझे कुछ नहीं चाहिये। मैं तो चरणामृत पिलाने आया था।

वे चले गये। वे थे कितने सीधे-सादे निःस्पृह साधु और ये थे कितने सदा-सदा

सम्मान-दानी !

श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव

[१] गुजरातीमें प्रवचन

बात तीर्थ यात्रा ट्रेन की है, जो सन् १९५६ में वाराणसीसे चली थी। जहाँ-जहाँ ट्रेन पहुँचती, वहाँ-वहाँ श्रीभाईजीका बड़ा स्वागत होता। तत्तत्स्थानीय भक्तोंके मध्य श्रीभाईजीको प्रवचन भी देना पड़ता था। ऐसे ही प्रवचनकी व्यवस्था श्रीद्वारकाधाममें भी थी। समुद्र-स्थित बेंट-द्वारकासे लौटकर श्रीभाईजी द्वारका सूर्यास्तके समय पहुँच पाये थे। एक मैदानमें तम्बू लगा हुआ था, वहीं भक्तगण श्रीभाईजीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। श्रीभाईजीके पहुँचते ही पहले श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीने एक भक्तिपरक पदका गायन किया और फिर श्रीभाईजीने हिन्दीमें प्रवचन देना आरम्भ किया।

तीर्थ-यात्री तो मंचके पास बैठे थे, पर हम एक-दो व्यक्ति स्थानीय श्रोताओंके मध्य बैठे थे। गुजराती भाषा-भाषी होनेके कारण इन श्रोताओंको हिन्दी प्रवचन समझनेमें कठिनाई पड़ रही थी। वे लोग बैठे-बैठे परस्परमें कानाफूसी करने लगे कि भली प्रकार समझमें नहीं आ रहा है। हमलोगोंने उन कानाफूसीको सुना और साथ ही यह भी याद आया कि श्रीभाईजी तो कुछ-कुछ गुजराती जानते हैं और यदि वे गुजराती भाषामें प्रवचन दें तो सबकी समझमें आये। मेरे मित्रने मंचपर जाकर यह बात श्रीभाईजीसे कही। बात कहते ही श्रीभाईजीने गुजरातीमें तुंरत प्रवचन देना आरम्भ कर दिया, ऐसा आरम्भ किया कि वे जो आधा वाक्य हिन्दीमें बोल गये थे, उस वाक्यको पूर्ण किया गुजरातीमें। गुजरातीमें प्रवचन आरम्भ होते ही सभी श्रोताओंकी आँखोंकी प्रसन्नताभरी कान्ति उनके उल्लासका प्रमाण दे रही थी। कुछ श्रोताओंने यहाँ तक कहा कि मजा आ गया।

श्रीभाईजीके मुखसे गुजरातीमें प्रवचन सुननेका यह पहला अवसर था। हिन्दी और बंगलापर तो उनका असाधारण अधिकार था ही, गुजराती भी इतनी सुन्दर और धारावाहिक बोल सकते हैं, यह देखकर मुझे सुख मिश्रित विस्मय हुआ।

[२] चिताके शवको मन्त्र-दान

प्रसंग तीर्थ-यात्रा-ट्रेनका है। जब ट्रेन बेजबाड़ा पहुँची, तब एक प्रौढ़ तीर्थयात्रीका देहान्त हो गया। उनकी धर्मपत्नी अत्यधिक शोकाकुल हो उठी। साथके तीर्थयात्री शव-यात्रा तथा अग्नि-संस्कारके लिये तैयारी करनेमें लग गये, परंतु उन शोकाकुल माताजीका रोदन बढ़ता ही जा रहा था। लोगोंने धीरज बँधानेकी चेष्टा की, परंतु जितना ही उनको सहलानेका प्रयत्न होता था, उतना ही अधिक उनका शोक उभर-उभर जाता था।

शोकाकुल माताजीकी स्थितिकी जानकारी श्रीभाईजीको दी गयी। श्रीभाईजी उन माताजीके पास आये और जगतकी नस्वरता बतलाते हुए उन माताजीसे कहा— यह तो उनका बड़ा भारी सौभाग्य है कि उन्होंने पुण्य सलिला कृष्णा नदीके तटपर तीर्थयात्रा करते हुए एक तीर्थस्थानमें अपनी देहका परित्याग किया। किसी तीर्थयात्रीकी ऐसी मृत्युके बारेमें शास्त्रोंमें बड़ी महिमा

गायी गयी है। उनकी श्रेष्ठ मृत्युको देखते हुए आपको किसी प्रकारका शोक नहीं करना चाहिये।

उन माताजीने कहा— आपका कहना सही है, पर मुझे दुख तो इस बातका सबसे अधिक है कि कई बेटे होते हुए भी आज कोई भी बेटा पासमें नहीं है, जो अर्थीको कन्धा दे सके और चितामें आग लगा सके। जब-जब यह बात सामने आती है, मनमें एक हूक-सी उठती है।

श्रीभाईजीने तुरंत कहा— यह आपने कैसे मान लिया कि यहाँ उनका कोई बेटा नहीं है ? मैं उनका बेटा हूँ न ! शवयात्राकी तैयारी हो रही है, फिर अर्थीको कन्धा मैं लगाऊँगा और चितामें दाग भी मैं दूँगा।

श्रीभाईजी द्वारा ऐसा कहे जानेपर उन माताजीके भावोंमें तुरंत परिवर्तन दिखलायी देने लगा। इस बातसे उन्हें बड़ा संतोष हुआ कि पूज्य श्रीभाईजी जैसे महान व्यक्ति द्वारा उनका अन्तिम संस्कार हो रहा है। ट्रेनके तीर्थयात्री भी उस दिवंगत आत्माके भाग्यकी सराहना करने लगे, जिसके शवका अग्निसंस्कार श्रीभाईजी द्वारा हो। सचमुच, श्रीभाईजीने अर्थीको कन्धा दिया और चितामें आग भी लगायी। एक बड़ी विचित्र बात और भी हुई। चितापर लेटे हुए शवके कानमें श्रीभाईजीने मन्त्र भी दिया, जिसे देखकर सभी लोग आश्चर्य करने लगे। अब उस आत्माकी सुगतिके बारेमें संदेहके लिये स्थान ही कहाँ रहा ?

[३] स्वजनोंका हित-चिन्तन

जगतके प्रति बढ़ती हुई उपरामता, भाव-समाधिमें अधिकाधिक निमग्नता, घोर एकान्तप्रियताकी ओर सतत उन्मुखता और शरीरमें दिन-प्रति-दिन घर करती हुई रुग्णता आदिको देखकर श्रीभाईजी सोचने लगे कि भविष्यमें न जाने कितने दिन मेरा जीवन रह पायेगा और न जाने उसका भावी स्वरूप क्या होगा। ऐसी दशामें किसी अनचाही परिस्थितिके अचानक उपस्थित हो जानेसे, हो सकता है, मेरे पास रहने वालोंको और उनके परिवारको किसी परेशानी या उलझनका सामना करना पड़ जाये। सुन्दर बात तो यह है कि यह समस्या उत्पन्न हो, इसके पहले ही सबको सावधान कर देना चाहिये। इस भावसे भावित होकर श्रीभाईजीने मेरे पास एक पत्र लिखा। वह इस प्रकार है—

प्रिय श्रीमाधवशरणजी,

सप्रेम हरिस्मरण।

एक आवश्यक निवेदन कर रहा हूँ। आजकल मेरे मस्तिष्ककी तथा शरीरकी जो स्थिति है, उसे देखते ऐसा अनुमान होता है कि यह शरीर बहुत दिनों नहीं चलेगा और यदि शरीर रहेगा तो मुझे सब काम-काजसे पृथक् होकर बहुत ही शीघ्र अलग एकान्त स्थानमें रहना पड़ेगा। यद्यपि मैं न तो शीघ्र मरनेकी इच्छा रखता हूँ और न मृत्युका भय ही है, भगवानके मंगलमय विधानके अनुसार जो होना है, वही होगा, तथापि उपर्युक्त दोनों ही स्थितियोंमें मेरे पीछेसे, इस समय अपने यहाँका जो ढंग है, वह अवश्य बदलेगा और सम्भव है कि वह ढंग आपको रुचिकर या अनुकूल न हो। सहसा दूसरी व्यवस्था कठिन होगी, इसलिये पहलेसे ही दूसरे अच्छे कामकी खोज कर लेना वाञ्छनीय है। अतएव आप इस विषयमें विचार करके अभी प्रयत्न प्रारम्भ कर दें। यह मेरा विनम्र निवेदन है। इसमें मुझसे जो कुछ सहयोग आवश्यक होगा, मैं यथाशक्ति

देनेको तैयार हूँ। मैं अपनी अबतककी सारी भूलोंके लिये क्षमा-प्रार्थना और आपके अकृत्रिम स्नेहके लिये हृदयसे कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। यह पत्र कई दिनों पहले लिखकर रखा था। संकोचवश दिया नहीं, अब दे रहा हूँ।

विनीत-

हनुमानप्रसाद

ऐसा ही पत्र श्रीभाईजीने पूज्य पं. श्रीजानकीनाथजी शर्मा, श्रीशिवनाथजी दूबे तथा श्रीदूलीचन्दजी दुजारीको लिखकर दिया। अपने समीपस्थ लोगोंका इतना अधिक हित-चिन्तन उनके सतत स्नेही स्वभावके ही अनुरूप था। ऐसा हितचिन्तन अन्यत्र सहज मिलना कठिन है।

श्रीदुर्गाप्रसादजी गुप्त

[१] इलाहाबाद कोर्टमें सफलता

गीताप्रेसमें सहायक-प्रबन्धकके रूपमें मेरी नियुक्ति १८ जनवरी सन् १९४५ को हुई थी। यद्यपि श्रीबजरंगलालजी चाँदगोठिया मैनेजरके रूपमें कार्य कर रहे थे, पर प्रेसके कामसे उनको प्रायः बाहर जाना पड़ता था और जितने दिन वे बाहर रहते थे, उनका कार्यालय बन्द रहता था। यह बात पूज्य श्रीसेठजीको पसन्द नहीं थी। प्रबन्धकका कार्यालय सदा खुला रहना चाहिये, अतः उन्होंने मुझको नियुक्ति-पत्र दे दिया था, पर वह नियुक्तिपत्र मेरे पाकेटमें नौ मासतक पड़ा रहा। मैं निश्चय नहीं कर पा रहा था कि यह दायित्व स्वीकार करूँ अथवा नहीं। इसके लिये मुझे श्रीघनश्यामदासजी जालानने भी कहा, पर जब पूज्य श्रीभाईजीने कहा तो १९४५ की १८ जनवरी, वसंत पंचमीके दिन मैंने गीताप्रेसमें कार्य आरम्भ कर दिया। पूज्य श्रीभाईजीके प्रति मेरी श्रद्धा-भावना इतनी अधिक थी कि उनकी उपेक्षा कर सकना मेरे लिये सम्भव नहीं था।

ज्यों ही मैंने सहायक-प्रबन्धकका कार्य-भार सँभाला, श्रीभाईजीने मुझसे कहा— *भैया! अगर जीवनमें सफल होना चाहते हो तो उसका एक बड़ा सुन्दर उपाय है। सबसे सदा नम्रताका व्यवहार करना। मधुर व्यवहार और मधुर बोलसे विकट परिस्थितियाँ दूर हो जाती हैं और कठिन कार्य सरल हो जाते हैं।*

मैंने गीताप्रेसमें लगभग ४१ वर्षतक काम किया और श्रीभाईजीकी इस सीखने मुझे पद-पदपर सफलता प्रदान की। एक बारकी बात है। इलाहाबाद हाईकोर्टमें गीताप्रेसके चार मुकदमें थे। इस मुकदमेंके कामसे मुझे इलाहाबाद जाना था। जानेके पहले श्रीभाईजीको प्रणाम करनेके लिये मैं गीतावाटिका गया। जब श्रीभाईजीको मैंने प्रणाम किया तो उन्होंने कहा— 'नारायण नारायण' बोलकर जाना और सबसे मधुर व्यवहार रखना।

इलाहाबादमें मजदूरोंकी ओरसे बड़ी तैयारी की गयी थी। बहस करनेके लिये कानपुरसे कोई बड़ा बैरिस्टर आया था। बैरिस्टरके अलावा कुछ वकील भी थे। गीताप्रेसके चारों केस जिन न्यायाधीश महोदयके ट्रिब्युनलमें थे, मैं उनके चैम्बरमें चला गया। न्यायाधीशके चैम्बरमें जाना

साधारण बात नहीं है, फिर भी मैं साहस करके चला गया। मैंने उनको प्रणाम किया। उन्होंने मुझे बैठनेके लिये कुर्सी दी और पूछा— आप कहाँसे आये हैं।

मैंने कहा— मैं गोरखपुरसे आया हूँ और गीताप्रेसका मैनेजर हूँ।

मेरा संक्षिप्त परिचय पाकर उन्होंने गीताप्रेस और 'कल्याण'के बारेमें कई बातें पूछीं। फिर उन्होंने श्रीभाईजीकी कुशलताके बारेमें जिज्ञासा व्यक्त की। मैंने सबका यथोचित उत्तर दिया। फिर उन्होंने पूछा— यहाँ आपका आना कैसे हुआ ?

मैंने कहा— गीताप्रेसके चार केस हैं और वे सब आपके ही ट्रिब्युनलमें हैं।

उन्होंने कहा— अच्छा, मैं देख लूँगा।

कोर्टमें बहस आरम्भ हुई। श्रमिकोंकी ओरसे बैरिस्टर और वकील थे, पर गीताप्रेसकी ओरसे केवल मैं अकेला था। जैसा मुझसे बन पड़ा, वैसा मैं बहसमें बोल गया। सबसे अधिक आश्चर्यकी बात तो यह है कि न्यायाधीश महोदयने चारों केसका फैसला गीताप्रसके पक्षमें तत्काल दे दिया। मेरा विश्वास है कि श्रीभाईजीकी सीख और उनके शुभाशीर्वादके प्रभावके कारण ही यह सफलता मिल पायी।

[२] निर्विघ्न वापसी यात्रा

सन् १९५० के आस-पासकी बात होनी चाहिये। गोरखपुरसे लगभग ५० मीलकी दूरीपर बस्ती नामक शहर है। बस्तीमें कोई सार्वजनिक कार्यक्रम था। इस कार्यक्रमका सभापतित्व करनेके लिये श्रीभाईजीको बस्ती जाना था। यह सार्वजनिक सभा शामको होने वाली थी, अतः श्रीभाईजी गीतावाटिकासे अपनी नैश कारद्वारा लगभग दो बजे गीताप्रेस आये और उनके साथ मैं, श्रीशुकदेवबाबू तथा और भी एक-दो व्यक्ति उसी कारसे बस्तीके लिये रवाना हुए।

कार गोरखपुर शहरसे बाहर निकलकर थोड़ी दूर आयी होगी कि उसके चक्केका एक बोल्ट खुलकर कहीं गिर गया। कारका चलना बंद हो गया। मार्गके बीच उस जंगली एकान्त स्थानपर लोहेका नट-बोल्ट भला कहाँ मिलता ? ड्राइवरने बोल्टके स्थानपर लकड़ीको ठूँसा। कार कुछ कदम चलकर फिर ठहर गयी। लोहेके बोल्टके स्थानपर लकड़ी कैसे काम दे सकती थी ? अब हम सभीको बड़ी चिन्ता हुई कि श्रीभाईजी बस्ती ठीक समयपर कैसे पहुँचेंगे। भगवत्कृपासे उसी समय एक जीप आ गयी। वे लोग भी गोरखपुरसे बस्ती जा रहे थे। जीपमें स्थान तो नहीं था, पर श्रीभाईजीको बस्ती पहुँचना आवश्यक था, अतः उन्होंने श्रीभाईजीको बैठा लिया। जीपमें बैठते-बैठते श्रीभाईजीने हम लोगोंसे कहा— परिस्थितिवशात् विवश होकर मुझे जाना पड़ रहा है। मैं बस्तीमें आप लोगोंकी राह श्रीकमलाप्रसादजी त्रिपाठीके घरपर देखूँगा। किसी प्रकार ढंग बैठाकर आप लोग वहाँ आइयेगा।

उस जीपमें श्रीभाईजी चले गये और बस्तीमें शामको सार्वजनिक सभाका कार्यक्रम भी ठीक प्रकारसे सम्पन्न हो गया। सभाके समाप्त होनेपर श्रीभाईजी श्रीत्रिपाठीजीके घर आ गये, पर हमलोग तबतक भी बस्ती नहीं पहुँच पाये थे। श्रीभाईजी हमलोगोंके लिये बड़ी चिन्ता कर रहे थे। किसी प्रकार उस नैश कारको काममें लेते हुए हमलोग लगभग नौ बजे बस्ती पहुँचे। श्रीभाईजी वहाँ हमलोगोंकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे। गोरखपुरसे बस्तीका रास्ता एक घंटेका है, पर एक घंटेके स्थानपर वहाँ पहुँचनेमें हमलोगोंको छः घंटे लग गये। वहाँ पहुँचनेपर श्रीत्रिपाठीजीने

हमलोगोंका स्वागत-सत्कार किया और भोजन कराया। अब लगभग दस-साढ़े-दस बज चुके थे। ज्यों ही श्रीभाईजीने गोरखपुर जानेकी बात कहीं, तुरन्त श्रीत्रिपाठीजीने आपत्ति करते हुए कहा— भाईजी ! आप भी क्या कह रहे है ? एक तो रात्रिका समय और दूसरे यह मोटर खराब है। मैं आपको कैसे जाने दे सकता हूँ? यदि आपका जानेका ही निश्चय हो तो मैं किसी अन्य वाहनके प्रबन्धके लिये प्रयास करूँ।

श्रीभाईजीने कहा— त्रिपाठीजी ! आप चिन्ता न करें। भगवान सब भला करेगें। हम सभी लोग अभी जायेंगे और इसी नैश कारसे जायेंगे। मेरा विश्वास है कि भगवत्कृपासे कोई बाधा सामने नहीं आयेगी।

त्रिपाठीजीने हम सभी लोगोंको रोकनेके लिये अथवा अन्य वाहनकी व्यवस्थाके लिये कई बार कहा, पर श्रीभाईजीके आग्रहके सामने उनको झुकना पड़ा। हमलोग रातको ही बस्तीसे चल दिये। चलनेके पूर्व श्रीभाईजीने हम सभीसे कहा— हम सब लोग भगवान नारायणका नाम लेकर चलें तथा नारायणका स्मरण करें। वे भगवान ही सारी बाधाओंका निवारण करेंगे।

सबसे आश्चर्यकी बात यह है कि बस्तीसे चलनेके बाद वह खराब कार मार्गमें कहीं भी न बिगड़ी और न ठहरी। उस नैश कारने ही एक घंटेमें गीताप्रेसके प्रवेश द्वारपर हम लोगोंको पहुँचा दिया। कारसे उतरकर मैंने श्रीभाईजीसे कहा— आपने कौन सा जादू कर दिया कि रास्तेमें कारने धोखा नहीं दिया।

श्रीभाईजीने कहा— यदि मुझमें कोई जादू होता तो वह जादू बस्ती जाते समय ही मुझे दिखाना चाहिये था। अब जो हमलोग बिना बाधाके सुरक्षित घर पहुँच गये, यह सब भगवानकी अहैतुकी कृपाके फलस्वरूप है।

मैं ऐसा मानता हूँ कि श्रीभाईजीने यह उत्तर अपने संगोपन-प्रवृत्तिके अनुसार ही दिया था, अन्यथा सत्य तो यही है कि श्रीभाईजीके लोकोत्तर सामर्थ्यके कारण ही यह यात्रा निर्विघ्न रूपसे सम्पन्न हो पायी।

[३] क्षमा-याचनाके वे क्षण

घटना उस समयकी है जब गीतावाटिकामें श्रीराधाष्टमी उत्सव संक्षिप्त रूपमें कोठीके छोटे-से हालमें मनाया जाता था। उत्सवसे तीन-चार दिन पहले भाई श्रीरामदासजी जालानके साथ मैं गीतावाटिका गया। रातके लगभग आठ बज रहे थे। भाई श्रीरामदासजीको एक जगह तार भेजना था, अतः उन्होंने टेलीफोनपर तारघरके बाबूको तार ले लेनेके लिये कहा। तार बाबूने गीतावाटिकाका फोन नम्बर नोट कर लिया और कहा— मैं अभी थोड़ी देर बाद आपको फोन करूँगा। उस समय आप तार लिखवा दीजियेगा।

भाई श्रीरामदासजीने टेलीफोनका हुक रख दिया और वहीं प्रतीक्षामें हम दोनों बैठे रहे। प्रतीक्षा करते-करते एक घंटा बीत गया। हमलोगोंको ऐसा लगा कि तार बाबू बातको भूल गये हैं। भाई श्रीरामदासजीने फिर नौ बजे तार बाबूको फोन किया। तार बाबूने टेलीफोनपर कहा— मैं आपका तार लिख तो लूँगा, पर अब तारपर एक रुपया चार्ज अधिक लगेगा।

ऐसा सुनते ही भाई श्रीरामदासजीको रोष आ गया। उन दिनों तारघरका ऐसा नियम था कि रातके नौ बजेके बाद जो तार लिये जाते थे, उनपर एक रुपया चार्ज अधिक लगता था।

आजकी अपेक्षा उन दिनों एक रुपयेकी कीमत बहुत ज्यादा थी। भाई श्रीरामदासजीने तुरन्त जबाब देते हुए कहा– हम अधिक चार्ज क्यों देंगे ? हमने तो लगभग आठ बजे ही तार लेनेके लिये आपको फोन कर दिया था। नौ बजेके भीतर-भीतर तार आपने नहीं लिखा, इसमें गलती आपकी है।

टेलीफोनपर तारबाबूसे थोड़ी कहा-सुनी हो गयी। मैं भाई श्रीरामदासजीके पास ही बैठा हुआ था। तारबाबूसे निपटनेके लिये उन्होंने फोन मुझको दे दिया। यह बात एकदम साफ-साफ थी कि इसमें गलती तारबाबूकी है और हमारी गलतीके न होते हुए एक रुपया अधिक चार्ज देना बड़ा भारी लग रहा था। शायद वह सही रास्तेपर आ जाय, अतः अपने रोषको छिपाये हुए मैंने तारबाबूसे कहा– हमलोग तो आठ बजेसे ही टेलीफोनके पास बैठे हुए हैं। आपने ही नौ बजेतक कोई सुधि नहीं ली। प्रतीक्षा करते-करते जब थक गये तो फिरसे आपको फोन किया। इसमें गलती आपकी है या मेरी ?

तारबाबूने कहा– आपका कहना सही है, पर अब नौ बज चुके हैं और तारघरके नियमके अनुसार एक रुपया अधिक चार्ज लेना मेरे लिये आवश्यक हो गया है।

अभीतक मैं अपने रोषको दबाये हुए बैठा था, पर अब मुझे असह्य हो गया। मैंने कड़ी जबानमें उस तारबाबूसे कहा– आप यह जान लें कि मैं गीताप्रेसका मैनेजर दुर्गाप्रसाद बोल रहा हूँ। इसमें गलती मेरी नहीं, आपकी है। आपकी लापरवाहीके कारण यह एक रुपया चार्ज लग रहा है। एक रुपयेके लिये, यह समझ लें, आपकी नौकरी चली जायेगी।

मेरी बातको सुनकर वह तारबाबू सहम गया और विनम्र स्वरमें बोला– अच्छा, आपके तारपर एक रुपया चार्ज नहीं लगेगा। आप तार लिखवाइये।

मैंने टेलीफोनपर तारबाबूको तार लिखवा दिया और श्रीरामदासजी जालानको बतला दिया कि अब एक रुपया अतिरिक्त शुल्क नहीं लगेगा।

मुझे पता नहीं था कि पासवाले कमरेमें श्रीभाईजी लेटे हुए हैं और मेरी सब बात सुन रहे हैं। वे कुछ अस्वस्थ थे, अतः लेटे हुए थे। जब तार देनेका काम समाप्त हो गया, तब श्रीभाईजीने मुझको और भाई श्रीरामदासको बुलवाया और मुझसे कहा– अरे दुर्गाबाबू! क्या एक रुपयेके लिये आप उसकी नौकरी खतम कर देते ? क्या यही हमारी मानवता है ? यह तो हमारी लोभ वृत्तिका बड़ा ही विकृत रूप है कि जिसके कारण किसीकी आजीविका चली जाये। एक बात और बताऊँ। कदाचित् यदि आप कोई कारवायी करते तो मैं उस तारबाबूका पक्ष लेता और यही कहता कि इसमें गलती तारबाबूकी नहीं, हमारे मैनेजरकी ही है।

श्रीभाईजीके ऐसा कहते ही मैं तो पानी-पानी हो गया। मेरे लिये लज्जाके मारे सिर उठाना कठिन हो गया। अपना बचाव करनेके लिये मैंने कहा– मैं तो उसे केवल धमकी दे रहा था, वैसा कुछ करता नहीं।

श्रीभाईजीने समझाया– जगतके सांसारिक लोग भले वैसी नीति अपनायें, किन्तु आध्यात्मिकता, आस्तिकता और सात्त्विकताका प्रचार करनेवाली गीताप्रेस जैसी संस्थाके मैनेजरके लिये इस प्रकारकी धमकी भी शोभा नहीं देती।

मेरे मुखसे एक भी शब्द नहीं निकल रहा था। मेरा मन बड़ा खिन्न हो गया कि मेरे कारण श्रीभाईजीके मनको कष्ट पहुँचा। मनमें बड़ी उथल-पुथल मची हुई थी और अन्तरमें भारी पश्चात्ताप था कि तारबाबूके प्रति हमारे द्वारा ऐसा व्यवहार वस्तुतः बहुत ही लज्जाजनक था। भारी अन्तर्वेदना लिये-लिये मैं उदास मनसे घर वापस आ गया और उदासीके कारण रातको नींद भी ठीकसे नहीं आयी। अचानक सबेरे पाँच बजे श्रीजीवबोधन सिंहने मेरे घरका दरवाजा खटखटाया। श्रीजीवबोधन सिंह श्रीभाईजीका निजी पत्र-वाहक है। भीतर आकर उसने श्रीभाईजीका एक बन्द लिफाफा मुझे दिया। उत्सुकतावशात् बहुत जल्दीसे मैंने वह लिफाफा खोला तो उसमें उनके स्वयंकी लेखनीसे लिखा हुआ पत्र पढ़कर मैं तो अवाक् रह गया। पत्रमें श्रीभाईजीने लिखा था—

प्रिय श्रीदुर्गाबाबू,

सप्रेम हरिस्मरण।

बीमार आदमीकी बुद्धि मारी जाती है। रातको मेरी बुद्धि मारी गयी थी। मैंने आपको तथा भाई रामदासको बहुत दुर्वचन कहे। उसी बातको मैं प्रेमसे भी कह सकता था। मुझे पीछे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। दोषोंका पुतला है यह जीवन। क्या कहूँ? आपसे तथा प्रिय रामदाससे हाथ जोड़कर क्षमा चाहता हूँ। आप भगवानके नामपर तथा अपने शीलकी ओर देखकर मुझको क्षमा कर दें। प्रिय भाई रामदाससे भी आप मेरी ओरसे इसी तरह इन्हीं शब्दोंमें क्षमा माँग लें।

सीयराममय सब जग जानी।
करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

आपका क्षमा प्रार्थी
हनुमान

पत्रको पढ़ते ही हृदय बहुत अधिक विह्वल हो उठा। आँखें छलछला उठीं। भाई श्रीरामदासके घर जाकर मैंने वह पत्र उनको दिखलाया। उनकी भी आँखें भर आयी। हमलोग उसी समय गीतावाटिका गये। हमलोगोंको देखकर श्रीभाईजीने कहा— आज इतने सबेरे-सबेरे कैसे ?

मैंने कहा— आज एक दम प्रातःकाल श्रीजीवबोधन सिंहके हाथ भेजा हुआ आपका पत्र मिला। आपने यह क्या किया ? गलती तो सरासर मैंने की थी और मुझसे ही आप क्षमा याचना करें ! मेरी भूलको आप नहीं सुधारेंगे तो और कौन सुधारेगा ?

श्रीभाईजीने कहा— आप चाहे जो समझे, आपसे बड़ी भूल तो मैं ही कर बैठा। क्या मेरे लिये यही उचित था ?

इतना कहते-कहते श्रीभाईजीकी आँखें भर आयी और ऐसा लगा कि आँसूकी बूँदे बाहर चू जाने वाली हैं। मैं भी सजल हो उठा, रामदासजी भी सजल हो उठे। वातावरण बदलेनेके लिये मैंने दूसरा प्रसंग छेड़ दिया, पर मेरा मन श्रीभाईजीके आँसूकी बूँदोंमें ही डूबा हुआ था। श्रीभाईजीकी विनम्रता एवं पर-हितैषिताकी यह भावना मुझपर ऐसी छाप छोड़ गयी, जिसका मिटना कभी सम्भव है ही नहीं।

[४] मेरे भाईको जीवन दान

सम्भवतः सन् १९६९ या ७० में मेरा छोटा भाई एक बार बहुत अधिक बीमार पड़ गया। उसके पीठपर अदीठ फोड़ा (कारबंकल) हो गया था। पूज्य श्रीभाईजीके कहनेसे रिटायर्ड सिविल-सर्जन डा. श्रीराजेन्द्रप्रसाद और डा. श्रीलहरी उसे देखनेके लिये लगभग प्रतिदिन आया करते थे। चिकित्सामें कहीं कोई कमी या चूक नहीं हो रही थी। देखभाल सम्बन्धी सारी तत्परताके बाद भी उसकी हालत गिरती ही जा रही थी। जब चार दिनतक मेरे रुग्ण भाईने कोई आहार नहीं लिया और न अपनी आँखें खोली तो सबको बड़ी चिन्ता हो गई। उस दिन सबेरे दोनों डाक्टरोंने जबाब भी दे दिया कि अब इसके बचनेकी आशा नहीं है।

डाक्टरोंका ऐसा कहना था कि घरमें रोना-धोना मच गया। मेरी बूढ़ी माँ बुरी तरह रोने लग गयी। इस अवसरपर मुझे श्रीभाईजीकी याद आयी। मैंने गीतावाटिका फोन करके उन्हें सारी स्थिति बतलायी और उनसे कहा— मैं स्वयं गीतावाटिका आना चाहता था, पर यहाँ भाईकी सँभालके लिये मेरा रहना बड़ा आवश्यक है। मेरी माँका कहना यह है कि एक बार श्रीभाईजी आ जाते तो बड़ा अच्छा होता।

श्रीभाईजीने फोनपर कहा— मैं अभी तुरन्त आता हूँ।

अस्वस्थ और व्यस्त होते हुए भी श्रीभाईजी मेरे घर पधारे। द्वारपर ही माँ बैठी थी। श्रीभाईजीको देखकर वह और अधिक रोने लग गयी। श्रीभाईजीने उनसे कहा— माँजी ! आप इतनी घबड़ाती क्यों हैं ? भगवान मंगल करेंगे। आप अधीर न हों।

इसके बाद श्रीभाईजी रोगीके खाटके पास आये और उन्होंने मेरे भाईके सिरपर हाथ रखा। हाथ रखते ही उसने आँख खोलकर श्रीभाईजीकी ओर देखा और हाथ जोड़कर प्रणाम किया। विगत चार दिनोंसे न उसने कुछ खाया-पिया था और न उसने करवट बदली थी। जब उसने आँख खोलकर श्रीभाईजीको प्रणाम किया तो मुझे बड़ा अचम्भा लगा। मैं तो इसे उनके वरद-स्पर्शका प्रभाव ही मानता हूँ। ज्यों ही मेरे भाईने ऐसा किया, श्रीभाईजीने मेरी माताजीसे कहा— आपलोग व्यर्थ ही निराश हो रही थीं। देखिये, यह हाथ जोड़ रहा है। आप लोग तनिक भी हताश न हो। भगवान मंगल ही करेंगे।

श्रीभाईजीने सबको धैर्य बँधाया और उनके कहनेसे रोग-विमुक्तिके लिये तत्काल मानस-पाठ आरम्भ कर दिया गया। थोड़ी देर बाद श्रीभाईजी गीतावाटिका चले गये। उनके जानेके बाद मेरे भाईने थोड़ा आहार भी लिया। शामको फिर डा. श्रीराजेन्द्रप्रसाद और डा. श्रीलहरी मेरे घर आये। वे तो ऐसा ही सोचते आ रहे थे कि वहाँ पहुँचनेपर रोगीके निधनका समाचार मिलेगा, पर आकर उन्होंने देखा कि रोगीकी हालत अच्छी है। मैंने दोनों डाक्टरोंको श्रीभाईजीके आनेकी बात बतलायी और कहा कि उनके आनेके बादसे ही यह सुधार दिखलायी दे रहा है। डाक्टरोंने कहा— दुर्गा बाबू ! अब आपके भाईका संकट टल गया। जिसके सिरपर संतने अपना हाथ रख दिया, वह हर प्रकारसे सुरक्षित हो गया। श्रीभाईजीने उसके मंगलके लिये मानस-पाठ आरम्भ करवाया है। संतकी कृपासे तथा पाठके प्रभावसे यह ठीक होगा ही। अब इसमें संदेहके लिये स्थान नहीं।

क्रमशः हुआ भी ऐसा ही। कुछ दिनों बाद मेरा भाई पूर्ण स्वस्थ हो गया। इस स्वास्थ्यका सारा

श्रेय मैं तो श्रीभाईजीको ही देता हूँ। समय-समयपर हमारे न जाने कितने बिगड़े हुए कामोंको श्रीभाईजीने सँभाला और सुधारा है।

[५] खोयी कलंगी मिल गयी

सन् १९७० के १८ नवम्बर को मेरी कन्याका विवाह था। यह विवाह श्रीमोहनलाल भानुलालके मकानसे हो रहा था। मैंने पूज्य श्रीभाईजी से विशेष रूपसे अनुरोध किया था कि वे कन्याको आशीर्वाद देनेके लिये अवश्य पधारें। अस्वस्थताके उपरान्त भी श्रीभाईजी पधारे और उनके पधारनेसे मैं बड़ा प्रसन्न था। श्रीभाईजी तो एक आराम कुर्सीपर विराज रहे थे। बरात जनवासेसे प्रस्थान कर चुकी थी और मैं बरातका स्वागत करनेकी दृष्टिसे वहीं द्वारपर खड़ा-खड़ा विविध व्यवस्थाओंको देख रहा था।

इसी बीच मुझे एक बड़ा अप्रिय समाचार सुननेको मिला। बरात हिन्दी बाजार, रेती चौक होते हुए गीताप्रेसकी ओर आ रही थी, तभी यह समाचार मिला कि दूल्हेके सिरपर जो कलंगी लगी हुई थी, वह न जाने कहाँ गिर गयी है। यह सुनते ही मेरे सामने अँधेरा छा गया। विवाह जैसे शुभ अवसरपर यह एक महान अपशकुन था। मेरी कन्याके दाम्पत्य-जीवनके आरम्भमें ही जब यह अपशकुन घटित हो गया, तब भविष्यमें उसे न जाने क्या-क्या भोगना पड़ेगा। इसके अलावा वह कंलगी माँग करके लायी हुई वस्तु थी। उस कंलगीमें जवाहरात लगे हुए थे। कलंगीका मालिक न जाने कितना मूल्य बतलायेगा। उसका मूल्य चुकानेमें ही मैं बिक जाऊँगा। मेरी खिन्नताकी सीमा नहीं थी। उदास चेहरा लिये हुए मैं श्रीभाईजीके पास खड़ा हो गया। श्रीभाईजीने मेरी उदासीका कारण पूछा। कलंगीके खो जानेकी बात मैंने उन्हें बता दी। तब श्रीभाईजीने कहा— उसे जाकर खोजो, जाकर देखो कि कहाँ गिर गयी है। खोज करनेसे ही तो वह मिलेगी।

श्रीभाईजीके कहनेपर मैं गया अवश्य और सड़कपर इधर-उधर खोजा भी, पर वह मिली नहीं। बाजे बज रहे थे। कोलाहल हो रहा था। दूल्हेके साथ बरात धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। सड़कपर बहुत भीड़ थी। ऐसी स्थितिमें कलंगीके वापस मिलनेकी कल्पना करना भी एक मूर्खता थी। जनवासेसे लेकर बरात जहाँतक आ चुकी थी, वह सारी सड़क मैंने देखी ली, पर निराशा ही हाथ लगी। मैं और भी अधिक खिन्न और चिन्तित हो उठा। पुनः आकर मैं श्रीभाईजीके पास खड़ा हो गया। श्रीभाईजीने मुझसे पूछा— क्या कलंगी मिल गयी ?

मैंने खिन्नताभरे स्वरमें कहा— ऐसी कीमती चीज सड़कपर गिर जाय और वह भी चालू सड़कपर, फिर वह कैसे मिल सकती है ?

मेरे आँखोंकी एक-एक हलचलमें और बोलके भी एक-एक शब्दमें घोर व्यथा और चिन्ता समायी हुई थी। मेरी व्यथा श्रीभाईजीको सह्य नहीं हुई। जाड़ेके दिन थे। भाईजी शाल ओढ़े कुर्सीपर बैठे हुए थे। वे कुर्सीपरसे उठे और अपनी शाल झाड़ दी। शालके झाड़ते ही उसमेंसे कलंगी जमीनपर गिर पड़ी। कलंगीको देखकर मेरा मन आनन्दसे भर गया। मैंने कलंगी उठा ली और जाकरके दूल्हेके सिरपर लगा दी।

बरात घरके द्वारपर आयी। बरातका सुन्दर स्वागत हुआ और द्वार-पूजा हुई। सब मांगलिक नेगचारोंके हो जानेके बाद बराती जनवासे चले गये और श्रीभाईजी गीतावाटिका लौट गये।

विवाहकी उस भीड़-भाड़में तथा कार्यकी व्यस्ततामें अभीतक मुझे इस प्रसंगपर गहराईसे कुछ सोचनेका अवसर नहीं मिल पाया था। सभी लोगोंके चले जानेपर जब कुछ अवकाश मिला, तब रह-रह करके मुझे आश्चर्य होने लगा कि कहाँ तो वह बरात मार्गके बीचमें थी और कहाँ श्रीभाईजी मेरे द्वारपर बैठे थे, कहाँ वह कलंगी तब दूल्हेकी सिरसे मार्गमें गिर पड़ी थी और कहाँ वह कलंगी अब श्रीभाईजीके शालसे निकल पड़ी थी। श्रीभाईजीके अनन्त सामर्थ्य और अचिन्त्य सौहार्दको देखकर मैं अत्यधिक विस्मित और विगलित हो रहा था, जिसने मेरी लज्जाको रख लिया और मेरी कन्याके भविष्यको मंगलमय बना दिया। ■

पं. श्रीसूरजमलजी शर्मा

महत्प्रसाद

मैं रतनगढ़का साधारण स्थितिका एक ब्राह्मण हूँ। मेरी क्षीण स्मृतिके अनुसार सन् १९५० के आरम्भमें पूज्य श्रीराधा बाबाने पूज्य श्रीभाईजीकी दीर्घायुके लिये एक अनुष्ठान गोरखपुरकी गीतावाटिकामें करवाया था। यह अनुष्ठान कई मास चला था। अनुष्ठानके लिये रतनगढ़से मुझको बुलाया गया था। बुलानेके लिये जो पत्र गया था, उसमें कुछ कठोर नियमोंका उल्लेख करते हुए यह कहा गया था कि यदि ऐसा नियम-निष्ठ जीवन अनुष्ठानके अवधिमें स्वीकार हो तो गोरखपुर पधारनेकी कृपा करें।

इस पत्रको पढ़कर मुझे ऐसा लगा कि किसी महान कार्यके लिये भगवानने मुझे यह अवसर दिया है। मेरा जीवन तो अनेक प्रकारकी कमियों और कमजोरियोंसे भरा हुआ था, पर इसे एक शुभ अवसर मानकर मैंने यह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। रतनगढ़से मैं और पं. श्रीमोतीलालजी पारीक, हम दोनों गोरखपुर आये और पूज्य बाबाके निर्देशानुसार अनुष्ठान आरम्भ कर दिया गया। दैवी कृपासे अनुष्ठानके पूर्ण होनेपर प्राप्त सफलता बहुत संतोषप्रद रही। बाबाने भूरि-भूरि सराहना की तथा आशीर्वाद दिया।

जब श्रीभाईजीसे बात हुई तो उन्होंने सुझावके रूपमें एक निवेदन किया— आपको तो अब गंगातटपर जीवन व्यतीत करते हुए गायत्री पुरश्चरण करना चाहिये। भविष्यमें माँ गंगा और भगवती गायत्रीका आश्रय न छोड़े तो आपके लिये सर्वोत्तम बात रहेगी।

मैं नही जानता कि श्रीभाईजीने भावके किस धरातलसे यह बात कही थी, पर उसका प्रभाव मेरे मनपर बड़ा गहरा हुआ। उनकी बात मेरे अन्तरको छू गयी। मैंने तत्काल वैसा निश्चय कर लिया और मैं हरिद्वार आ गया। जब मैं हरिद्वार आया था, उस समय मेरी आयु पचाससे अधिक थी और अब नब्बेसे ऊपर है। वस्तुस्थितिको व्यक्त करनेमें कुछ संकोच हो रहा है, पर यह सत्य है कि मुझ साधारण ब्राह्मणपर श्रीभाईजीकी महत्कृपा बरस पड़ी। आजकल मेरे भीतर जैसी निर्विकारिता और जैसी शान्ति छायी हुई है, उससे मेरे आनन्दकी सीमा नही है। इस समय मेरे जीवनमें जो भी अच्छाई है, वह है श्रीभाईजीकी महत्कृपाका महत्प्रसाद। ■

श्रीओंकारमलजी सारस्वत

सिद्धान्त-निष्ठा

सन् १९५२ में भारतमें सर्वप्रथम आम चुनाव हुए थे, उस समयकी बात है। हमारे रतनगढ़ शहरके पण्डित श्रीगौरीशंकरजी आचार्य हम सभीके लिये परम आदरणीय रहे। उनका सदाचार और उनका पाण्डित्य देखकर हमलोग सदैव नतमस्तक रहते थे। उस प्रथम आम चुनावमें कांग्रेसकी टिकटपर श्रीआचार्यजी रतनगढ़से प्रत्याशीके रूपमें चुनावके लिये खड़े हुए। हमलोग कुछ निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि अपना मतदान किसे दें। हमलोगोंने अपनी उलझन पूज्य श्रीभाईजीके सामने रखी। हमारी उलझनको जानकर श्रीभाईजीने लिखकर भेजा—

पण्डित श्रीगौरीशंकरजी आचार्यके प्रति मेरे मनमें सद्भावना थी और है, पर यदि वे कँाग्रेसके टिकटपर लोकसभाके सदस्य होते हैं तो उनका व्यक्तित्व कांग्रेसके हाथ बिक जाता है और फिर इन्हें कँाग्रेसकी नीतिका समर्थन बरबस करना पड़ता है। माननीय पण्डित श्रीनेहरूजीने हिन्दू कोड बिलको कँाग्रेसकी चीज घोषित कर दी है। यही बात गोवध सम्बन्धी कानूनके सम्बन्धमें है। उन्होंने स्पष्ट रूपसे कह दिया है कि गोवधके कतई बन्द होनेका कानून कँाग्रेस नहीं बना सकती। ऐसी अवस्थामें मेरे जैसा आदमी उन जैसे व्यक्तिके प्रति श्रद्धा और सद्भाव रखते हुए भी हिन्दूकोड और गोवधका प्रकारान्तरसे समर्थन करनेवाली संस्थाके टिकटपर खड़ा होनेवाले व्यक्तिका समर्थन नहीं कर सकता। आशा है कि मेरी स्थिति आप समझ गये होंगे। सम्मान्य श्रीगौरीशंकरजी आचार्यसे मेरा सविनय प्रणाम कहियेगा। सिद्धान्तके कारण ही मैंने आचार्यजीके पक्षका समर्थन नहीं किया। इस विवशताके लिये मुझे बड़ा ही संकोच है। उनके व्यक्तित्वके प्रति मेरी श्रद्धा पहले भी थी और अब भी है ही। अब तो यही इच्छा है कि जितने श्वास बाकी हैं, भगवानके स्मरणमें ही बीतें।

सिद्धान्तके आधारपर श्रीभाईजीकी दृढ़ताको देखकर हमलोगोंको बड़ा बल मिला। श्रीआचार्यजी हमलोगोंके लिये श्रद्धास्पद रहे, पर श्रीभाईजीके विचारोंको पढ़कर मनको बड़ी प्रेरणा मिली कि जीवनमें व्यक्तिको नहीं, सिद्धान्तको महत्त्व देना चाहिये। ■

पं. श्रीनरसिंहप्रसादजी पारीक

आर्थिक संकटका निवारण

प्रसंग सन् १९५५-५६ का है। पैतृक कार्य छोड़कर मैंने व्यापार करनेका निश्चय किया। निश्चयके अनुसार नापासरसे नेपालके विराटनगर चला गया और वहाँ पाटका काम आरम्भ कर दिया। संयोगकी बात, पाटके व्यापारमें बहुत बड़े घाटेका सामना करना पड़ गया। माल

बेचकर बाजार वालोंका तो पैसा चुका दिया, परंतु आत्मीय जनोंके रुपये वापस नहीं कर पाया। जीवनमें कभी भी ऐसा आर्थिक संकट नहीं आया था। नापासर घरवालोंको मैंने पत्र देना बन्द कर दिया। चिन्ता और ग्लानि इतनी अधिक थी कि विरक्त होनेकी बात मनमें आने लग गयी। खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना-जगना, कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। स्नेह और सम्मान देने वाले व्यक्ति भी उपेक्षा करने लग गये। वापस घरपर जानेका साहस नहीं हो रहा था। ऐसी विषम और विकट निराशापूर्ण स्थितिमें मुझे श्रीभाईजी (सर्व सुहृद श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) की याद आयी।

मैं विराटनगरसे राजस्थानके लिये चल पड़ा। अपने घर नापासर जानेके पहले मैं रतनगढ़ गया श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये। उन दिनों श्रीभाईजी रतनगढ़में विराज रहे थे। ट्रेनसे उतरकर मैं सबेरे चार बजेके लगभग उनके पास पहुँचा। मैंने अपने आर्थिक संकटकी विषम दशा उन्हें बतलायी। स्थितिको सुनकर श्रीभाईजीकी आँखें भर आयीं। उन्होंने कहा– इस संकटसे मुक्ति पानेके लिये मैं आपको अनुष्ठान बतलाता, पर मैंने अभी स्नान नहीं किया है।

मैंने उनसे निवेदन किया– मुझे अपनी व्यथा आपको सुनानी थी, वह मैंने सुना दी। आगे अब आप जाने।

इसके बाद मैं अपने गाँव नापासर चला आया। संयोग कुछ ऐसा बना कि सात-आठ दिनोंके बाद ही मुझे श्रीभाईजीका पत्र रतनगढ़से मिला। पत्रमें उन्होंने लिख रखा था कि मैं अमुक तारीखको नापासर आ रहा हूँ। मेरे साथ बाबा और सावित्रीकी माँ, रामसनेही आदि रहेंगे। मैं आपके घरपर ही ठहरूँगा।

पत्र पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और कार्यक्रमके अनुसार निश्चित तिथिपर सभी लोगोंके साथ श्रीभाईजी नापासर आये। वे हमारे घरपर ही ठहरे। उनके पधारनेसे गाँवमें सत्संगका वातावरण बना। दूसरे दिन जब श्रीभाईजी जाने लगे तो वे मोटरमें बैठ गये। बैठनेके बाद अपनी पाकेटसे एक पन्ना निकालकर उन्होंने मुझे दे दिया। विदाईके उन क्षणोंमें पन्नेको देखनेके लिये समय नहीं था। मोटरके चले जानेके बाद मैंने वह पन्ना खोलकर देखा। *उस पन्नेमें आर्थिक संकटसे मुक्ति पानेके लिये दो अनुष्ठान लिखे हुए थे। पहला अनुष्ठान था श्रीमद्भागवत महापुराणके गजेन्द्रमोक्षका पाठ और दूसरा वाल्मीकि रामायणके सुन्दरकाण्डका पाठ।* मेरा श्रीभाईजीसे आन्तरिक अपनत्व था और उनपर सहज विश्वास था। उन्होंने जब यह अनुष्ठान बतलाया है तो अवश्य करना चाहिये, अतः मैंने यह अनुष्ठान किया। अनुष्ठानकी सफलताके बारेमें मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि अनुष्ठान पूरा होते-होते वह आर्थिक संकट दूर हो गया। केवल दूर ही नहीं हुआ, अपितु अपनी गृहस्थीको चलानेके लिये आर्थिक स्थितिमें पर्याप्त सुधार आ गया। मैं तो विपत्तिके सागरमें डूब रहा था, उस सागरसे श्रीभाईजीने मुझको ऊबार लिया। ऐसे आर्त-त्राण-परायण श्रीभाईजीके श्रीचरणोंमें सादर अभिवन्दन।

श्रीभाईजीने ये दोनों अनुष्ठान सन् १९६५ के जनवरी माहमें प्रकाशित भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अंकके पृष्ठ ६२१-२४ पर छाप रखे है। इन अनुष्ठानोंसे लाभ उठानेवाले भाईको कल्याणके इस विशेषांकके इन पृष्ठोंको देखना चाहिये। ■

श्रीराधेश्यामजी खेमका

भक्तवाञ्छा-कल्पतरु

परम श्रद्धास्पद श्रीभाईजी संत-परम्पराके एक रत्न थे। जिन लोगोंने श्रीभाईजीके सत्संगका लाभ प्राप्त किया है, वे परम धन्य हैं। पूज्य श्रीभाईजीका भगवत्कृपापर अटूट विश्वास था, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव वे स्वयं किया करते थे और अपने सम्पर्कमें आनेवालोंको भी कराते थे। कुछ वर्ष पूर्व वे काशी पधारे हुए थे। मैं भी उनके दर्शनार्थ गया। प्रभु-कृपाके सम्बन्धमें चर्चा चल रही थी। पूज्य श्रीभाईजीने कहा— *प्रभुकी कृपा तो सदा अहर्निश संसारके प्रत्येक प्राणीपर रहती ही है। हमें केवल उस कृपाके अनुभव करनेकी आवश्यकता है।*

हमलोगोंने भगवत्कृपाकी चर्चा सुन ली। दूसरे ही दिन श्रीभाईजीके सांनिध्यमें भगवानकी कृपाका एक प्रत्यक्ष चमत्कार भी देखनेको मिला। पूज्य श्रीभाईजीकी प्रेरणासे उनके एक बहुत पुराने प्रेमी श्रीआनन्दरामजी जालान काशीवासके निमित्त कुछ दिनोंसे काशीमें निवास कर रहे थे। उनकी यह दृढ़ इच्छा थी कि अन्तिम समयमें मुझे पूज्य श्रीभाईजीके दर्शन प्राप्त हो जायँ और उनके चरणोंमें ही मैं अपने प्राण-त्याग करूँ, पर क्या यह भी किसीके वशकी बात है? वृद्धावस्था थी तथा कुछ समयसे वे अस्वस्थ चल रहे थे, किंतु अस्वस्थता सामान्य थी, कोई विशेष बात नहीं थी। श्रीभाईजी उनसे मिलनेके लिये उनके निवास स्थानपर गये और अत्यन्त प्रसन्न मुद्रामें श्रीजालानजीसे बातचीत की। श्रीजालानजीने अपनी आन्तरिक इच्छा श्रीभाईजीके सामने प्रकट की। श्रीभाईजी मुस्कुरा दिये।

अचानक परिस्थितिने करवट बदली। जिस रात्रिको श्रीभाईजी उनसे मिलने गये, उसी रात्रिको अचानक तीन बजे श्रीआनन्दरामजीकी स्थितिमें विशेष परिवर्तन हुआ। ऐसा लगा कि उनके लिये भगवानके घरका बुलावा आ गया है। इसका अनुमान स्वयं श्रीआनन्दरामजीको भी होने लगा। उन्होंने कहा— श्रीभाईजीको बुला लिया जाय।

श्रीभाईजीको तत्काल इसकी सूचना दी गयी। सूचना प्राप्त होनेके बाद पूज्य श्रीभाईजीको वहाँ पहुँचनेमें देर ही क्या हो सकती थी? उनके पहुँचते ही श्रीआनन्दरामजीका पाञ्चभौतिक शरीर शान्त हो गया। अप्रत्याशित रूपमें श्रीजालानजीकी अन्तिम अभिलाषा पूरी हुई। मणिकर्णिका घाटपर चिता लगायी गयी और उसपर श्रीआनन्दरामजीका पार्थिव शरीर रखा गया। ज्यों ही अग्नि-संस्कारका समय आया और जिन-ब्राह्मणदेवको उनके पुत्रोंकी अनुपस्थितिमें अन्त्येष्टि-संस्कारके लिये बुलाया गया था, उन्होंने अग्नि-संस्कार करना अस्वीकार कर दिया। एक नयी समस्या खड़ी हो गयी। सभी लोग उन्हें समझाने लगे। इस प्रकार दस-पन्द्रह मिनट उन्हें समझानेमें लग गये, पर वे तैयार नहीं हुए। उसी क्षण एक और ईश्वरीय चमत्कार दिखायी पड़ा। श्रीआनन्दरामजीका एक पुत्र, जो बिहारमें रहता था तथा जिसके आनेका न कोई समाचार था, न कोई आशा थी और न कोई कल्पना थी, उसी समय आकर चिताके समक्ष खड़ा हो गया। श्रीजालानजीका दाह-संस्कार पुत्रके ही द्वारा होना था। यदि ब्राह्मणदेव उस क्षण अस्वीकार न करते और उन्हें समझाने-बुझानेमें दस-पंद्रह मिनटकी

देर न होती तो पुत्रको यह अवसर कैसे प्राप्त होता ? सभी लोग आश्चर्यचकित थे। समस्याका समाधान भगवानने किस रूपमें दिया, यह कोई समझ नहीं पा रहा था।

पूज्य श्रीभाईजीने गत दिवस इतना ही कहा था– प्रभुकी कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव करो।

इस घटना द्वारा सत्यका प्रत्यक्षीकरण हो गया। साथ ही यह ज्ञात हुआ कि संतके प्रति की गयी सच्ची अभिलाषा भगवान पूर्ण करते हैं। ■

वैद्यराज पं. श्रीविद्याधरजी शुक्ल

दयाके सागर

दयाके तो श्रीभाईजी सागर थे। जब मैं पहले-पहल गोरखपुर आया, गीताप्रेसके मुद्रक एवं संचालक श्रीघनश्यामदासजी जालान मुझे श्रीभाईजीके पास ले गये। श्रद्धेय श्रीभाईजीका सत्संग हुआ। मैं सत्संगमें था ही। सत्संग पूर्ण होनेपर श्रीघनश्यामदासजीने श्रीभाईजीसे मेरा परिचय कराया और कहा– ये पण्डितजी शास्त्रोंके ज्ञाता, कर्मकाण्डी, ज्योतिषी और आयुर्वेदमें निपुण हैं। अपने यहाँ औषधालयमें प्रधान वैद्यके स्थानपर आये हैं।

महामना श्रीभाईजीने अन्तर्दृष्टिसे देख लिया कि पंडितजी सभी बातोंमें निपुण हैं, किन्तु अर्थाभावमें हैं और अर्थके लिये आये हैं। भक्त सुदामा सर्वशक्तिमान श्रीकृष्णके पास आकर खाली हाथ कैसे लौट सकते हैं ? चाहे प्रत्यक्षमें न माँगते हों, किन्तु किसी आग्रहसे ही आये हैं। मेरे पास आनेका फल तो मिलना ही चाहिये। दयासागर जो ठहरे। श्रद्धेय श्रीभाईजीने नाटक किया। उन्होंने मेरे पैर छूए, प्रणाम किया और 'आइये' कहकर भीतर ले गये। भीतर ले जाकर मुझे एक रजत-मुद्रा दी। श्रीभाईजी रुपया अपने पास रखते नहीं थे। जब किसीको कुछ देना होता था, तब अपने किसी व्यक्तिसे दिलवा देते थे। यह मैंने बहुत बार देखा है, किन्तु जहाँतक मुझे स्मरण है वह रुपया श्रीभाईजीने किसीसे लिया नहीं। मैं बहुत देरसे उनके पास बैठा था। श्रीभाईजीने अपनी मुट्ठीसे रुपया निकाला और आग्रह करके मेरे हाथमें दे दिया। मैंने कई बार अस्वीकार किया, किन्तु श्रीभाईजीका बार-बार निवेदन था– लेना ही होगा।

मैंने ले लिया। रुपयेका स्पर्श होते ही मन बदल गया और मैं सोचने लगा– महापुरुषने दिया है, इसमें कोई रहस्य होगा।

मुद्रा ले आया और घर पहुँचकर उसे सुरक्षित स्थानपर रख दिया। वह मुद्रा जबसे आयी, तभीसे मेरे घरमें लक्ष्मीदेवीका आगमन आरम्भ हुआ, अकेली श्रीलक्ष्मीजी ही नहीं, परमदयालु श्रीभगवान भी हृदयमें आ गये। यह है दयासागरकी दयालुता। ■

श्रीगोपाल सिंहजी विशारद

श्रीराम जन्म-भूमि

हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू आदर्श और हिन्दू जीवन शैलीका समग्र दर्शन हमें मिलता है मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीरामके पावन चरित्रमें और उनका पावन जन्म-स्थान है पवित्र

तीर्थ अयोध्या। उनके जन्म-स्थानपर चौसठ कसौटीके कलापूर्ण स्तम्भोंपर बने हुए भव्य मन्दिरको मुगल बादशाह बाबरने लगभग पाँच सौ वर्ष पहले ध्वस्त करावा दिया था। तबसे उस पावन श्रीराम जन्म-स्थानपर पुनः मन्दिर-निर्माणके लिये हिन्दू जाति संघर्ष करती रही। २३ दिसम्बर १९४९ को भगवत्कृपासे एक विशेष प्रसंग घटित हो गया। ब्राह्म मुहूर्तकी शुभ वेलामें श्रीरामजन्म-स्थानमें प्रकट मूर्तिसे एक ऐसी चामत्कारिक किरण छिटक पड़ी, जिसकी शान्त एवं सुखमयी प्रभासे प्रभावित भक्तजन आनन्दविभोर हो गये। यह शुभ समाचार विद्युत्प्रवाहकी भाँति चारों ओर फैल गया।

कोर्टमें केस दायर किया गया, और श्रीभाईजीके कानमें भनक पड़ी कि सरकार प्रकट हुए श्रीरामललाके श्रीविग्रहको मन्दिरसे हटवा देना चाहती है। श्रीभाईजीने तुरन्त देशके अनेक प्रमुख व्यक्तियोंके पास व्यक्तिगत स्तरपर पत्र लिखते हुए निवेदन किया– *'अयोध्यामें श्रीरामजन्मभूमिका प्राचीन स्थान है। बीचमें मुसलिम राज्यके समय उसपर मुसलमानोंने अधिकार करके मसजिद बना ली थी। हालमें कहा जाता है कि यहाँ भगवान श्रीरामकी मूर्ति प्रकट हुई है। इस समय वहाँ अखण्ड कीर्तन और रामायण पाठ हो रहा है। सुना गया है कि सरकार मूर्ति हटवा देनेके पक्षमें है और नाना प्रकारसे मूर्ति हटवानेका प्रयत्न कर रही है। आप जानते ही हैं कि भगवान श्रीरामकी जन्मभूमिका सम्बन्ध देशभरके तमाम हिन्दुओंसे है। रामजन्मभूमिसे भगवान श्रीरामकी मूर्ति हट गयी तो हिन्दुओंके छिने हुए देवमन्दिरोंको वापस प्राप्त करनेमें बड़ी कठिनता होगी। अतएव आपसे निवेदन है कि आप अपने यहाँ भिन्न-भिन्न प्रभावशाली व्यक्तियों, संस्थाओं और सभायें करके उनके द्वारा दिल्ली और लखनऊ सरकारके पास तार भिजवाइये।'*

श्रीभाईजीके प्रयाससे समाजमें अनुकूल वातावरणकी सृष्टि हुई तथा कोर्टने जो निर्णय दिया, वह हिन्दुओंकी भक्ति-भावनाका पोषक था। श्रीवीरसिंहजी, सिविल जज, फैजाबादने सरकारको आदेशात्मक सूचना दी– जबतक विवादका अन्तिम निर्णय न हो जाय, तबतक मूर्ति जहाँपर विराजमान है, वह वहींपर सुरक्षित रहे और उसकी सेवा-पूजादिक विधिवत् हो।

श्रीभाईजी अयोध्या पधारे और अपने प्रवचनों एवं उपदेशों द्वारा उन्होंने सरकारकी गतिविधियोंसे निराश जनता और कार्यकर्ताओंको प्रोत्साहित किया एवं आशान्वित बनाया। उस दिनों वहाँ श्रीराम-जन्म-भूमिमें पूजादिक सम्बन्धी तथा अभियोग सम्बन्धी निरन्तर व्ययकी जितनी आवश्यकता थी, इस समस्त व्ययका भार श्रीभाईजीने सानन्द और सहजमें ही उठा लिया। श्रीराम-जन्म-भूमिके इस महान कार्यके लिये आपने देशके धन-पतियोंका ध्यान भी आकर्षित किया। जन्म-भूमि सम्बन्धी इन व्ययोंके अतिरिक्त कभी-कभी विशेष व्ययकी भी आवश्यकता पड़ जाती थी। इसके लिये सबसे सरल तथा सीधा उपाय हमारे लिये गीतावाटिकाका द्वार ही था।

अभियोगके सम्बन्धमें श्रीभाईजीने अनेक ऐसे शिक्षित तथा इसलामधर्मके ज्ञाता मुसलमान बन्धुओंकी खोज की, जो सिद्धान्ततः और तर्कतः जन्म-भूमिको मुसलिम वन्दनागृह मानना इसलाम धर्मके विरुद्ध मानते और सिद्ध करते थे। जन्म-भूमिके पक्षमें वातावरण-निर्माणके लिये उन मुसलमान बन्धुओंमेंसे कुछको श्रीभाईजीने अयोध्या भी भेजा। उन्होंने अयोध्या आकर उन

विचारोंको जनताके समक्ष रखा तथा समाचारपत्रोंमें भी प्रकाशित करवाया। इतना ही नहीं, उन मुसलमान बन्धुओंने जन्म-भूमि-विरोधी मुसलिम नीति-रीतिकी भर्त्सना की। सन्तुलित चिन्तन करने वाले राष्ट्रीय विचारधारावादी मुसलमान बन्धुओंको तो श्रीभाईजीने समाजके सामने खड़ा किया ही, इसके अतिरिक्त श्रीभाईजीने देशके प्रधान प्रशासनाधिकारियों, जननेताओं एवं विद्वानोंको बार-बार पत्र लिखकर इस पुनीत कार्यमें सहयोग करनेकी प्रेरणा दी। मैं तो यही कहूँगा कि जिस प्रकार उस त्रेतायुगमें बनवासी श्रीरामजीके सहायक किष्किन्धाके संतप्रवर श्रीहनुमानजी हुए थे, उसी प्रकार इस कलियुगमें अयोध्याकी जन्म-भूमिपर श्रीराम-मन्दिरके निर्माणमें सहायक सिद्ध हुए गीतावाटिकाके संतवर श्रीहनुमानप्रसादजी। ■

श्रीनारायणचन्द्रजी गोस्वामी (कीर्तनिया)

अपरिचितके प्रति अपनापन

गीतावाटिकामें जो अखण्ड हरिनाम संकीर्तन हो रहा है, उसमें मैं हरिनाम-गायन करता हूँ। मैं सबसे पहले सन् १९६८ में आया था। अब तो बहुत जान-पहचान हो गयी है, पर तब मैं था पूर्णतः अपरिचित। किसीसे भी कोई जान-पहचान नहीं थी। उस समय मेरी धर्मपत्नी भी बंगालसे मेरे साथ आयी थी और यहाँ उसने पुत्रको जन्म दिया। परिचयका अभाव तो था ही, धनका अभाव, वस्तुका अभाव, इस प्रकार अनेक अभावोंसे मैं परेशान था। मैं सोच नही पा रहा था कि क्या करूँ। किसीसे कुछ कहनेकी हिम्मत ही नहीं हो रही थी। न जाने किसने पुत्र-जन्मकी सूचना परम वैष्णव पूज्य श्रीभाईजीको दे दी। उसी समय श्रीभाईजीने इक्यावन रुपयेकी मिठाई मँगवाकर मेरे पास भिजवा दिया और कहलवा दिया कि हरिनाम संकीर्तनमें श्रीठाकुरजीको भोग लगाकर सबको बाँट दें। यह कितने विस्मयकी बात है कि पुत्रका जन्म हुआ मेरे घर और आनन्द मना रहा था श्रीभाईजीका हृदय।

बात केवल इक्यावन रुपयेकी मिठाई तक ही नहीं रही। उन्होंने नवजात शिशुके लिये वस्त्र, औषधि एवं आहारकी भी व्यवस्था की। मैं सर्वथा नवीन एवं अपरिचित व्यक्ति था, पर श्रीभाईजीकी ओरसे सँभालकी कमी नहीं थी। श्रीभाईजीके हृदयमें मानव मात्रके प्रति जो अपनापन है, उसे देखकर मेरा मन सदाके लिये उनके श्रीचरणोंमें झुक गया। ■

श्रीकृष्णदत्तजी शर्मा

खड्डा ग्राममें

श्रीभाईजीको मैं ताऊजी मानता हूँ। मेरे पूज्य पिता श्रीगोवर्धनजी शर्मा लगभग पचास वर्षोंसे उनके निकट सम्पर्कमें रहे। श्रीभाईजीने उन्हें सगे छोटे भाईसे भी अधिक माना और जनसेवाके कार्योंमें उनका निस्संकोच सहयोग लेते रहे। श्रीभाईजीका सम्पूर्ण जीवन सेवा-कार्योंसे भरा था। कोई उनका क्या वर्णन करे ? एक घटनाका उल्लेख करता हूँ। एक बार गोरखपुर जिलेके खड्डा ग्राममें आग लगी। आसपासके कई गाँव जल गये। श्रीभाईजीको पता चला वे तुरन्त मोटर

निकलवा करके चल पड़े।

वहाँ पहुँचकर अग्निकाण्डसे जले हुए दृश्यको देखकर श्रीभाईजीके नेत्र जलसे पूर्ण हो गये। उन्होंने पिताजीसे कहा— गोवर्धनजी, आप यहीं रहें, मैं गोरखपुर जाकर प्रबन्ध करता हूँ। आप नालीदार टीनोंसे, वस्तु-अनाज आदिसे इनकी सहायता कीजिये। रुपये एक बार यहाँके किसी व्यापारीसे उधार ले लें, गीताप्रेसके नाम लिखवाकर।

ऐसा था उनका हृदय। वे कहने लगे— हम पक्के मकानोंमें रहते हैं और इन बेचारोंके झोपड़े थे, वे भी जल गये।

करुणा उनमें कूट-कूटकर भरी थी। किसीके कष्टको देखकर वे स्वभाविक रूपसे आर्द्र हो जाते थे। श्रीभाईजी पिताजीसे बराबर कहते थे— *सेवा-भाव मनमें होता है, सेवाकी दुकान नहीं होती।* ■

श्रीमदनलालजी जालान

वैवाहिक प्रथाओंमें सुधार

२२ अक्टूबर १९६७ को पूज्य श्रीभाईजीके दौहित्र प्रिय श्रीसूर्यकान्तकी सगाई हुई। सगाईके अवसरपर जो देवाराधन आदि शास्त्रसम्मत विविध धार्मिक कृत्य होते हैं, उनको सम्पन्न करानेके लिये कन्यापक्षकी ओरसे पं. श्रीमूलराजजी शास्त्री कानपूरसे आये थे और वरपक्षकी ओरसे पं. श्रीरामजीलालजी शास्त्री उपस्थित थे। सगाईके नेगचार होनेमें एक-दो घंटेका विलम्ब देखकर दोनों ही विप्रवर श्रीभाईजीके कमरेमें बैठ गये तथा विवाहकी तिथि तथा मुहूर्तपर परस्परमें बातचीत करने लगे। शुभ-विवाहका मंगल-संस्कार गोधूलि वेलाका हो या मध्य रात्रिका, इसीपर विचार-विनिमय हो रहा था। श्रीभाईजी चाहते थे कि मंगल-संस्कार गोधूलि वेलाका हो, जिससे अन्य वैवाहिक नेगचार सुविधा पूर्वक हो जायें। अपने इस विचारको व्यक्त करते हुए श्रीभाईजीने कहा— हमें कुछ लेना-देना करना नहीं है। दहेज लेना नहीं है। मर्यादानुसार और सादगी सहित विवाह हो जाय, यही कामना है।

कन्यापक्षके पण्डित श्रीमूलराजजीने श्रीभाईजीके विचारोंकी सराहना करते हुए कहा— यह तो बहुत ही अच्छी बात है। आपका दृष्टिकोण और प्रयास सुधारवादी है, यह बड़ा उत्तम है।

पण्डितजीको कुछ अधिक कहनेका अवसर नहीं देकर श्रीभाईजी तुरंत बीचमें बोल पड़े— *सुधारवादी नहीं, आध्यात्मिक। आजके सुधारवादी दहेजको समाप्त करनेके साथ-साथ देवी-देवाराधन भी समाप्त करना चाहते हैं। वे आराधनाको गौण समझते हैं। ऐसा बिलकुल नहीं होना चाहिये। शुभ-विवाहके सम्पन्न होनेमें शास्त्र सम्मत जितने भी धार्मिक कृत्य होने चाहिये, अवश्य हों, विधि-विधानसे हों और सम्यक् प्रकारसे हो, किन्तु आडम्बर नहीं हो। फिजूलखर्ची नहीं हो।*

श्रीभाईजीके विचारोंने पण्डित श्रीमूलराजजीकी चिन्तन-पद्धतिको आन्दोलित कर दिया। उन्होंने पूछा— क्या आप दहेज बिलकुल नहीं लेंगे?

श्रीभाईजीने स्पष्टीकरण किया— दहेजके नामपर कुछ भी नहीं लेना है। पिता अपनी कन्याको जो देना चाहे, दे, परंतु वह भी एक सीमातक, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। 'दात', 'आँगी-मेवा', 'हरा-भरा', 'बड़ी मिलनी' यह सब कुछ नहीं। इस फिजूलखर्ची और वृथा-आडम्बरको समाजसे दूर करनेकी बड़ी आवश्यकता है। हाँ, नेगचारके पालनके रूपमें जहाँ एक या दो, पाँच या दस रुपया देना है, भले ही दिया जाय, परंतु देशकी ऐसी स्थिति नहीं है कि समाज इस प्रकारके रीति-रिवाजोंको सहन कर सके।

पं. श्रीमूलराजजी श्रीभाईजीके विचारोंसे बड़े प्रभावित हुए। श्रीभाईजीके विचार और निर्णयका केवल अनुमोदन ही नहीं, हृदयसे समर्थन करते हुए उन्होंने कहा— आप लोग समाजके अग्रगण्य हैं। जैसा आप करेंगे, वैसा ही समाज करेगा। भगवान करे, आपके विचारों और कार्योंके अनुसार समाज आचरण करे।

गीतावाटिकाके पंडालमें इस बातचीतके बाद प्रिय सूर्यकान्तकी सगाईका नेगचार आरम्भ हुआ। वरपक्ष एवं कन्यापक्षके पण्डितोंने विधिवत् भगवान गणेश एवं अन्य देवी-देवताओंका पूजन कराया। सभीके मनमें हर्षोल्लास था। पंडालमें परिवारके लोग तो थे ही, शहरके प्रतिष्ठित नागरिक भी उपस्थित थे। सारे नेगचार हुए, परंतु सगाई होनेकी खुशीमें सामाजिक परम्परानुसार बाँटी जाने वाली मिठाई नहीं बाँटी गयी। मिठाईको नहीं बाँटनेका निश्चय पहले ही हो चुका था। कुछ दिनों पहले जब श्रीभाईजीने इस निश्चयको प्रकट किया था, तब श्रीरामदासजी जालानने श्रीभाईजीसे थोड़ा विनम्र विनोद भी किया— यह तो बड़ा 'सुन्दर' ढंग है कि पहले तो लोगोंसे काम करवा लिया जाय और फिर उनको खानेके लिये मिठाई भी न दी जाय, भले यह मिठाई सगाईकी खुशीकी ही हो।

श्रीरामदासजीसे श्रीभाईजीने कहा— लड़केका जब विवाह हो, उस मंगल अवसरपर भाई-बन्धु मिठाई अवश्य खायें, परंतु लड़केकी सगाईके अवसरपर मिठाई खिलानेकी परम्पराको डालकर और चलाकर साधारण स्तरके गृहस्थपर व्यर्थके व्ययका भार क्यों डाला जाय?

कुछ दिनों पहले श्रीरामदासजी जालानने जो मधुर विनोद किया था, वह बात श्रीभाईजीको याद थी और उस बातको ध्यानमें रखते हुए सगाईके नेगचार सम्पन्न होनेके बाद श्रीभाईजीने उठकर लोगोंके बीच अपने विचार प्रकट किये— *अपनी हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्ममें विवाह भी एक धार्मिक कृत्य है। वे सभी धार्मिक कृत्य पूर्ण विधि-विधानके साथ सम्पन्न होने चाहिये। शास्त्रकी विधि एवं मर्यादाका पूर्णतः पालन करना चाहिये, परंतु जहाँतक बन पड़े व्यर्थके आडम्बरसे दूर रहना चाहिये।* अपने समाजमें ऐसी प्रथा चल पड़ी है कि सगाईके बाद आने वाले स्वजनोंको मिठाई खिलायी जाय। पहले ऐसी प्रथा नहीं थी। इधर बीचमें यह प्रथा चल पड़ी। जहाँतक मिठाई खानेका प्रश्न है, यह घर आपका है और सभी जी भरकर खायें, खूब खायें, परंतु सगाईकी खुशीके नामपर मिठाईकी कोई व्यवस्था नहीं है। यह केवल इसीलिये कि समाजमें आडम्बरके नामपर चलने वाली और दूर-दूरतक फैली हुई इन प्रथाओंको समाप्त किया जाय। यदि लड़केकी सगाईकी खुशीमें व्यय करना ही है तो श्रेष्ठ कार्यमें व्यय करें। आज जो आये हुए स्वजन हैं, उनको मिठाई नहीं खिलाकर धन बचाया नहीं जा रहा है, अपितु इस

धनका प्रयोग अन्यत्र होगा और १००१ रुपया आर्त-जनकी सहायतामें व्यय किया जायेगा। अब आनेवाले अपने स्वजन यह मन-ही-मन लें कि उनको मिठाई दे दी गयी और सबने खा ली।

श्रीभाईजीके अन्तिम वाक्यको सुनकर सभी लोग विहस पड़े। ■

श्रीपुरुषोत्तमदासजी सिंहानिया

मातृ-सेवा-परायण

पूज्या माँके प्रति पूज्य श्रीभाईजीकी बड़ी श्रद्धा थी। भले वह सौतेली थी, पर श्रीभाईजीने उसे भी जन्मदात्री माँसे अधिक सम्मान दिया। माँजीका स्वभाव थोड़ा कड़ा था, इसके बाद भी श्रीभाईजीका सदा प्रयत्न यही रहता था कि माँजीकी रुचिके विरुद्ध कोई काम न हो। जब माँजीका शरीर वृद्ध हो गया तो श्रीभाईजीने उनकी जैसी सेवा की, उस सेवा-भावनाको देखकर आश्चर्य होता था। 'थूकनेकी इच्छा होते ही थूक हथेलीमें ले लेना' यह कहावत पूर्णतः चरितार्थ होती थी श्रीभाईजीकी सेवा-तत्परताके बारेमें। श्रीभाईजीने देखा कि अब उनका शरीर अधिक दिन नहीं रहनेवाला है तो वे माँजीको वाराणसी ले गये और मीर घाटपर ठहरे। यह बात सन् १९४६ के जनवरी मासकी है।

इन्हीं दिनों वाराणसीमें अँगरेज संन्यासी स्वामी श्रीश्रीकृष्णप्रेमजी (आदरणीय श्रीरोनेल्ड हेनरी निक्सन महोदय) आये हुए थे। आप हिमालयकी बहुत ऊँचाईपर स्थित अल्मोड़ा जिलेके घोर जंगली क्षेत्रमें निर्मित अपने 'उत्तर वृन्दावन' नामक आश्रममें रहते हुए श्रीराधाकृष्णकी भक्ति-भावनामें लीन रहा करते थे। आप उस पर्वतीय शिखरसे उतरकर श्रीजगन्नाथपुरी जा रहे थे। बीचमें भगवान श्रीविश्वनाथके दर्शनार्थ एव पूज्य श्रीमहामनाजी (पूज्य श्रीमदनमोहनजी मालवीय) से संभाषणार्थ आप वाराणसी दो-तीन दिनके लिये रुक गये थे। आप एक साक्षात्कारी महात्मा थे। स्वामी श्रीश्रीकृष्णप्रेमजीके लेख प्रायः कल्याणमें छपते रहते थे। श्रीभाईजीको वाराणसीमें उपस्थित जानकर स्वामी श्रीश्रीकृष्णप्रेमजी उनसे मिलनेके लिये आये। श्रीभाईजीने बड़े प्रेमसे उनके साथ संभाषण किया। स्वामी श्रीश्रीकृष्णप्रेमजीके अतिरिक्त प्रज्ञा चक्षु स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज, वृद्ध संत श्रीसतीशचन्द्रजी मुखर्जी आदि-आदि महात्मा भी श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये पधारे। श्रीभाईजी संतों-महात्माओंके सत्कार-सम्मानमें समय देते हुए भी पूज्या माँजीकी सेवा-शुश्रूषाके कार्यमें सतत सावधान रहते थे।

माँजीको अत्यधिक कष्ट हो रहा था। माँजीके पास ही स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज बैठे हुए थे। माँजीके सीमातीत कष्टको देखकर स्वामीजी महाराजसे पूछा गया— माँजीके लिये अब क्या करना चाहिये ?

कुछ देर विचार करनेके बाद स्वामीजी महाराजने कहा— इनके कल्याणके लिये मन-ही-मन शुभ संकल्प करना चाहिये।

गोरखपुरसे आये हुए भाई श्रीकन्हैयालालजी जालान माँजीके अत्यधिक कष्टसे बड़े व्यथित थे। उनको स्वामीजी महाराजका सुझाव बड़ा प्रिय लगा। स्वामीजी महाराजके चले जानेके थोड़ी

देर बाद उन्होंने श्रीभाईजीसे आग्रह पूर्वक निवेदन किया— माँजीका कष्ट-भोग देखा नहीं जा रहा है। कष्टसे विमुक्तिके लिये आप भगवानसे प्रार्थना कीजिये।

अन्य भाइयोंने भी श्रीभाईजीसे ऐसा ही अनुरोध किया। फिर श्रीभाईजीने क्या किया, इसका तो पता नहीं, पर शामके समय माँजीका कष्ट कम हो गया। माँजी खाटपर ऐसे सुखपूर्वक लेटी थीं, मानो नींद ले रही हों। इससे सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई, पर यह प्रसन्नता दूसरे दिन तिरोहित हो गयी। दूसरे दिनके सूर्योदयसे उस कष्ट-भोगने फिर भीषण रूप ले लिया। यह देखकर श्रीभाईजीने कहा— आप लोगोंके आग्रहपर माँजीका कष्ट कम करनेके लिये मैंने कल भगवानसे प्रार्थना की थी। इससे एक बार कष्ट कम हुआ, पर फिर उसने वैसा ही रूप धारण कर लिया। इससे यह मालूम होता है कि भगवानकी इच्छा ऐसी ही है। सच पूछा जाय तो कष्टका निवारण करनेके लिये भगवानसे प्रार्थना करना एक प्रकारसे भूल ही है। ऐसी प्रार्थना तो परम सुहृद भगवानकी मंगलमयी योजनाके प्रति अविश्वासका परिचय देता है। भगवान वही करते हैं, जो जीवमात्रके लिये कल्याणकारी होता है। हमलोगोंको तो यही प्रार्थना करनी चाहिये कि हे नाथ आप वही करें, जो परम मंगल हो।

भगवानके मंगलमय विधानपर श्रीभाईजीकी आस्थाको देखकर हमलोगोंको बड़ी प्रेरणा मिली। माँजीकी अत्यधिक कष्ट-भोग झेलते हुए देखकर भी भगवानके विधानकी मंगलमयतापर श्रीभाईजीकी आस्था अद्‌भुत थी और अद्‌भुत थी मातृ-सेवामें क्षण-प्रति-क्षण सावधानीपूर्वक उनकी परम तत्परता। उनकी अद्‌भुत भगवदास्था और अद्‌भुत सेवातत्परता देखकर सभी लोग नत-मस्तक और विस्मित थे। माँजीकी सेवा-शुश्रूषामें श्रीभाईजीके लिये सतत सहयोगी सिद्ध हो रहे थे पण्डित श्रीगोवर्धनजी शर्मा, भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल तथा श्रीरामस्नेहीजी।

श्रीभाईजीकी सेवासे माँजी बड़ी प्रसन्न थीं और चोला परित्याग करनेके पूर्व उन्होंने श्रीभाईजीको बहुत-बहुत शुभाशीष दिया। वाराणसीमें दस-ग्यारह दिन रहनेके बाद माँजीने २३ जनवरी १९४६ के दिन महाप्रयाण किया। श्रीभाईजीने सारा क्रिया-कर्म बड़ी श्रद्धाके साथ किया। श्रीभाईजी जैसे संतकी माँजी होनेसे वे तो पहलेसे ही कृतार्थ थीं, पर लोकादर्शकी रक्षाके लिये श्रीभाईजीने वह सब कुछ किया, जो दिवंगतात्माके लिये करना चाहिये। ■

श्रीउमेशकुमारजी सिंहानिया

[१] वृक्षको जल दें

मई १९६७ में गोविन्द भवन ट्रस्टकी बैठकमें भाग लेनेके लिये ट्रस्टी लोग गीताभवन (स्वर्गाश्रम) आये और वे लोग बैठककी कार्यवाही समाप्त होनेपर अपने-अपने स्थानको लौट गये। सदस्योंके मनमें कार्यके प्रति अपेक्षित उत्साह नहीं था। कोई कहता था चुरुका ऋषिकुल बन्द कर दो और कोई कहता था प्रकाशनका काम कम कर दो। पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का इस प्रकारकी सभी बातोंसे विरोध था। उन्होंने कहा— पूज्य श्रीसेठजी जिस वृक्षको खड़ा कर गये, उस वृक्षकी कभी इस शाखाको और कभी उस

शाखाको तोड़ने या काटनेकी बात क्यों करें? अन्य संस्थाके सदस्योंमें कार्यका उत्साह है और वे संस्थाके कार्यका विस्तार कर रहे हैं और उनकी तुलनामें एक हमलोग भी कैसे हैं, जो कार्यको घटानेकी बात कहते हैं? जो जैसा सोचता है, वैसा ही हो जाता है। यदि हमारे चिन्तनकी पद्धति यही रही तो निश्चित ही हमारा ह्रास होगा। चाहिये यह कि हमलोग पूज्य श्रीसेठजीके द्वारा लगाये हुए वृक्षको जल दें। इसीमें अपना और अपनी संस्थाका, समाजका एवं हिन्दू धर्मका, बल्कि मानव मात्र का हित है। *शुभ चिन्तन मानवमात्रके लिये कल्याणकारी है।*

[२] संतोचित सरस विनोद

सन्-संवत् ठीकसे याद नहीं, पर अनुमानतः सन् १९६० के आस-पासकी बात होनी चाहिये। गीतावाटिकामें सम्पादकीय विभागके कार्यालयके भवनका विस्तार करनेकी दृष्टिसे निर्माण-कार्य हो रहा था। कल्याण, कल्याण-कल्पतरु तथा प्रकाशन सम्बन्धी कार्यके विस्तारके साथ-साथ भवनके विस्तारकी आवश्यकताकी अनुभूति अधिकाधिक होती जा रही थी। निर्माण-कार्य काफी हो चुका था। नव-निर्मित भागको दिखलानेके लिये बाबूजीने पूज्य स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजको बुलाया। पूज्य स्वामीजी आये तथा बाबूजी उन्हें अपने साथ नव-निर्मित भागको दिखलानेके लिये ले गये। बाबूजी स्वामीजीको छतपर ले जाना चाहते थे, पर सीढ़ीके नीचेका हिस्सा अभी नहीं बना था, एक-दो सीढ़ीका बनना बाकी था। पूज्य स्वामीजी ठीक प्रकारसे चढ़ सकें, एतदर्थ बाबूजी ईंटें रखने लगे। बाबूजीको ईंट-पर-ईंट रखते देखकर स्वामीजीने मधुर विनोद किया— क्या आप मेरे लिये 'सीढ़ी' बना रहे हैं?

तुरन्त बाबूजीने विनीत हृदयकी विनम्र वाणीमें उत्तर दिया— यह तो मैं अपने लिये बना रहा हूँ। दूसरोंके लिये बनानेकी क्षमता मुझमें भला कहाँ?

पूज्य स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके साथ मधुर विनोदका एक प्रसंग और है। २० मई १९६७ को एकादशी थी, अतः गीताभवन (स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश) में रात्रिके समय हरिनाम संकीर्तन हो रहा था। प्रत्येक एकादशी, पूर्णिमा और अमावस्याकी रात्रिको कीर्तन हुआ करता है। मंचपर बैठे हुए पहले श्रीईश्वरीप्रसादजी गोयन्दकाने कीर्तन कराया। पूज्य स्वामी श्रीरामसुखदासजी तथा बाबूजी नीचे बैठे हुए थे। श्रीईश्वरीप्रसादजी गोयन्दकाका कीर्तन समाप्त होनेपर, उन्होंने बाबूजीसे प्रार्थना की— आप मंचपर पधारें।

बाबूजीने स्वामीजीसे कहा— स्वामीजी! आप भी चलिये। आइये, कीर्तन करें।

स्वामीजीने कहा— मेरा जानेका विचार है। मुझे तो नींद आ रही है, मैं आराम करना चाहता हूँ।

बाबूजीने स्वामीजीसे निवेदन किया— केवल आपको ही नींद आ रही है क्या? मुझे भी तो आ रही है। मैं भी तो आराम करना चाहता हूँ।

ऐसा कहकर स्वामीजीका हाथ पकड़कर मंचपर ले जाने लगे। स्वामीजी उठ गये तथा बाबूजीके साथ मंचपर जाने लगे। मंचपर जाते-जाते बाबूजीने स्वामीजीसे विनोद किया— आप तो यही कीर्तन करें, ... आ-राम, आ-राम, आ-राम।

सभी समीपस्थ लोग मुस्कुरा पड़े।

[३] बनियासे महात्मा

पूज्य श्रीबाबूजी तथा पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी स्वामी श्रीशुकदेवानन्दजीके दर्शनके लिये परमार्थ निकेतन (स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश) गये। स्वामी श्रीशुकदेवानन्दजीका स्वास्थ्य खराब था। वहाँपर और भी संत आ गये, स्वामी श्रीभजनान्दजी, स्वामी श्रीचक्रपाणिजी आदि।

प्रयत्न इस बातका चलने लगा कि श्रीशुकदेवानन्दजी मौन ले लें, वे बोलें नहीं, जिससे उनकी तबीयतमें सुधार आये। इसके लिये श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीने बड़ा आग्रह किया। बाबूजी भी इसके लिये आग्रह करने लगे। फिर श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीने कहा– क्या करें, जो अन्दर चिन्तन होता है, वही बाहर आये बिना रहता नहीं। मैंने कई बार कान पकड़ा कि अब कोई सम्मेलन नहीं करूँगा, पर पहले एक सम्मेलन करता था तो अब दस सम्मेलन करता हूँ। पहले थोड़ी भीड़ होती थी तो अब बहुत अधिक होती है। अब तो कई एकड़ जमीनमें मैं खेती कर रहा हूँ। हम तो पूरे बनिया हो गये।

फिर बाबूजीकी ओर मुँह करके श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी कहने लगे– आप तो बनियासे महात्मा हो गये और हम महात्मासे बनिया हो गये। एक राजाकी गाथा है। उसका एक बड़ा मित्र संन्यासी था। दोनोंकी मृत्यु हुई। मृत्युके बाद दूसरे जन्ममें राजा संन्यासी हो गया और संन्यासी राजा हो गया। दोनोंमें फिर बड़ी मित्रता हो गयी। दूसरे जन्मके राजाने पूछा कि यह बात कैसे हुई? इसके उत्तरमें संन्यासी बोला कि पहले वाले जन्ममें मैं राजा था और निरन्तर मित्र संन्यासीका चिन्तन करता था, अतः मरनेपर संन्यासी हो गया। इसी तरह संन्यासी राजा हो गया। यही बात भाईजीके साथ है। हम महात्मासे बनिया हो गये और भाईजी बनियासे महात्मा हो गये।

इस पर सभी मुस्करा पड़े। फिर श्रीब्रह्मचारीजीने कहा– कोई बात नहीं, हम इस हालमें भी मस्त हैं।

[४] संन्यासी वेषको प्रणाम

१६ मई, १९६७। स्वर्गाश्रममें शामको गंगा किनारे टहलकर बाबूजी आये। अपने निवास-स्थान डालमिया कोठीके बरामदेमें बैठकर वे स्वामी श्रीसदानन्दजीकी प्रतीक्षा करने लगे। स्वामी श्रीसदानन्दजी, परमार्थ निकेतनके संस्थापक स्वामी शुकदेवानन्दजीके शिष्य हैं तथा 'परमार्थ' पत्रिकाके सम्पादक हैं। स्वामी श्रीसदानन्दजी अपने पूर्वाश्रमके पहले 'कल्याण' कार्यालयमें कार्य करते थे। अब परमार्थ निकेतनके प्रधान प्रबन्धकोंमेंसे एक आप भी हैं। निर्धारित समयसे जब समय अधिक होने लगा तो बाबूजी एक प्रकारसे निराश होने लगे। बाबूजी उठने ही वाले थे कि स्वामी श्रीसदानन्दजी आ गये। बाबूजीने उठकर स्वागत किया तथा भूमिपर माथ रखकर प्रणाम किया। स्वामीजी पहले ही झुककर प्रणाम कर रहे थे।

स्वामीजीने मस्तक उठाकर देखा कि बाबूजी भूमिपर मस्तक रखकर प्रणाम कर रहे हैं, वे संकोचमें गड़ गये। गड़ना स्वाभाविक था। जिनके नीचे और जिनके कार्यालयमें कार्य किया, वे ही प्रणाम करें, कोई भी संत हृदय इसे कैसे देख सकता है? स्वामीजीने कहा– भाईजी! आपने

ठीक नहीं किया।

बाबूजीने पूछा— क्या ठीक नहीं किया ?

स्वामीजीने संकोचमें दबते हुए कहा— क्या बच्चेको प्रणाम करना उचित है ?

स्वामीजीका निवेदन सही था। बाबूजीने कहा— आप एकदम ठीक कहते हैं। आप मेरे लिये बच्चे ही हैं, पर मैंने बच्चेको प्रणाम नहीं किया है। मैंने तो गेरुए वस्त्रको प्रणाम किया है। यह भी हमारी एक मर्यादा है।

भाव-विभोर स्वामी श्रीसदानन्दजी कुछ बोल नहीं पाये।

[५] सिद्धान्तवादिता

नवम्बर १९६७ में गीतावाटिकामें प्रवचन देते हुए पूज्य बाबूजीने अपना एक पुरातन संस्मरण सुनाया कि किस प्रकार लोग बाबूजीकी सिद्धान्त-निष्ठाके कारण उनसे किनारा कर लेते थे। घटना सन् १९२० और १९२४ के बीचकी है।

बाबूजीने खद्दरके वस्त्रोंका प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। आजकल तो बढ़िया-से-बढ़िया और महीन-से-महीन खादी प्राप्त हो जाती है, जिसके सामने मिलके कपड़े भी मात खाते हैं, परंतु उन दिनोंकी खादी टाटके बराबर होती थी। खादीके वस्त्रोंका प्रयोग करना भी एक अत्यधिक साहस और सिद्धान्तनिष्ठाकी बात मानी जाती थी।

बाबूजीका समाजमें सम्मान तो था ही, एक घनिष्ठ परिचित व्यक्तिने बाबूजीसे कहा— भाईजी ! आज सूरदासका अभिनय प्रस्तुत किया जायेगा। आप देखने चलेंगे क्या ?

बाबूजीने अपनी स्वीकृति दे दी। उन महाशयने कहा— भाईजी ! अभिनय आठ बजे प्रारम्भ होगा। मैं आपके पास सात बजेके लगभग आ जाऊँगा। आप मेरे साथ मेरी गाड़ीमें बैठकर चले चलियेगा।

शामको बाबूजी उनकी प्रतीक्षा करने लगे, परंतु वे आये नहीं। अधिक समय निकलता देखकर बाबूजी एक-दो और साथियोंको साथ लेकर अभिनय देखनेके लिये चले गये। वहींपर उनकी उन महोदयसे भी भेंट हो गयी। बाबूजीने उनसे पूछा— भैया ! मैं तो तुम्हारी राह देख रहा था। तुम सात बजे कैसे नहीं आये ?

वे महोदय बड़े सरल हृदयके थे। उन्होंने मनकी सच्ची बातका निवेदन करते हुए कहा— यदि आप क्षमा कर दें तो आपको सच-सच बता दूँ।

बाबूजीने कहा— क्षमाकी क्या बात है। अवश्य बताओ।

बाबूजीसे आश्वस्त होकर उन महोदयने बताया— भाईजी ! आप तो सिद्धान्त-प्रेमी हैं और आप बहुत मोटी खादीका प्रयोग करते हैं। आप मेरे बगलमें बैठेंगे तो लोग क्या कहेंगे। आपकी मोटी खादीकी बातको चलाकर लोग मेरी भद्द उड़ा सकते हैं। इसी संकोचसे मैं आपको लेनेके लिये नहीं आया।

उनकी सत्यवादिताको देखकर बाबूजी बहुत प्रसन्न हुए। साथ ही खादीके प्रति उनकी निष्ठा और भी सुदृढ़ हो गयी कि समाज भले स्वीकार या सत्कार करे या न करे, अपनेको वही करना है, जो उचित है। ■

श्रीजगदम्बाप्रसादजी मिश्र

स्वजनोंका संतोष

पूज्य श्रीबाबूजीके अन्तिम दिनोंकी एक बात मुझे याद आ रही है। उन्हें कैंसर रोग हो गया था। उनका परिचय अनेक डाक्टरों और वैद्योंसे था। सबसे बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध होनेसे सभी चिकित्सक प्यारमें खिंचे-खिंचे बाबूजीको देखनेके लिये आते थे और अपनी समझके अनुसार दवा भी देते थे। उन सभीकी दी हुई दवाको बाबूजी खा भी लिया करते थे, जिससे उनके प्यारका सम्मान हो जाय।

बाबूजी कभी आयुर्वेदिक, कभी ऐलौपैथिक, कभी होमियोपैथिक दवा ले लेते थे तो इसे देखकर श्रीजयदयालजी डालमियाने उनसे कहा— आप सबकी दवा खा लेते हैं, यह बात कहाँतक उचित हैं? इस प्रकार खानेसे कोई दवा एक दूसरेके विपरीत पड़ सकती है और तकलीफ बढ़ सकती है।

इसपर बाबूजीने बड़े प्यारसे उत्तर दिया— तकलीफका बढ़ना या घटना और शरीरका रहना या जाना तो प्रारब्धके अधीन है। होगा तो वही, जो होने वाला है, पर दवा देनेवाले लोग आत्मीयताके साथ दवा देते हैं और उनकी दवा ले लेनेसे उनको संतोष हो जाता है। यदि किसी दवाके प्रयोगसे सुधार हो गया तो उनको प्रसन्नता होगी। मेरे लिये तो स्वजनोंकी प्रसन्नता और संतोष ही महत्त्वपूर्ण है। ■

श्रीपरमेश्वरप्रसादजी दीक्षित

नव वर्षारम्भ

मैं दोपहरको श्रीभाईजीके पास बैठा हुआ था। श्रीभाईजी डाक देख रहे थे। उस समय मैंने श्रीभाईजीसे कहा— आज तो ३१ दिसम्बर हो गया। कलसे नये वर्षका आरम्भ होगा। नव वर्षकी शुभकामना भेजनी चाहिये।

श्रीभाईजीने कहा— आप भेजिये। मैं क्यों भेजूँ? मेरा नया वर्ष अभी थोड़े ही आया है। मेरा तो नव वर्ष तीन मास बाद आयेगा। हमलोग तो हिन्दू हैं और अपने लोगोंके नव वर्षका आरम्भ विक्रम संवत्के प्रथम दिनसे होता है, ईसाई संवत्से नहीं। ■

पं. श्रीश्यामनारायणजी शास्त्री (मानस-कथावाचक)

अभिनन्दनीय व्यक्तित्व

बात बहुत पुरानी है। मेरे पूज्य पितामह श्रीवामदेवजी मिश्र काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें संस्कृत-साहित्य-विभागाध्यक्ष थे। मेरे पितामहजी विश्वविद्यालयके संस्थापक परमपूज्य महामना श्रीमदनमोहनजी मालवीयके परम अन्तरंग एवं सम्मान्य निज जन थे। ऐसा प्रायः हुआ करता था कि पितामहजी श्रीमहामनाजीसे मिलनेके लिये उनके आवासपर चले जाया करते थे। एक बार मेरे पितामहजी पूज्य श्रीमहामनाजीके भवनपर बैठे हुए उनसे कुछ आवश्यक चर्चा कर रहे थे। मैं भी वहाँ पर बैठा हुआ था। इसी समय परमादरणीय श्रीभाईजी (परम सम्मान्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) पूज्य श्रीमहामनाजीसे मिलनेके लिये आये। आते ही श्रीभाईजीने पूज्य महामनाजीको चरण छूकर प्रणाम किया और इसके उपरान्त मेरे पितामहजीको।

श्रीभाईजीके आते ही वह चर्चा स्थगित हो गयी। जब श्रीभाईजीने पितामहजीको प्रणाम कर लिया तो श्रीमहामनाजीने मुझे संकेत द्वारा श्रीभाईजीके प्रति प्रणाम करनेको कहा। मैं उन्हें प्रणाम करूँ, इसके पहले ही श्रीभाईजीने मुझको प्रणाम कर लिया। उन्होंने इतनी शीघ्रतासे प्रणाम कर लिया कि मुझे प्रणाम करनेका अवसर ही नहीं मिल पाया। प्रणाम करते-करते श्रीभाईजीने कहा– यह भला क्या उचित है एक विद्वान ब्राह्मण मुझ साधारणसे वैश्यको प्रणाम करे?

पूज्य श्रीमहामनाजीने श्रीभाईजीका परिचय दिया। मैं श्रीभाईजीका नाम तो सुना करता था, पर दर्शन करनेका यह पहला ही अवसर था। प्रथम दर्शनमें ही उनके दैन्य-भावसे मैं बड़ा प्रभावित हुआ। उनकी ऐसी ब्रह्मण्यता देखकर मैं विस्मय करने लगा। श्रीभाईजीका परिचय देकर पूज्य श्रीमहामनाजीने हम पितामह-पौत्रका परिचय दिया। मेरा परिचय देते हुए उन्होंने कहा– आप श्रीवामदेवजीके पौत्र हैं। संस्कृत साहित्यका अध्ययन तो करते ही हैं, इसके साथ-साथ श्रीमद्भागवत-श्रीरामायणजीका भी अध्ययन करते हैं तथा प्रवचन भी देते हैं।

मेरा परिचय देकर पूज्य महामनाने मुझे आदेश दिया– कुछ मानस-कथा सुनाओ श्रीभाईजीको।

यह मेरा परम सौभाग्य था, जो पूज्य श्रीमहामनाजीके आदेशपर मुझे भक्त-हृदय श्रीभाईजीको श्रीरामचरितमानसके कतिपय प्रसंग सुनानेका सुभग-सुखद-शुभद अवसर मिला। त्रिपुरारि भगवान विश्वनाथकी कृपासे मैं लगभग आधे घंटे तक *'राम ते अधिक राम कर दासा'* पर बोलता रहा। इस अवधिमें श्रीभाईजीकी भावमयता एवं विभोरता दर्शनीय थी और वह मेरे पूर्वानुभूत विस्मयको अधिकाधिक सघन बनाती जा रही थी। 'लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हसि।'

पूज्य श्रीमहामनाजीकी उपस्थितिमें ही श्रीभाईजीने मानस-प्रवचनपर बड़ा साधुवाद दिया

तथा गीताप्रेस पधारनेके लिये अनुरोध किया। श्रीभाईजीका यह प्रथम दर्शन मेरे मानस-पटलपर स्थायी छाप छोड़ गया। उनकी ब्रह्मण्यता, आत्म-विभोरता, अविरल भावार्द्रताकी स्मृति होते ही अन्तर उनका अभिनन्दन करने लगता है। ■

श्रीपद्मकुमारजी थरड़

[१] मुस्कानकी अनोखी छवि

आज मैं गृहस्थाश्रमी हूँ। संतानके रूपमें भगवानका कृपा-प्रसाद प्राप्त है और मेरा गृहस्थ जीवन साधारणतः सुखी है, पर मैं जो बात कहने जा रहा हूँ, वह तो उस समय की है, जब मेरी आयु मात्र छः या सात वर्षकी रही होगी। परमपूज्य नानाजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) कलकत्ते आये हुए थे और ठहरे हुए थे सम्मान्य श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़ियाके घरपर। सुबहके समय मेरे पिताजी पूज्य नानाजीके दर्शनार्थ श्रीकानोड़ियाजीके घर जाने लगे तो मुझे भी अपने साथ ले लिये।

लगभग दस बजे हमलोग श्रीकानोड़ियाजीके घरपर पहुँचे। मकानकी सीढ़ियोंसे चढ़कर ज्यों ही हमलोग ऊपर पहुँचे, वहीं चार-पाँच कदमकी दूरीपर पूज्य नानाजी खड़े हुए मिल गये। उस समय उनके मुख मण्डलपर जैसी प्रसन्नता थी, उनके नेत्रोंसे जैसा प्यार झर रहा था और सबसे बड़ी बात यह कि उनके अधरोंपर जैसी मधुर मुस्कान थी, उसकी मनोहारिणी छवि आज भी मेरे मानस-पटलपर ज्यों-की-त्यों अंकित है। बात साधारण होकर भी साधारण नहीं है, इसीलिये कि आज पैंतीस वर्षसे भी अधिक हो गये, पर उनके अधरोंपर खेलती हुई मुस्कानकी वह अनोखी छवि कभी भुलाये नहीं भूलती। उस समय मैं एक अबोध बालक था और मुझ बालकके मनपर अंकित उस समयकी छवि आजतक धूमिल न हो, यह मेरे लिये आश्चर्यका विषय कल भी था और आज भी है। उस मुस्कानमें न जाने कैसी सम्मोहिनी भगवदीय आभा थी, जो आज भी स्मरण मात्रसे मेरे अन्तरको आह्लादित करती रहती है। मैं जब कभी कहींपर भागवत-कथा अथवा मानस-कथा सुनता हूँ और उस कथामें जब भगवान श्रीकृष्ण और भगवान श्रीरामकी रूप- माधुरीका वर्णन किया जाता है और उसमें भी जब मोहिनी मुस्कानका वर्णन होता है, तब उस वर्णनको सुनते ही बरबस मुझे पूज्य नानाजीकी मधुर मुस्कानकी याद हो आती है, जिसमें एक सहज आकर्षण था। अधिक क्या कहूँ? *'सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा'*।

[२] नगण्य बातको भी महत्त्व

सन् १९५७ के आस-पासकी बात होनी चाहिये। मैं अपने पिताजीके साथ रतनगढ़ गया था। तब पूज्य नानाजी रतनगढ़में ही विराज रहे थे। इस बार हमलोग बहुत दिनोंतक रतनगढ़में रहे और सदा ही पूज्य नानाजीके दर्शन एवं समीपताका अवसर मिलता रहा। पूज्य नानाजीका प्यार भी मेरे प्रति अनोखा था और बार-बार मनमें ऐसी भावना उठा करती थी कि क्या मुझ बालकको ही सबसे अधिक प्यार करते हैं। पूज्य नानाजीके वात्सल्यको देखकर मैं फूले नहीं समाता था। मेरे लिये एक बार उन्होंने कहा भी था कि यह तो अपना ही टाबर (बच्चा) है।

उनका कोई-सा भी काम हो, उसे तुरंत कर देनेमें मैं अपनेको धन्य मानता था। उनके तनिक-से संकेतको मैं अपने लिये आदेश समझता था। बस, मनमें सदा चाह बनी रहती थी कि पूज्य नानाजीका सामीप्य अधिक-से-अधिक मिलता रहे।

पूज्या नानीजीने सालासर ग्रामके श्रीहनुमानजी महाराजके यहाँ कोई मनौती बोल रखी थी। नानीजी अस्वस्थ चल रही थी, इसके बाद भी एक दिन सालासर जानेका कार्यक्रम बन गया। यात्रा काफी लम्बी करनी थी और सूर्योदयके समय चलकर सूर्यास्ततक वापस रतनगढ़ आ जाना था। पूज्य नानाजी सालासर जाने वाले हैं, यह देखकर कई लोग साथ चलनेके लिये तैयार हो गये। साथमें बहुत लोग हो जानेसे एक बस किरायेपर ले ली गयी, पर पूज्या नानीजीकी तबीयतके खराब होने के कारण एक कारकी व्यवस्था की गयी। मेरी बड़ी चाह थी कि मैं पूज्य नानाजीके साथ कारमें जाऊँ। एक बात स्पष्ट कर दूँ, मेरे मनमें कारका चाव नहीं था, अपितु चाव था पूज्य नानाजीके पास बैठनेका, अतः जब कारमें चढ़नेका मौका आया तो मैं कारका दरवाजा खोलकर बाहर खड़ा हो गया और पूज्य नानाजीके संकेतकी राह देखने लगा।

कारमें आगेकी सीटपर ड्राइवरके बगलमें बैठ गये पूज्य बाबा तथा नानाजीके दौहित्र प्रिय चन्द्रकान्त। पीछेकी सीटपर बैठ गयीं पूज्या नानीजी और नानीजीके पास बैठने वाले थे नानाजी। मुझे खड़े देखकर नानाजीने मेरी इच्छा जान ली। कुछ देरतक तो नानाजी मन-ही-मन तुक बैठाते रहे कि किसी प्रकार मेरे भी बैठनेका ढंग बन जाय, पर पूज्या नानीजीकी तबीयत खराब देखकर वे विवश हो गये और मुझसे प्यार भरे शब्दोंमें कहा— गाड़ीमें जगहका संकोच है, नहीं तो मैं तुमको अपने साथ बैठा लेता।

साथ बैठनेकी मेरी चाह चाहे जितनी हो, पर मुझे यह तनिक भी अभीष्ट नहीं था कि मेरे कारण किसी प्रकारकी कोई परेशानी खड़ी हो। मैंने तुरंत कहा— मैं बसमें बैठ जाऊँगा।

फिर हम सबलोग सालासर गये और वहाँ श्रीहनुमानजी महाराजका दर्शन करके रात्रितक रतनगढ़ वापस आ गये। सालासरकी यात्रासे वापस आनेके बाद यात्रा-सम्बन्धी सारी बात समाप्त हो गयी। बात समाप्त हो गयी मेरे मनसे, पर पूज्य नानाजीके मनसे नहीं।

कुछ दिन बाद ही पूज्य नानाजी दिल्ली जाने वाले थे और इसी ट्रेनसे हमलोग भी जाने वाले थे। ट्रेन रतनगढ़से रातको आठ बजेके लगभग चलकर प्रातःकाल दिल्ली पहुँचती है। पिताजीके साथ मेरा रिजर्वेशन एक दूसरे कोचमें हो गया था और नानीजी-नानाजी-बाबाजी आदिका रिजर्वेशन एक दूसरे कोचमें था। जब स्टेशनपर हमलोग ट्रेनपर चढ़ने लगे तो पूज्य नानाजीने कहा— पन्ना तो हमारे साथ हमारे कोचमें रहेगा।

पिताजीने सहर्ष सहमति प्रदान कर दी। फिर मैंने पूज्य नानाजीके साथ-साथ रतनगढ़से दिल्लीतककी यात्रा की और सारी रात मुझे सहयात्राका पावन सौभाग्य मिला। यद्यपि मुझे नींद बहुत आया करती है, पर सह-यात्राकी उमंगमें मुझे रातभर नींद नहीं आयी। मैं तो रह-रह करके विस्मय कर रहा था पूज्य नानाजीके वात्सल्यपर, जो उन्होंने मेरी सर्वथा नगण्य बातको भी महत्त्व दिया, जिसके फलस्वरूप मुझे रात्रिभर कोचमें उनके साथ यात्रा करनेका अवसर मिला। ■

श्रीयुगलकिशोरजी खेतान

अनुमानातीत कार्य-क्षमता

बात कई वर्ष पहलेकी है। पूज्य श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) गोरखपुरमें आये हुए थे और वे साहबगंज मोहल्लेमें श्रीघनश्यामदासजी जालानके यहाँ ठहरे हुए थे। उनके आनेकी सूचना मिलते ही मैं शामके समय उनके दर्शनार्थ गया। उन्हें प्रणाम करके मैं वहीं बैठ गया। श्रीसेठजीने कुशल-क्षेमका समाचार पूछा। ऐसी बात परस्परमें चल ही रही थी कि गीताप्रेसके तत्कालीन प्रबन्धक श्रीबजरंगलालजी चाँदगोठिया एक दो व्यक्तियोंके साथ वहाँ आ गये। उनके आते ही बातचीतका प्रवाह बदला। श्रीसेठजी श्रीबजरंगलालजीसे गीताप्रेसके कार्यके बारेमें बातचीत करने लगे कि यदि कहीं कोई कठिनाई या बाधा हो तो उसकी जानकारी मिले और उसे दूर करनेका कोई उपाय और प्रयास किया जाय। श्रीबजरंगलालजीने गीताप्रेसकी छोटी-बड़ी कई अड़चनोंका उल्लेख किया, पर अन्तमें उन्होंने कहा— गीताप्रेसके काममें सबसे बड़ी और विकट कठिनाई प्रूफ-रीडिंगको लेकर है। जो सामग्री कम्पोज हो चुकी है, उसकी जबतक प्रूफ-रीडिंग नहीं हो जाती, तबतक उसको छापा नहीं जा सकता। प्रूफ-रीडिंगके बाद संशोधन होता है और फिर छपायी हो पाती है। अच्छे प्रूफ-रीडर मिलते नहीं और जो थोड़े-बहुत हैं, उनकी कार्य-क्षमता अल्प है। प्रेसमें प्रूफ-रीडिंगकी बातको लेकर बड़ी परेशानी सामने आ जाया करती है और इसके कारण अनेक बार मशीनें खड़ी रहती हैं। न फर्मा मशीनपर चढ़ पाता है और न छपायीका काम हो पाता है।

जो व्यक्ति श्रीबजरंगलालजी चाँदगोठियाके साथ आये थे, उनमेंसे किसीने कहा— पूज्य श्रीभाईजी तो बहुत शुद्ध और बहुत शीघ्र प्रूफ-रीडिंग कर लेते हैं।

उनकी बात सुनकर श्रीबजरंगलालजीने उनसे तुरंत कहा— श्रीभाईजीकी बात आप करिये ही मत। उनकी तो बात ही अद्‍भुत है।

उन सज्जनसे इतना कहकर फिर श्रीबजरंगलालजी पूज्य श्रीसेठजीको कहने लगे— मैं आपको एक अद्‍भुत प्रसंग सुनाता हूँ। कल्याणके विशेषांककी सामग्री अगले दिन छापनेके लिये मशीनमैनको देनी थी। जो सामग्री कल मशीनपर चढ़ा देनी जरूरी थी, उसकी कम्पोजिंग हो चुकी थी, पर समस्या सामने थी, उस कम्पोज्ड मैटरके प्रूफ-रीडिंगकी। इस समस्याको सुलझानेके लिये दिनभर प्रयास किया गया, पर बात बन नहीं पायी। सूर्यास्तके बाद मैं वह सारा कम्पोज्ड मैटर लेकर गीतावाटिका गया। अँधेरा फैल चुका था। मैं श्रीभाईजीसे मिला। उनके सामने कम्पोज्ड मैटरको रखकर अपने प्रयासकी असफलताका वर्णन करते हुए मैंने उन्हें सारी कठिनाईको बतलाया और यह भी कहा— कल प्रातःकालतक इस मैटरकी प्रूफ-रीडिंग हो जानी जरूरी है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो कई मशीनें बेकार खड़ी रहेंगी और विशेषांकके प्रकाशनमें अनावश्यक विलम्ब होगा।

मेरी बात सुनकर श्रीभाईजी थोड़ी देर चुप रहे और फिर बोले— इसे मेरे पास छोड़ दो।

मैंने उनके पास सारा कम्पोज्ड मैटर रख दिया और चलते-चलते उनसे फिर कहा— कल